॥ श्रीहरिः ॥

‘अवतार-कथाङ्क’ की विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या

अवतारतत्त्व-मीमांसा

अवतारविभूति-दर्शन और उनके आख्यान

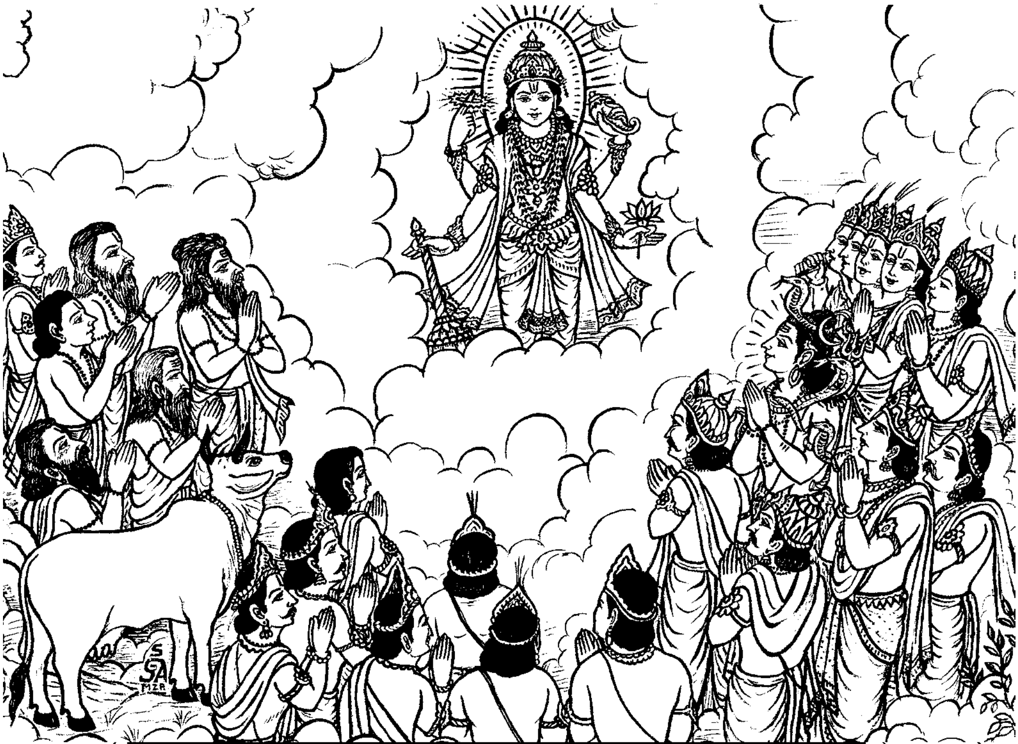
अवतारकथावलोकनसे भगवत्सन्निधि

चित्र-सूची

(रंगीन-चित्र)

(सादे-चित्र)

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



कल्याण

विश्वस्य जन्मस्थितिसंयमार्थे कृतावतारस्य पदाम्बुजं ते।
व्रजेम सर्वे शरणं यदीश स्मृतं प्रयच्छत्यभयं स्वपुंसाम्॥

वर्ष ८१

गोरखपुर, सौर माघ, वि० सं० २०६३, श्रीकृष्ण-सं० ५२३२, जनवरी २००७ ई०

संख्या १

पूर्ण संख्या ९६२

नाभिकमलसे प्रादुर्भूत ब्रह्माजीद्वारा भगवान्‌की स्तुति

रूपं यदेतदवबोधरसोदयेन शश्वन्निवृत्ततमसः सदनुग्रहाय।
आदौ गृहीतमवतारशतैकबीजं यन्नाभिपद्मभवनादहमाविरासम्॥
त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम्।
यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय॥
तिर्यङ्मनुष्यविबुधादिषु जीवयोनिष्वात्मेच्छयाऽऽत्मकृतसेतुपरीप्सया यः।
रेमे निरस्तरतिरप्यवरुद्धदेहस्तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय॥

[ब्रह्माजी बोले—] देव! आपकी चित् शक्तिके प्रकाशित रहनेके कारण अज्ञान आपसे सदा ही दूर रहता है। आपका यह रूप, जिसके नाभि-कमलसे मैं प्रकट हुआ हूँ, सैकड़ों अवतारोंका मूल कारण है। इसे आपने सत्पुरुषोंपर कृपा करनेके लिये ही पहले-पहल प्रकट किया है। नाथ! आपका मार्ग केवल गुण-श्रवणसे ही जाना जाता है। आप निश्चय ही मनुष्योंके भक्तियोगके द्वारा परिशुद्ध हुए हृदयकमलमें निवास करते हैं। पुण्यश्लोक प्रभो! आपके भक्तजन जिस-जिस भावनासे आपका चिन्तन करते हैं, उन साधु पुरुषोंपर अनुग्रह करनेके लिये आप वही-वही रूप धारण कर लेते हैं। आप पूर्णकाम हैं, आपको किसी विषयसुखकी इच्छा नहीं है, तो भी आपने अपनी बनायी हुई धर्ममर्यादाकी रक्षाके लिये पशु-पक्षी, मनुष्य और देवता आदि जीवयोनियोंमें अपनी ही इच्छासे शरीर धारण कर अनेकों लीलाएँ की हैं। ऐसे आप पुरुषोत्तमभगवान्‌को मेरा नमस्कार है। **[श्रीमद्भागवत]**

मङ्गलाचरण

श्रुतिका माङ्गलिक स्तवन

नमस्ते गणपतये। त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि। त्वमेव केवलं कर्तासि। त्वमेव केवलं धर्तासि। त्वमेव केवलं हर्तासि। त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि। त्वं साक्षादात्मासि नित्यम्॥

गणपतिको नमस्कार है, तुम्हीं प्रत्यक्ष तत्त्व हो, तुम्हीं केवल कर्ता, तुम्हीं केवल धारणकर्ता और तुम्हीं केवल संहारकर्ता हो, तुम्हीं केवल समस्त विश्वरूप ब्रह्म हो और तुम्हीं साक्षात् नित्य आत्मा हो। (श्रीगणपत्यथर्वशीर्ष)

नमो व्रातपतये नमो गणपतये नमः प्रमथपतये नमस्तेऽस्तु लम्बोदरायैकदन्ताय विघ्ननाशिने शिवसुताय श्रीवरदमूर्तये नमः॥

व्रातपतिको नमस्कार, गणपतिको नमस्कार, प्रमथपतिको नमस्कार, लम्बोदर, एकदन्त, विघ्ननाशक, शिवतनय श्रीवरदमूर्तिको नमस्कार है। (श्रीगणपत्यथर्वशीर्ष)

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव॥

समस्त संसारको उत्पन्न करनेवाले—सृष्टि-पालन-संहार करनेवाले किंवा विश्वमें सर्वाधिक देदीप्यमान एवं जगत्को शुभकर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाले हे परब्रह्मस्वरूप सविता देव! आप हमारे सम्पूर्ण—आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक—दुरितों (बुराइयों—पापों)-को हमसे दूर—बहुत दूर ले जायँ, दूर करें; किंतु जो भद्र (भला) है, कल्याण है, श्रेय है, मङ्गल है, उसे हमारे लिये—विश्वके हम सभी प्राणियोंके लिये—चारों ओरसे (भलीभाँति) ले आयें, दें। (ऋग्वेद ५। ८२। ५)

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा॥

सर्वव्यापी परमात्मा विष्णुने इस जगत्को धारण किया है और वे ही पहले भूमि, दूसरे अन्तरिक्ष और तीसरे द्युलोकमें तीन पदोंको स्थापित करते हैं अर्थात् सर्वत्र व्याप्त हैं। इन विष्णुदेवमें ही समस्त विश्व व्याप्त है। हम उनके निमित्त हवि प्रदान करते हैं। (यजुर्वेद ५। १५)

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च॥

कल्याण एवं सुखके मूल स्रोत भगवान् शिवको नमस्कार है। कल्याणके विस्तार करनेवाले तथा सुखके विस्तार करनेवाले भगवान् शिवको नमस्कार है। मङ्गलस्वरूप और मङ्गलमयताकी सीमा भगवान् शिवको नमस्कार है। (यजुर्वेद १६। ४१)

हृत्पुण्डरीकमध्यस्थां प्रातःसूर्यसमप्रभाम्। पाशाङ्कुशधरां सौम्यां वरदाभयहस्तकाम्।
त्रिनेत्रां रक्तवसनां भक्तकामदुघां भजे॥

नमामि त्वां महादेवीं महाभयविनाशिनीम्। महादुर्गप्रशमनीं महाकारुण्यरूपिणीम्॥

हृत्कमलके मध्य रहनेवाली, प्रातःकालीन सूर्यके समान प्रभावाली, पाश और अंकुश धारण करनेवाली, मनोहर रूपधारिणी, वर और अभयमुद्रा धारण किये हुए हाथोंवाली, तीन नेत्रोंसे युक्त, रक्तवस्त्र परिधान करनेवाली और कामधेनुके समान भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाली देवीको मैं भजता हूँ। महाभयका नाश करनेवाली, महासंकटको शान्त करनेवाली और महान् करुणाकी साक्षात् मूर्ति तुम महादेवीको मैं नमस्कार करता हूँ। (**श्रीदेव्यथर्वशीर्ष**)

'नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते सुखदायिने'

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय नमो नमस्तेऽखिलपालकाय।
नमो नमस्तेऽमरनायकाय नमो नमो दैत्यविमर्दनाय॥
नमो नमो भक्तजनप्रियाय नमो नमः पापविदारणाय।
नमो नमो दुर्जननाशकाय नमोऽस्तु तस्मै जगदीश्वराय॥
नमो नमः कारणवामनाय नारायणायामितविक्रमाय।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय॥
नमः पयोराशिनिवासकाय नमोऽस्तु लक्ष्मीपतयेऽव्ययाय।
नमोऽस्तु सूर्याद्यमितप्रभाय नमो नमः पुण्यगतागताय॥
नमो नमोऽर्केन्दुविलोचनाय नमोऽस्तु ते यज्ञफलप्रदाय।
नमोऽस्तु यज्ञाङ्गविराजिताय नमोऽस्तु ते सज्जनवल्लभाय॥
नमो नमः कारणकारणाय नमोऽस्तु शब्दादिविवर्जिताय।
नमोऽस्तु तेऽभीष्टसुखप्रदाय नमो नमो भक्तमनोरमाय॥
नमो नमस्तेऽद्भुतकारणाय नमोऽस्तु ते मन्दरधारकाय।
नमोऽस्तु ते यज्ञवराहनाम्ने नमो हिरण्याक्षविदारकाय॥
नमोऽस्तु ते वामनरूपभाजे नमोऽस्तु ते क्षत्रकुलान्तकाय।
नमोऽस्तु ते रावणमर्दनाय नमोऽस्तु ते नन्दसुताग्रजाय॥
नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते सुखदायिने।
श्रितार्तिनाशिने तुभ्यं भूयो भूयो नमो नमः॥

'सबके कारणरूप आप भगवान्‌को नमस्कार है, नमस्कार है। सबका पालन करनेवाले आपको नमस्कार है, नमस्कार है। समस्त देवताओंके स्वामी आपको नमस्कार है, नमस्कार है। दैत्योंका संहार करनेवाले आपको नमस्कार है, नमस्कार है। जो भक्तजनोंके प्रियतम, पापोंके नाशक तथा दुष्टोंके संहारक हैं, उन जगदीश्वरको बार-बार नमस्कार है। जिन्होंने किसी विशेष हेतुसे वामनरूप धारण किया, जो नारस्वरूप जलमें निवास करनेके कारण 'नारायण' कहलाते हैं, जिनके विक्रमकी कोई सीमा नहीं है तथा जो शार्ङ्गधनुष, चक्र, खड्ग और गदा धारण करते हैं, उन भगवान् पुरुषोत्तमको बार-बार नमस्कार है। क्षीरसिन्धुमें निवास करनेवाले भगवान्‌को नमस्कार है। अविनाशी लक्ष्मीपतिको नमस्कार है। जिनके अनन्त तेजकी सूर्य आदिसे भी तुलना नहीं हो सकती, उन भगवान्‌को नमस्कार है तथा जो पुण्यकर्मपरायण पुरुषोंको स्वतः प्राप्त होते हैं, उन कृपालु श्रीहरिको बार-बार नमस्कार है। सूर्य और चन्द्रमा जिनके नेत्र हैं, जो सम्पूर्ण यज्ञोंका फल देनेवाले हैं, यज्ञाङ्गोंसे जिनकी शोभा होती है तथा जो साधु पुरुषोंके परम प्रिय हैं, उन भगवान् श्रीनिवासको बार-बार नमस्कार है। जो कारणके भी कारण, शब्दादि विषयोंसे रहित, अभीष्ट सुख देनेवाले तथा भक्तोंके हृदयमें रमण करनेवाले हैं, उन भक्तवत्सल भगवान्‌को नमस्कार है। अद्भुत कारणरूप आपको नमस्कार है, नमस्कार है। मन्दराचल पर्वत धारण करनेवाले कच्छपरूपधारी आपको नमस्कार है। यज्ञवराहरूपमें प्रकट होनेवाले आपको नमस्कार है। हिरण्याक्षको विदीर्ण करनेवाले आपको नमस्कार है। वामनरूपधारी आपको नमस्कार है। क्षत्रियकुलका अन्त करनेवाले परशुरामरूपमें आपको नमस्कार है। रावणका मर्दन करनेवाले श्रीरामरूपधारी आपको नमस्कार है तथा नन्दनन्दन श्रीकृष्णके बड़े भाई बलरामरूपमें आपको नमस्कार है। कमलाकान्त! आपको नमस्कार है। सबको सुख देनेवाले आपको नमस्कार है। भगवन्! आप शरणागतोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले हैं। आपको बारंबार नमस्कार है।' (**स्कन्दपुराण**)

भगवत्स्तुति

नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम्।
यन्नाभिजातादरविन्दकोशाद् ब्रह्माऽऽविरासीद् यत एष लोकः॥
भूस्तोयमग्निः पवनः खमादिर्महानजादिर्मन इन्द्रियाणि।
सर्वेन्द्रियार्था विबुधाश्च सर्वे ये हेतवस्ते जगतोऽङ्गभूताः॥
यानि यानीह रूपाणि क्रीडनार्थं बिभर्षि हि। तैरामृष्टशुचो लोका मुदा गायन्ति ते यशः॥
नमः कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचराय च। हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे॥
अकूपाराय बृहते नमो मन्दरधारिणे। क्षित्युद्धारविहाराय नमः सूकरमूर्तये॥
नमस्तेऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह। वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च॥
नमो भृगूणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे। नमस्ते रघुवर्याय रावणान्तकराय च॥
नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च। प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः॥
नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने। म्लेच्छप्रायक्षत्रहन्त्रे नमस्ते कल्किरूपिणे॥
नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च। हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो॥

[श्रीअक्रूरजी बोले—] प्रभो! आप प्रकृति आदि समस्त कारणोंके परम कारण हैं। आप ही अविनाशी पुरुषोत्तम नारायण हैं तथा आपके ही नाभिकमलसे उन ब्रह्माजीका आविर्भाव हुआ है, जिन्होंने इस चराचर जगत्‌की सृष्टि की है। मैं आपके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्त्व, प्रकृति, पुरुष, मन, इन्द्रिय, सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषय और उनके अधिष्ठातृदेवता—यही सब चराचर जगत् तथा उसके व्यवहारके कारण हैं और ये सब-के-सब आपके ही अङ्गस्वरूप हैं। प्रभो! आप क्रीडा करनेके लिये पृथ्वीपर जो-जो रूप धारण करते हैं, वे सब अवतार लोगोंके शोक-मोहको धो-बहा देते हैं और फिर सब लोग बड़े आनन्दसे आपके निर्मल यशका गान करते हैं। प्रभो! आपने वेदों, ऋषियों, ओषधियों और सत्यव्रत आदिकी रक्षा-दीक्षाके लिये मत्स्यरूप धारण किया था और प्रलयके समुद्रमें स्वच्छन्द विहार किया था। आपके मत्स्यरूपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने ही मधु और कैटभ नामके असुरोंका संहार करनेके लिये हयग्रीव अवतार ग्रहण किया था। मैं आपके उस रूपको भी नमस्कार करता हूँ। आपने ही वह विशाल कच्छपरूप ग्रहण करके मन्दराचलको धारण किया था, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने ही पृथ्वीके उद्धारकी लीला करनेके लिये वराहरूप स्वीकार किया था, आपको मेरा बार-बार नमस्कार। प्रह्लाद-जैसे साधुजनोंका भय मिटानेवाले प्रभो! आपके उस अलौकिक नृसिंहरूपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने वामनरूप ग्रहण करके अपने पगोंसे तीनों लोक नाप लिये थे, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। धर्मका उल्लङ्घन करनेवाले घमंडी क्षत्रियोंके वनका छेदन कर देनेके लिये आपने भृगुपति परशुरामरूप ग्रहण किया था। मैं आपके उस रूपको नमस्कार करता हूँ। रावणका नाश करनेके लिये आपने रघुवंशमें भगवान् रामके रूपसे अवतार ग्रहण किया था। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। वैष्णवजनों तथा यदुवंशियोंका पालन-पोषण करनेके लिये आपने ही अपनेको वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इस चतुर्व्यूहके रूपमें प्रकट किया है। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। दैत्य और दानवोंको मोहित करनेके लिये आप शुद्ध अहिंसा-मार्गके प्रवर्तक बुद्धका रूप ग्रहण करेंगे। मैं आपको नमस्कार करता हूँ और पृथ्वीके क्षत्रिय जब म्लेच्छप्राय हो जायँगे, तब उनका नाश करनेके लिये आप ही कल्किके रूपमें अवतीर्ण होंगे। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। प्रभो! आप ही वासुदेव, आप ही समस्त जीवोंके आश्रय (सङ्कर्षण) हैं; तथा आप ही बुद्धि और मनके अधिष्ठातृ-देवता हृषीकेश (प्रद्युम्न और अनिरुद्ध) हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। प्रभो! आप मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये। **(श्रीमद्भागवत)**

अवतारहेतु आर्त-निवेदन

जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता । गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता॥
पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जानइ कोई । जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई॥
जय जय अबिनासी सब घट बासी ब्यापक परमानंदा । अबिगत गोतीतं चरित पुनीतं मायारहित मुकुंदा॥
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनिबृंदा । निसि बासर ध्यावहिं गुन गन गावहिं जयति सच्चिदानंदा॥
जेहिं सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा। सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा॥
जो भव भय भंजन मुनि मन रंजन गंजन बिपति बरूथा। मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुरजूथा॥
सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा जा कहुँ कोउ नहिं जाना। जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवउ सो श्रीभगवाना॥
भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुनमंदिर सुखपुंजा। मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा॥

जानि सभय सुर भूमि सुनि बचन समेत सनेह।
गगनगिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह॥
जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा॥

[ब्रह्माजी बोले—] हे देवताओंके स्वामी, सेवकोंको सुख देनेवाले, शरणागतकी रक्षा करनेवाले भगवान्! आपकी जय हो! जय हो!! हे गो-ब्राह्मणोंका हित करनेवाले, असुरोंका विनाश करनेवाले, समुद्रकी कन्या (श्रीलक्ष्मीजी)-के प्रिय स्वामी! आपकी जय हो। हे देवता और पृथ्वीका पालन करनेवाले! आपकी लीला अद्भुत है, उसका भेद कोई नहीं जानता। ऐसे जो स्वभावसे ही कृपालु और दीनदयालु हैं, वे ही हमपर कृपा करें। हे अविनाशी, सबके हृदयमें निवास करनेवाले (अन्तर्यामी), सर्वव्यापक, परम आनन्दस्वरूप, अज्ञेय, इन्द्रियोंसे परे, पवित्रचरित्र, मायासे रहित मुकुन्द (मोक्षदाता)! आपकी जय हो! जय हो!! [इस लोक और परलोकके सब भोगोंसे] विरक्त तथा मोहसे सर्वथा छूटे हुए (ज्ञानी) मुनिवृन्द भी अत्यन्त अनुरागी (प्रेमी) बनकर जिनका रात-दिन ध्यान करते हैं और जिनके गुणोंके समूहका गान करते हैं, उन सच्चिदानन्दकी जय हो। जिन्होंने बिना किसी दूसरे संगी अथवा सहायकके अकेले ही [या स्वयं अपनेको त्रिगुणरूप— ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप—बनाकर अथवा बिना किसी उपादान-कारणके अर्थात् स्वयं ही सृष्टिका अभिन्ननिमित्तोपादान कारण बनकर] तीन प्रकारकी सृष्टि उत्पन्न की, वे पापोंका नाश करनेवाले भगवान् हमारी सुधि लें। हम न भक्ति जानते हैं, न पूजा। जो संसारके (जन्म-मृत्युके) भयका नाश करनेवाले, मुनियोंके मनको आनन्द देनेवाले और विपत्तियोंके समूहको नष्ट करनेवाले हैं, हम सब देवताओंके समूह मन, वचन और कर्मसे चतुराई करनेकी बान छोड़कर उन (भगवान्)-की शरण [आये] हैं। सरस्वती, वेद, शेषजी और सम्पूर्ण ऋषि कोई भी जिनको नहीं जानते, जिन्हें दीन प्रिय हैं, ऐसा वेद पुकारकर कहते हैं, वे ही श्रीभगवान् हमपर दया करें। हे संसाररूपी समुद्रके [मथनेके] लिये मन्दराचलरूप, सब प्रकारसे सुन्दर, गुणोंके धाम और सुखोंकी राशि नाथ! आपके चरणकमलोंमें मुनि, सिद्ध और सारे देवता भयसे अत्यन्त व्याकुल होकर नमस्कार करते हैं।

देवता और पृथ्वीको भयभीत जानकर और उनके स्नेहयुक्त वचन सुनकर शोक और सन्देहको हरनेवाली गम्भीर आकाशवाणी हुई—हे मुनि, सिद्ध और देवताओंके स्वामियो! डरो मत। तुम्हारे लिये मैं मनुष्यका रूप धारण करूँगा और उदार (पवित्र) सूर्यवंशमें अंशोंसहित मनुष्यका अवतार लूँगा। **[श्रीरामचरितमानस]**

परमात्मप्रभुके अवतारकी कथा

परमात्मप्रभु नित्य हैं, शाश्वत हैं। इस दृश्य जगत्‌में अपने इच्छानुसार प्रकट होते हैं और फिर स्वधाम पधार जाते हैं। उनके वे धाम मायातीत और चिन्मय हैं। उनमें प्रभु विभिन्न रूपोंमें उन-उन रूपोंके अनुरूप पार्षदों, परिकरोंके साथ विराजते और नाना क्रीडा करते हैं। उन अनन्तके अनन्त धाम हैं। शास्त्रोंमें प्रमुख धामोंका वर्णन है। वे अनेक होकर भी एक हैं, अभिन्न हैं।

प्रभुका स्वरूप सत्-चित्-आनन्दरूप है। 'सत्' का तात्पर्य—जिसका अभाव कभी नहीं है—'**नाभावो विद्यते सतः**'। सत्‌का अभाव नहीं होता, वह त्रिकालाबाधित है अर्थात् वह निरन्तर रहता है, अतः भगवान् सद्रूप हैं। 'चित्' का अर्थ है प्रकाश (ज्ञान) अर्थात् जो अनन्त प्रकाशसे प्रकाशित हैं—ज्ञानस्वरूप हैं तथा जो आनन्दके सागर हैं अर्थात् वे पूर्णानन्द हैं। उनके आनन्दका एक कण पूरे संसारको आह्लादित करता है। इस प्रकार वे सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। इसी स्वरूपमें वे निराकार और साकार दोनों हैं।

कुछ लोग यह शंका करते हैं कि जो परम तत्त्व निरंजन है, निर्विकार है, निर्गुण और निराकार है; वह सगुण-साकार कैसे हो सकता है और क्यों होगा? इसका उत्तर यह है कि भगवान् सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी और सर्वसमर्थ हैं। इस संसारका सृजन वे ही करते हैं। यह जगत् उन्हींका लीला-विलास है। जो संसारकी सृष्टि कर सकता है, क्या वह स्वयं शरीर धारण नहीं कर सकता? अतः निर्गुण, निराकारका सगुण-साकार होना कोई अस्वाभाविक नहीं है। इसीलिये हमारे शास्त्र और ऋषि-महर्षि कहते हैं कि निर्विकार, निराकार, निरंजन, शुद्ध चैतन्य ब्रह्म जगत्‌के कल्याण और हित-साधनके लिये स्वेच्छासे सगुण-साकार रूपमें इस धरापर अवतीर्ण होता है।

वैसे तो सम्पूर्ण सृष्टि ही परमात्मप्रभुका रूप है अर्थात् स्वयं परमात्मा ही संसारके रूपमें व्यक्त हैं। परब्रह्म परमात्मा पूर्ण चैतन्यस्वरूप हैं, जो सोलह कलाओंसे परिपूर्ण हैं। सृष्टिमें प्रकृतिके गुणोंका वैषम्य होनेके कारण जड़ और चेतन—दोनोंकी तारतम्यता दिखायी पड़ती है। संसारके प्राणियोंमें जो चेतना है, वह भगवान्‌की कलाओंसे व्यक्त होती है, जैसे राम और कृष्ण पूर्ण कलाओंसे युक्त होनेके कारण प्रभुके पूर्णावतार हैं। सृष्टिके सभी प्राणी ईश्वरके अंश हैं—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी।'*** परंतु ईश्वरकी कलाके कम-ज्यादा होनेके कारण इन जीवोंकी शक्ति और प्रभावमें अन्तर होता है।

जगत्‌में उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज, पिण्डज और जरायुज—ये पाँच प्रकारके जीव हैं, जिनकी चेतनताका तारतम्य परमात्मप्रभुकी कलाओंसे व्यक्त होता है। तृणसे तरुपर्यन्त उद्भिज्ज (जमीनसे उत्पन्न होनेवाली वृक्षादि वनस्पति) पदार्थोंमें भी आहार-ग्रहण, निद्रा तथा स्नेह-द्वेषके प्रभावको ग्रहण करनेकी क्षमता होती है। यहाँ केवल अन्नमय कोशका विकास है। वे उद्भिज्ज एक कलासे युक्त हैं। स्वेदज (पसीनेसे उत्पन्न जूँ-लीख आदि) जीव, जिनमें प्राणमय कोशका भी विकास है अर्थात् ये सक्रिय जीव हैं, जो दो कलासे युक्त हैं। इसी प्रकार अण्डज (अण्डेसे उत्पन्न होनेवाले पक्षी-सर्प आदि) प्राणी तीन कलासे युक्त हैं, जिनमें मनोमय कोशका भी विकास है। ये अण्डज प्राणी संकल्प-विकल्प भी करते हैं। पिण्डजोंमें विज्ञानमय कोश भी प्रकट होता है। ये प्राणी बुद्धिका उपयोग करते देखे जाते हैं, अतः इनमें चार कलाका विकास कहा जाता है।

जरायुज प्राणी केवल मनुष्य है, जिसमें आनन्दमय कोश भी विकसित है। केवल मनुष्य ही अपना आनन्द हास्यादिके द्वारा व्यक्त कर सकता है और बिना दैहिक चेष्टाके आनन्दका अनुभव कर सकता है। अन्य प्राणियोंमें यह क्षमता नहीं होती है, वे या तो शान्त रहेंगे या दैहिक चेष्टासे अपना आनन्द व्यक्त करेंगे।

मानवयोनि कर्मयोनि है, इसी योनिमें जीव अपने शुभ-अशुभ कर्मोंके अनुसार पाप-पुण्यका भागी बनता है। उसे अपने कर्तृत्वका अभिमान रहता है। अन्य जितनी भी योनियाँ हैं, वे सब भोगयोनियाँ हैं। इन योनियोंमें जीव केवल भोग भोगता है। बुद्धि, भावना और प्रतिभाका तारतम्य मनुष्यमें ही रहता है, इसलिये मानवमें पाँचसे आठ कलातक चेतनकी अभिव्यक्ति हो सकती है।

सामान्य मनुष्योंमें जो निम्न कोटिके हैं तथा वन्य मानवोंमें चेतना पाँच कलासे विकसित रहती है। सामान्यतः सुसंस्कृत मानव-समाजमें चेतना छः कलाओंसे युक्त होती है। सर्वसामान्यकी अपेक्षा समाजमें जो विशिष्ट पुरुष हैं तथा विशेष प्रतिभासे सम्पन्न हैं, ऐसे मनुष्य प्रभुकी सात कलासे युक्त होते हैं। लोकोत्तर महापुरुष जो यदा-कदा धरापर दीखते हैं, वे आठ कलासे युक्त होते हैं। पार्थिव देह आठ कलासे अधिकका प्राकट्य सह नहीं सकती। वैसे आठ कलाके प्राकट्यसे ही पार्थिव देहमें दिव्यता आ जाती है।

कारक पुरुषोंमें नौ कलाका विकास होता है। आकस्मिक अवसरोंपर जो अवतार होते हैं, वे दस या ग्यारह कलाओंसे

युक्त होते हैं। ऐसे अवतार सहसा प्रकट हो जाते हैं और जिस कार्यके लिये प्रकट हुए, उसको सम्पन्न करके तिरोहित हो जाते हैं। मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह आदि तथा भक्तोंको दर्शन देनेके लिये जो अवतार होते हैं, वे इसी प्रकारके अवतार होते हैं।

नौ कलाका विकास दिव्य देहमें ही हो पाता है और दस या ग्यारह कला जहाँ प्रकट हो, वहाँ तो पञ्चभूतका लेश भी नहीं रह पाता। वहाँ स्थूल-सूक्ष्म देहका भेद नहीं होता। वह चिन्मय-वपु होता है। अत: उसका आकार चाहे जब जैसा बदल सकता है। जैसे भगवान् वामन विराट् हो गये। इन दिव्य देहोंमें वस्त्राभरण-आयुध आदि भी दिव्य होते हैं। ग्यारह कलासे ऊपर होनेपर प्रभु पूर्णावतारके रूपमें प्रकट होते हैं। श्रीराम और श्रीकृष्ण परिपूर्णावतार हैं। इन्होंने मानवरूपमें प्रकट होकर इस धराको अपनी पूर्ण लीलासे आप्लावित किया।

अवतारोंकी कई कोटि है, जैसे अंशांशावतार, अंशावतार, आवेशावतार, कलावतार, नित्यावतार, युगावतार आदि।

मरीचि आदि ऋषि अंशांशावतार हैं; ब्रह्मा, नारदादि अंशावतार हैं; परशुराम, पृथु आदि आवेशावतार तथा कपिल, वामन और वराहप्रभृति कलावतार हैं। इनमें कुछ नित्यावतार हैं, प्रत्येक युगमें और कल्पमें वे होते ही हैं, जैसे ब्रह्माजी सृष्टि जब होगी, तब प्रारम्भमें प्रकट होंगे और सृष्टिपर्यन्त रहेंगे। कुछ युगावतार हैं, जो निश्चित युगोंमें होते ही हैं।

वास्तवमें सृष्टिके सम्पूर्ण जीव परमात्माके ही अंशरूपमें अवतरित हैं। प्रभुकी कलाके आधारपर इनकी शक्ति, प्रभाव और क्षमतामें अन्तर होता है। अल्पकलासे युक्त जीव सामान्य होते हैं, स्वयं प्रभुका अवतरण विशेष कलाओंसे युक्त होता है।

अब एक प्रश्न उठता है कि भगवान्‌के अवतारका प्रधान प्रयोजन क्या है? भगवान् स्वयं कहते हैं—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

अर्थात् साधुपुरुषोंका उद्धार करनेके लिये, पापकर्म करनेवालोंका विनाश करनेके लिये और धर्मकी अच्छी तरहसे स्थापना करनेके लिये मैं युग-युगमें प्रकट हुआ करता हूँ।

परंतु यह बात ऐसी है जैसे मच्छरको मारनेके लिये तोप लगायी जाय। भला जो भगवान् सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् हैं, जिनके संकल्पमात्रसे सारी सृष्टिका सृजन होता है, उन्हें क्या इस तुच्छकार्यके लिये अवतार लेनेकी आवश्यकता है? अत: इसका तो कोई ऐसा कारण होना चाहिये, जहाँ भगवान्‌की सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता कुंठित हो जाती हो और जिसके लिये उन्हें दिव्य मंगल विग्रह धारण करना अनिवार्य हो जाता हो।

हमें इसका उत्तर महारानी कुन्तीके इन दिव्य शब्दोंसे मिलता है—

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम्।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः॥

(श्रीमद्भा० १।८।२०)

कुन्ती कहती हैं—भगवन्! जो अमलात्मा परमहंस मुनि हैं, उनके हृदयमें भक्तियोगका विधान करनेके लिये आपका अवतार होता है, हम स्त्रियाँ इस रहस्यको कैसे समझ सकती हैं?

यहाँ भगवान्‌के अवतारका प्रयोजन अमलात्मा मुनियोंके लिये भक्तियोग प्रदान करना बतलाया गया है। वास्तवमें भजनीयके बिना भक्ति नहीं हो सकती। प्रेमलक्षणा भक्तिका आलम्बन कोई अत्यन्त चित्ताकर्षक और परम अभिलषित तत्त्व ही हो सकता है। जो महामुनीश्वर अमलात्मा प्राकृत प्रपञ्चोंसे दूर रहकर परम तत्त्वमें परिनिष्ठित हैं, उनके मनका आकर्षण भगवान्‌के सिवा और कौन हो सकता है? अत: इस बातकी आवश्यकता होती है कि उनके परम आराध्य भगवान् ही अचिन्त्य एवं अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यमयी मंगलमूर्तिमें अवतीर्ण होकर उन्हें भजनीय रूपमें अपना स्वरूप समर्पण कर भक्तियोग प्रदान करें; क्योंकि जो कार्य पूर्ण परब्रह्म परमात्माके अवतीर्ण हुए बिना सम्पन्न न हो सकता हो, जिसके सम्पादनमें उनकी सर्वशक्तिमत्ता और सर्वज्ञता कुंठित हो जाय, उसीके लिये उनका अवतीर्ण होना सार्थक है।

ब्रह्मदर्शी तत्त्वज्ञगण जिस निर्विशेष शुद्ध ब्रह्मका साक्षात्कार करते हैं, उसकी अपेक्षा भगवान्‌का सगुण दिव्य मंगलमय विग्रह अधिक आकर्षक क्यों है—इस विषयमें भावुकोंका ऐसा कथन है कि जिस प्रकार पत्थरमें समानता होनेपर भी पाषाण आदिकी अपेक्षा हीरा अधिक मूल्यवान् होता है तथा कपासकी अपेक्षा उससे बना हुआ वस्त्र बहुमूल्य होता है, उसी प्रकार शुद्ध परब्रह्मकी अपेक्षा उसीसे विकसित भगवान्‌की दिव्य मंगलमयी मूर्ति कहीं अधिक माधुर्यसम्पन्न होती है। इक्षुदण्ड (ईख) स्वभावसे ही मधुर है, किंतु यदि उसमें कोई फल लग जाय तो उसकी मिठासका क्या कहना! मलयागिरि चन्दनके वृक्षमें यदि कोई पुष्प आ जाय तो वह कितना सुगन्धित होगा! इसी प्रकार भगवान्‌की सगुण-साकार मूर्तिके

सम्बन्धमें समझना चाहिये।

यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि भगवान्‌के निर्गुण, निर्विशेष स्वरूपमें वह परमानन्द है ही नहीं जो उनके सगुण रूपमें है, कारण—इक्षुदण्डकी मधुरिमा, पाषाण आदिका मूल्य, चन्दन आदिकी सुगन्धि—ये सब सातिशय हैं, इनमें कम-अधिक हो सकता है, परंतु भगवान्‌में जो सौन्दर्य, माधुर्य एवं आनन्दादि हैं—वे निरतिशय हैं अर्थात् अनन्तानन्त हैं।

इन सबसे यही निश्चय होता है कि भगवान्‌के अवतारका प्रधान प्रयोजन अमलात्मा परमहंसोंके लिये भक्तियोगको प्रदान करना है। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये वे अपनी लीलाशक्तिसे दिव्य मंगलमय सगुण-साकारस्वरूप धारण करते हैं। यह लीलाशक्ति भगवान्‌की परम अन्तरंगा है।

इसके साथ ही भगवान्‌की इस उक्ति—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

—के अनुसार भगवान्‌के अवतारका प्रयोजन सर्वसाधारणके कल्याणोपयुक्त धर्मकी स्थापना ही बताया गया है। यद्यपि उनके प्रादुर्भावका प्रधान प्रयोजन अमलात्माओंके भक्तियोगका विधान करना ही है तथापि अवान्तर प्रयोजन सन्मार्गपर चलनेवाले साधुओंकी रक्षा, दुष्कृतियोंका विनाश और वैदिक-स्मार्तादि कर्मोंकी स्थापना भी है ही।

विभिन्न युगोंमें भगवान्‌के सगुण-साकार रूपमें विभिन्न अवतारोंका दिव्य दर्शन हमें प्राप्त होता है। भगवान् नारायण (विष्णु), श्रीगङ्गाधर (शिव), महाशक्ति (भगवती दुर्गा), गणनाथ (गणेश) और भुवनभास्कर (सूर्यदेव)—ये पञ्चदेव एक ही तत्त्वके पाँच स्वरूप हैं, वैसे दिव्य धामोंमें इनके पृथक्-पृथक् नित्य धाम हैं, किंतु साकार विग्रह पृथक्-पृथक् होते हुए भी ये एक ही परम तत्त्वके अनेक रूप हैं। अतः इनमें न सामर्थ्यका कोई अन्तर है और न अनुग्रहका। एक अनन्त सच्चिदानन्द चाहे जिस रूपमें हों, उनमें कोई अंतर सम्भव नहीं है। अवतार इन पाँच देवोंमेंसे ही किसीका होता है अथवा इनके माध्यमसे ही होता है।

सृष्टिके पालनका दायित्व भगवान् विष्णुका—ब्रह्माण्डाधीश क्षीराब्धिशायीका है, अतः अधिकांश अवतार इनके ही अंश माने जाते हैं। इसलिये भगवान् विष्णुके चौबीस अवतारोंकी कथा पुराणोंमें प्राप्त है। भगवान्‌के दस अवतार प्रमुख हैं, जिनकी कथाएँ विशेष रूपसे प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार भगवान् सदाशिव विश्वनाथके विभिन्न अवतारोंका वर्णन, पराम्बा भगवती त्रिपुरसुन्दरीके अवतारोंका विवेचन, गजानन भगवान् गणेश और भुवनभास्कर भगवान् सूर्यनारायणके अवतारोंका वर्णन भी मिलता है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

जो-जो ऐश्वर्ययुक्त, शोभायुक्त और बलयुक्त प्राणी तथा पदार्थ हैं—उस-उसको तुम मेरे ही तेज (योग) अर्थात् सामर्थ्यके अंशसे उत्पन्न हुआ समझो।*

उपर्युक्त भगवद्वचनोंसे यह सिद्ध है कि भगवान् जब जैसी आवश्यकता होती है—कभी स्वयं पूर्णरूपसे, कभी अंशरूपसे और कभी अपने तेज, शक्ति, बुद्धि, बल आदिको किसी विशेष पुरुषमें प्रतिष्ठितकर उसे लोककल्याणके लिये जगत्‌में उपस्थित करा देते हैं, यह भी ठाकुरजीकी लीला ही है। कब, किसे, कहाँ निमित्त बनाकर जगत्‌का कार्य करवाना है, यह वे ही जान सकते हैं। भगवत्प्राप्तिका माध्यम होनेसे भगवद्विभूतिसे प्रतिष्ठित संत-महापुरुष भी लोकहितका कार्य करते हैं और भगवान्‌के निर्दिष्ट मार्गका अनुसरण करते हैं। ऐसा समझना चाहिये कि विभूतिरूपसे ये भी भगवद्रूप ही हैं।

संत-महात्मा, योगी, भक्त, आचार्य, सद्गुरु आदिमें परमात्माकी ही मर्यादा स्थित रहती है, ऐसे ही जगत्‌के भौतिक प्रतीत होनेवाले कुछ पदार्थोंमें भी विशिष्ट देवत्व स्थित रहता है। विभूतिके रूपमें भगवान्‌की विशिष्ट अवतरण-लीलाओंका निदर्शन भी समय-समयपर प्राप्त होता रहता है। पुराणादि ग्रन्थोंमें सर्वसमर्थ, कल्याणविग्रह प्रभुके मुख्य अवतारोंका सविशेष वर्णन है, पर उनमें भी क्रमभेद है।

जिस प्रकार किसी एक अक्षय जलाशयसे असंख्य छोटे-छोटे जलप्रवाह निकलकर चारों ओर धावित होते हैं, उसी प्रकार सत्त्वनिधि परमेश्वरसे विविध अवतारोंकी उत्पत्ति होती है—

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥

(श्रीमद्भा० १।३।२६)

दयाधामके इन अद्भुत एवं मंगलमय अवतारोंका चरित साधक एवं भक्तजनोंके लिये स्वाभाविक रूपसे कल्याणकारी है।

—राधेश्याम खेमका

---

* यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥ (गीता १०।४१)

‘हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे’

[भगवान् ब्रह्माजीका अवतरण]



अचिन्त्य परमेश्वरकी अतर्क्य लीलासे त्रिगुणात्मक प्रकृतिमें जब सृष्टि-प्रवाह होता है, उस समय रजोगुणसे प्रेरित वे ही परब्रह्म सगुण होकर सर्वप्रथम प्रजापति हिरण्यगर्भके रूपमें प्रकट होते हैं और वे ही अखिल प्राणि-समुदायके स्वामी हैं—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।

(यजुर्वेद २३।१)

वेदोंमें सृष्टिकर्ताके लिये विश्वकर्मन्, ब्रह्मणस्पति, हिरण्यगर्भ, ब्रह्मा तथा प्रजापति आदि नाम आये हैं। प्रत्येक कल्पकी सृष्टि-प्रक्रियामें सर्वप्रथम आविर्भाव ब्रह्माजीका ही होता है। औपनिषदश्रुतिमें बताया गया है कि हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीका प्राकट्य सर्वप्रथम हुआ और वे ही इस विश्वके रचयिता तथा इसकी रक्षा करनेवाले हैं—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।

(मुण्डक० १।१।१)

ब्रह्माजीका अवतरण किससे, कैसे और कब हुआ— इस सम्बन्धमें पुराणोंमें एक रोचक कथा प्राप्त होती है, जिसमें बताया गया है कि महाप्रलयके बाद कालात्मिका शक्तिको अपने शरीरमें निविष्ट कर भगवान् नारायण दीर्घकालतक योगनिद्रामें निमग्न रहे। महाप्रलयकी अवधि समाप्त होनेपर उनके नेत्र उन्मीलित हुए और सभी गुणोंका आश्रय लेकर वे प्रबुद्ध हुए। उसी समय उनकी नाभिसे एक दिव्य कमल प्रकट हुआ, जिसकी कर्णिकाओंके ऊपर स्वयम्भू ब्रह्मा, जो सम्पूर्ण ज्ञानमय और वेदरूप कहे गये हैं, प्रकट होकर दिखायी पड़े। उन्होंने शून्यमें अपने चारों ओर नेत्रोंको घुमा-घुमाकर देखना प्रारम्भ किया। इसी उत्सुकतामें देखनेकी चेष्टा करनेसे चारों दिशाओंमें उनके चार मुख प्रकट हो गये—

परिक्रमन् व्योम्नि विवृत्तनेत्र-
श्चत्वारि लेभेऽनुदिशं मुखानि॥

(श्रीमद्भा० ३।८।१६)

किंतु उन्हें कुछ भी दिखलायी नहीं पड़ा और उन्हें यह चिन्ता हुई कि इस नाभिकमलमें बैठा हुआ मैं कौन हूँ और कहाँसे आया हूँ तथा यह कमल भी कहाँसे निकला है। बहुत चिन्तन करनेपर और दीर्घकालतक तप करनेके बाद उन्होंने उन परम पुरुषके दर्शन किये, जिन्हें पहले कभी नहीं देखा था और जो मृणालगौर शेषशय्यापर सो रहे थे तथा जिनके शरीरसे महानीलमणिको लज्जित करनेवाली तीव्र प्रकाशमयी छटा दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रही थी। ब्रह्माजीको इससे बहुत प्रसन्नता हुई और उन्होंने उन भगवान् विष्णुको सम्पूर्ण विश्वका तथा अपना भी मूल समझकर उनकी दिव्य स्तुति की। भगवान्ने अपनी प्रसन्नता व्यक्तकर उनसे कहा कि अब आपको चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है, आप तपःशक्तिसे सम्पन्न हो गये हैं और आपको मेरा अनुग्रह भी प्राप्त है। अब आप सृष्टि करनेका प्रयत्न कीजिये। आपको अबाधित सफलता प्राप्त होगी।

भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे सरस्वती देवीने ब्रह्माजीके हृदयमें प्रविष्ट होकर उनके चारों मुखोंसे उपवेद और अङ्गोंसहित चारों वेदोंका उन्हें ज्ञान कराया। पुनः उन्होंने सृष्टि-विस्तारके लिये सनकादि चार मानस-पुत्रोंके बाद मरीचि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, भृगु, वसिष्ठ तथा दक्ष आदि मानस-पुत्रोंको उत्पन्न किया और आगे स्वायम्भुवादि मनु आदिसे सभी प्रकारकी सृष्टि होती गयी।

इस कथानकसे स्पष्ट है कि सृष्टिके प्रारम्भमें भगवान् नारायणके नाभिकमलसे सर्वप्रथम ब्रह्माजीका प्राकट्य हुआ।

इसीसे ये पद्मयोनि भी कहलाते हैं। नारायणकी इच्छाशक्तिकी प्रेरणासे स्वयं उत्पन्न होनेके कारण ये 'स्वयम्भू' भी कहलाते हैं।

मानवसृष्टिके मूलहेतु स्वायम्भुव मनु भी उन्हींके पुत्र थे और उन्हींके दक्षिण भागसे उत्पन्न हुए थे। स्वयम्भू (ब्रह्मा)-के पुत्र होनेसे ये स्वायम्भुव मनु कहलाते हैं। ब्रह्माजीके ही वामभागसे महारानी शतरूपाकी उत्पत्ति हुई। स्वायम्भुव मनु तथा महारानी शतरूपासे ही मैथुनी-सृष्टिका प्रारम्भ हुआ। सभी देवता ब्रह्माजीके पौत्र माने गये हैं, अतः वे पितामह नामसे प्रसिद्ध हैं। ब्रह्माजी यूँ तो देवता, दानव तथा सभी जीवोंके पितामह हैं, किंतु सृष्टि-रचनाके कारण वे धर्म एवं सदाचारके ही पक्षपाती हैं, अतः जब कभी पृथ्वीपर अधर्म बढ़ता है, अनीति बढ़ती है तथा पृथ्वीमाता दुराचारियोंके भारसे पीड़ित होती हैं तब कोई उपाय न देखकर गोरूप धारण कर वे देवताओंसहित ब्रह्माजीके पास ही जाती हैं। इसी प्रकार जब कभी देवासुर-संग्रामोंमें देवगण पराजित होकर अपना अधिकार खो बैठते हैं तो वे भी प्रायः ब्रह्माजीके पास ही जाते हैं और ब्रह्माजी भगवान् विष्णुकी सहायता लेकर उन्हें अवतार ग्रहण करनेको प्रेरित करते हैं। अतः विष्णुके प्रायः सभी अवतारोंमें ये ही निमित्त बनते हैं। दुर्गा आदिके अवतारोंमें भी ये ही प्रार्थना करके उन्हें विभिन्न रूपोंमें अवतरित होनेकी प्रेरणा देते हैं और पुनः धर्मकी स्थापना करनेके पश्चात् देवताओंको यथायोग्य भागका अधिकारी बनाते हैं।

इस प्रकार ब्रह्माजीका समस्त जगत् तथा देवोंपर महान् अनुग्रह है। अपने अवतरणके मुख्य कार्य सृष्टि-विस्तारको भलीभाँति सम्पन्न कर वे अपने कार्यों तथा विविध अवतारोंमें प्रेरक बनकर जीव-निकायका महान् कल्याण करते हैं। ब्रह्माजीके अवतरणका दूसरा मुख्य उद्देश्य था शास्त्रकी उद्भावना तथा उसका संरक्षण। पुराणोंमें यह वर्णन आता है कि जब विष्णुजीके नाभिकमलसे ब्रह्माजी प्रकट हुए तो भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे ही देवी सरस्वतीने प्रकट होकर उनके चारों मुखोंसे वेदोंका उच्चारण कर समस्त ज्ञानराशिका विस्तार किया—

प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती
वितन्वताजस्य सतीं स्मृतिं हृदि।
स्वलक्षणा प्रादुरभूत् किलास्यतः
स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम्॥

(श्रीमद्भा० २। ४। २२)

ब्रह्माजीके चारों मुखोंसे चार वेद, उपवेद (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, स्थापत्यवेद), न्यायशास्त्र, होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा आदि ऋत्विज् प्रकट हुए। इनके पूर्व मुखसे ऋग्वेद, दक्षिण मुखसे यजुर्वेद, पश्चिम मुखसे सामवेद तथा उत्तर मुखसे अथर्ववेदका आविर्भाव हुआ। इतिहास-पुराणरूप पञ्चम वेद भी उनके मुखसे आविर्भूत हुआ। साथ ही षोडशी, उक्थ्य, अग्निष्टोम, आप्तोर्याम, वाजपेय आदि यज्ञ तथा विद्या, दान, तप और सत्य—ये धर्मके चार पाद भी प्रकट हुए।

यज्ञकार्यमें सर्वाधिक प्रयुक्त होनेवाली पवित्र समिधा और पलाश-वृक्ष ब्रह्माजीका ही स्वरूप माना जाता है। अथर्ववेद तो ब्रह्माजीके नामसे ही 'ब्रह्मवेद' कहलाता है। पाँचों वेदोंके ज्ञाता और यज्ञके मुख्य निरीक्षक ऋत्विज्को 'ब्रह्मा'के नामसे ही कहा जाता है, जो प्रायः यज्ञकुण्डकी दक्षिण दिशामें स्थित होकर यज्ञ-रक्षा और निरीक्षणका कार्य करते हैं।

भगवान् ब्रह्मा वेदज्ञानराशिमय, शान्त, प्रसन्न और सृष्टिके रचयिता हैं। सृष्टिका निर्माण कर ये धर्म, सदाचार, ज्ञान, तप, वैराग्य तथा भगवद्भक्तिकी प्रेरणा देते हुए सदा सौम्य स्वरूपमें स्थित रहते हैं। साररूपमें ये कल्याणके मूल कारण हैं और समस्त पुरुषार्थोंके सम्पादनपूर्वक अपनी सभी प्रजा-संततियोंका सब प्रकारसे अभ्युदय करते हैं। सावित्री और सरस्वती देवीके अधिष्ठाता होनेसे सद्बुद्धिके प्रेरक भी ये ही हैं।

मत्स्यपुराण (अ० २६०)-में बताया गया है कि ब्रह्माजी चतुर्मुख, चतुर्भुज एवं हंसपर आरूढ़ रहते हैं, यथारुचि वे कमलपर भी आसीन रहते हैं। उनके वामभागमें देवी सावित्री तथा दक्षिण भागमें देवी सरस्वती विराजमान रहती हैं। ब्रह्मलोकमें ब्रह्मसभामें भगवान् ब्रह्माजी विराजमान रहते हैं, इनकी सभाको 'सुसुखा' कहा गया है। इसे ब्रह्माजीने स्वयं अपने सङ्कल्पसे उत्पन्न किया था। यह सभीके लिये सुखद है। यहाँ सूर्य, चन्द्रमा या अग्निके

प्रकाशकी आवश्यकता नहीं है। यह अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित है। सभी वेद, शास्त्र, ऋषि, मुनि तथा देवता यहाँ मूर्तरूप होकर नित्य उनकी उपासना करते रहते हैं। समस्त कालचक्र भी मूर्तिमान् होकर यहाँ उपस्थित रहता है।

ब्रह्माजीका दिन ही दैनन्दिन सृष्टि-चक्रका समय होता है। उनका दिन ही कल्प कहलाता है (एक कल्पमें चौदह मन्वन्तरका समय होता है), इतनी ही बड़ी उनकी रात्रि होती है। ब्रह्माके दिनके उदयके साथ ही त्रैलोक्यकी सृष्टि होती है और उनकी रात्रि ही प्रलयरूप है। ब्रह्माजीकी परमायु ब्राह्मवर्षके मानसे एक सौ वर्ष है, इसे 'पर' कहते हैं। पुराणों तथा धर्मशास्त्रोंके अनुसार इस समय ब्रह्माजी अपनी आयुका आधा भाग अर्थात् एक परार्ध—५० ब्राह्म दिव्य वर्ष बिताकर दूसरे परार्धमें चल रहे हैं अर्थात् यह उनके ५१वें वर्षका प्रथम दिन या कल्प है। उनके दिव्य सौ वर्षोंकी आयुमें अनेक बार सृष्टि और प्रलयका क्रम चलता रहता है। इस प्रकार ब्रह्माजी सृष्टि-सृष्ट्यन्तरमें चराचर जगत्के साक्षी बनकर स्वयं भी अवतरित होते हैं और अवतारोंके प्रेरक भी बनते हैं। उनकी करुणा सबपर है। अपनी प्रजाको उद्देश्यकर उन्होंने अनेक उपदेश उन्हें प्रदान किये हैं और सदा धर्माचरण करनेका ही परामर्श दिया है।

ब्रह्माजीने हंसरूपमें प्रकट होकर साध्यगणोंको जो



उपदेश दिया; वह बड़े ही महत्त्वका है, बड़ा ही कल्याणकारी है। हंसरूपी ब्रह्माजी कहते हैं कि वेदाध्ययनका सार है सत्यभाषण, सत्यभाषणका सार है इन्द्रियसंयम और इन्द्रियसंयमका फल है मोक्ष—यही सम्पूर्ण शास्त्रोंका उपदेश है—

वेदस्योपनिषत् सत्यं सत्यस्योपनिषद् दमः।
दमस्योपनिषन्मोक्ष एतत् सर्वानुशासनम्॥

(महा० शान्ति० २९९।१३)

संगके अमोघ प्रभावको बताते हुए ब्रह्माजी कहते हैं कि जैसे वस्त्र जिस रंगमें रंगा जाय, वैसा ही हो जाता है, उसी प्रकार यदि कोई सज्जन, असज्जन, तपस्वी अथवा चोरका साथ करता है तो वह भी उन्हीं-जैसा हो जाता है अर्थात् उसपर उन्हींका रंग चढ़ जाता है—

यदि सन्तं सेवति यद्यसन्तं
तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव।
वासो यथा रंगवशं प्रयाति
तथा स तेषां वशमभ्युपैति॥

(महा०शान्ति० २९९।३३)

इसलिये कल्याणकामी जनोंको चाहिये कि वे सज्जनोंका ही साथ करें।

सर्वदेवमयी गौ सुरभी भी ब्रह्माजीके वरसे ही महनीय पदको प्राप्त कर सकी हैं। महाभारतमें इस बातको देवराज इन्द्रसे बताते हुए ब्रह्माजीने कहा कि हे शचीपते!



जब मैंने सुरभी देवीसे कहा—मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हूँ,

वर माँगो; तब सुरभीने कहा—लोकपितामह! आपकी प्रसन्नता ही मेरे लिये सबसे बड़ा वर है—

'एष एव वरो मेऽद्य यत्प्रीतोऽसि ममानघ॥'

(महा०अनु० ८३। ३४)

सुरभीकी बात सुनकर उसकी निष्काम तपस्यासे अभिभूत हो ब्रह्माजीने उसे अमरत्वका वर दिया और उससे कहा—तुम मेरी कृपासे तीनों लोकोंके ऊपर निवास करोगी



और तुम्हारा वह धाम 'गोलोक' नामसे विख्यात होगा। महाभागे! तुम्हारी सभी शुभ संतानें मानवलोकमें कल्याणकारी कर्म करते हुए निवास करेंगी। ब्रह्माजीके वरसे ही लोकमें भी गौएँ पूज्य हुईं।

भगवान् ब्रह्माजी तपस्याके मूर्तरूप हैं। प्रलयकालके जलार्णवमें जब सर्वत्र अन्धकार-ही-अन्धकार व्याप्त था, इन्हें अव्यक्त देववाणीद्वारा 'तप करो-तप करो' का आदेश प्राप्त हुआ। उसी दैवीवाक्का अनुसरण कर ब्रह्माजी दीर्घकालतक तपस्यामें प्रवृत्त हो गये, तब प्रसन्न हो नारायणने इन्हें दर्शन दिये और इन्हें जो उपदेश दिया वह चतु:श्लोकी भागवतके रूपमें प्रसिद्ध हो गया। यह नारायणका इनपर विशेष अनुग्रह था। वे चार श्लोक इस प्रकार हैं—

यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मक:।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्॥
अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥
ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तम:॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥

(श्रीमद्भा० २।९।३१—३४)

मेरा जितना विस्तार है, मेरा जो लक्षण है, मेरे जितने और जैसे रूप, गुण और लीलाएँ हैं—मेरी कृपासे तुम उनका तत्त्व ठीक-ठीक वैसा ही अनुभव करो।

सृष्टिके पूर्व केवल मैं ही था। मेरे अतिरिक्त न स्थूल था न सूक्ष्म और न तो दोनोंका कारण अज्ञान। जहाँ यह सृष्टि नहीं है, वहाँ मैं-ही-मैं हूँ और इस सृष्टिके रूपमें जो कुछ प्रतीत हो रहा है, वह भी मैं ही हूँ और जो कुछ बच रहेगा, वह भी मैं ही हूँ।

वास्तवमें न होनेपर भी जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु मेरे अतिरिक्त मुझ परमात्मामें दो चन्द्रमाओंकी तरह मिथ्या ही प्रतीत हो रही है, अथवा विद्यमान होनेपर भी आकाश-मण्डलके नक्षत्रोंमें राहुकी भाँति जो मेरी प्रतीति नहीं होती, इसे मेरी माया समझनी चाहिये।

जैसे प्राणियोंके पञ्चभूतरचित छोटे-बड़े शरीरोंमें आकाशादि पञ्चमहाभूत उन शरीरोंके कार्यरूपसे निर्मित होनेके कारण प्रवेश करते भी हैं और पहलेसे ही उन स्थानों और रूपोंमें कारणरूपसे विद्यमान रहनेके कारण प्रवेश नहीं भी करते, वैसे ही उन प्राणियोंके शरीरकी दृष्टिसे मैं उनमें आत्माके रूपसे प्रवेश किये हुए हूँ और आत्मदृष्टिसे अपने अतिरिक्त और कोई वस्तु न होनेके कारण उनमें प्रविष्ट नहीं भी हूँ।

यह उपदेश कर नारायणने अपना रूप छिपा लिया तब सर्वभूतस्वरूप ब्रह्माजीने अञ्जलि बाँधकर उन्हें प्रणाम किया और पहले कल्पमें जैसी सृष्टि थी, उसी रूपमें इस विश्वकी रचना की—

'सर्वभूतमयो विश्वं ससर्जेदं स पूर्ववत्॥'

(श्रीमद्भा० २।९।३८)

भगवान् ब्रह्माकी पूजा-उपासना

अमूर्त उपासनामें ब्रह्माजीकी सर्वत्र पूजा होती है और सभी प्रकारके सर्वतोभद्र, लिङ्गतोभद्र तथा वास्तु

आदि चक्रोंमें उनकी पूजा मुख्य स्थानमें होती है, किंतु मन्दिरोंके रूपमें इनकी पूजा मुख्यतया पुष्कर-क्षेत्र तथा ब्रह्मावर्त-क्षेत्र (बिठूर)-में देखी जाती है, वैसे इनके भित्तिचित्र और प्रतिमाचित्र तो सर्वत्र मिलते हैं। मध्वसम्प्रदाय, जिसके भेदाभेद, स्वतन्त्रास्वतन्त्र तथा द्वैतवाद आदि अनेक नाम हैं, के आदिप्रवर्तक आचार्य भगवान् ब्रह्मा ही माने गये हैं, इसलिये उडुपी आदि मुख्य मध्वपीठोंमें भी इनकी बड़े आदरसे पूजा-आराधनाकी परम्परा है।

प्रतिमाके रूपमें ब्रह्माजीकी व्यापक पूजा ग्राम-ग्राम और नगर-नगरमें शिव, विष्णु, दुर्गा, राम, कृष्ण, हनुमान् आदिके समान नहीं देखी जाती। यद्यपि इसके कारण और आख्यान भी अनेक प्राप्त होते हैं तथापि मुख्य कथा पद्मपुराणके सृष्टिखण्डमें आती है। उसीमें यह भी बात आती है कि पुष्करके महायज्ञमें जब सभी देवता उपस्थित हो गये और सभीकी पूजा आदिके पश्चात् हवनकी तैयारी होने लगी, सभी देवपत्नियाँ भी उपस्थित हो चुकी थीं, किंतु ब्रह्माजीकी पत्नी सरस्वतीजी देवियोंके बुलाये जानेपर भी विलम्ब करती गयीं, तब अपत्नीक यज्ञका विधान न होनेसे यज्ञारम्भमें अति विलम्ब देखकर इन्द्रादि देवताओंने कुछ समयके लिये सावित्री नामकी कन्याको, जो सभी सुलक्षणोंसे सम्पन्न थी, ब्रह्माजीके वामभागमें बैठा दिया। थोड़ी देरके पश्चात् सरस्वतीजी जब पहुँचीं तो यह सब देखकर क्रुद्ध हो गयीं और उन्होंने देवताओंको बिना विचार किये काम करनेके कारण संतानरहित होनेका शाप दे दिया और ब्रह्माजीको भी पुष्कर आदि कुछ क्षेत्रोंको छोड़कर अन्यत्र मन्दिर आदिमें प्रतिमा-रूपमें पूजित न होनेका शाप दे दिया। अतः उनकी प्रस्तर आदिकी प्रतिमाएँ प्रायः अन्यत्र नहीं देखी जाती हैं, किंतु मन्त्र, ध्यान और यज्ञादिमें उनका सादर आवाहन-पूजनके पश्चात् उन्हें आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं, स्तुति-पूजा भी होती है और सर्वतोभद्रादि चक्रोंमें सर्वाधिक प्रतिष्ठित-रूपसे वे उपास्य माने गये हैं। सर्वतोभद्रचक्रके मध्यमें अष्टदल कमलकी कर्णिकामें इनका आवाहन-पूजन किया जाता है—**'मध्ये कर्णिकायां ब्रह्माणम्'**। **'ब्रह्म जज्ञानम्०'** यह उनका मुख्य मन्त्र है। **'ॐ ब्रह्मणे नमः'** इस नाम-मन्त्रसे भी पूजन होता है। वरुणकलशमें भी 'कुशब्रह्मा' की स्थापना होती है। देवता तथा असुरोंकी तपस्यामें प्रायः सबसे अधिक आराधना ब्रह्माजीकी ही होती है। विप्रचित्ति, तारक, हिरण्यकशिपु, रावण, गजासुर तथा त्रिपुर आदि असुरोंको इन्होंने वरदान देकर प्रायः अवध्य कर डाला था और देवता, ऋषि, मुनि, गन्धर्व, किन्नर तथा विद्याधरगण तो इनकी आराधनामें निरत रहते ही हैं।

सप्तर्षियोंका अवतरण

'नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः॥'

(मुण्डकोपनिषद् २।३।११)

परम ऋषियोंको नमस्कार है, परम ऋषियोंको नमस्कार है।

सप्तर्षियोंका प्रादुर्भाव श्रीब्रह्माजीके मानससङ्कल्पसे हुआ है। सृष्टिके विस्तारके लिये ब्रह्माजीने अपने ही समान दस मानस-पुत्रोंको उत्पन्न किया। उनके नाम हैं—मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष तथा नारद—

मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः॥*

(श्रीमद्भा० ३।१२।२२)

ये ऋषि गुणोंमें श्रीब्रह्माजीके समान ही हैं, अतः पुराणोंमें ये नौ ब्रह्मा भी कहे गये हैं—**'नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः॥'** (विष्णुपु० १।७।६) यही आदि ऋषि-सर्ग है। ये ही ऋषि भिन्न-भिन्न मन्वन्तरोंमें सप्तर्षियोंके

* विष्णुपुराण (१।७।५)-में श्रीनारदजीका नाम पृथक्से लिया गया है और नौकी गणना हुई है—
भृगुं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमङ्गिरसं तथा। मरीचिं दक्षमत्रिं च वसिष्ठं चैव मानसान्॥

रूपमें अवतरित होते रहते हैं।

श्रीमद्भागवतमें श्रीसूतजी शौनकादि ऋषियोंसे कहते हैं कि ऋषि, मनु, देवता, प्रजापति, मनुपुत्र और जितने भी शक्तिशाली हैं, वे सब-के-सब भगवान् श्रीहरिके ही अंशावतार अथवा कलावतार हैं—

ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः।
कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा॥

(श्रीमद्भा० १।३।२७)

इस प्रकार ब्रह्माजीके मानस पुत्र सप्तर्षिगण भी भगवान्‌के ही अवतार हैं। सप्तर्षियोंका परिगणन भगवद्विभूतियोंमें हुआ है।* इन ऋषियोंका प्रादुर्भाव ब्रह्माजीके मानसिक सङ्कल्पसे उनके अनेक अङ्गोंसे हुआ है, अतः यह ऋषिसृष्टि मानससृष्टि या आंगिक सृष्टि अथवा साङ्कल्पिक सृष्टि भी कहलाती है।

इनमें नारदजी प्रजापति ब्रह्माकी गोदसे, दक्ष अँगूठेसे, वसिष्ठ प्राणसे, भृगु त्वचासे, क्रतु हाथसे, पुलह नाभिसे, पुलस्त्य कानोंसे, अङ्गिरा मुखसे, अत्रि नेत्रोंसे और मरीचि मनसे उत्पन्न हुए—

उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे दक्षोऽङ्गुष्ठात्स्वयम्भुवः।
प्राणाद्वसिष्ठः सञ्जातो भृगुस्त्वचि करात्क्रतुः॥
पुलहो नाभितो जज्ञे पुलस्त्यः कर्णयोर्ऋषिः।
अङ्गिरा मुखतोऽक्ष्णोऽत्रिर्मरीचिर्मनसोऽभवत्॥

(श्रीमद्भा० ३।१२।२३-२४)

ब्रह्माजीसे प्रादुर्भूत ऋषियोंकी इस सृष्टिको पुराणोंमें ऋषिसर्ग कहा गया है। प्रकारान्तरसे ये ऋषि ब्रह्माजीके ही आत्मरूप—अंशरूप हैं और उन्हींके अवतार हैं। सृष्टिके विस्तार तथा उसके रक्षणमें इन ऋषियोंका महत्त्वपूर्ण योगदान है। प्रत्येक मन्वन्तरमें नामभेदसे ये ही ऋषि सप्तर्षि होकर महाप्रलयमें चराचरके सूक्ष्मतम स्वरूप और वनस्पतियों तथा औषधियोंको बीजरूपमें धारणकर विद्यमान रहते हैं, प्रलयमें भी ये बने रहते हैं और पुनः नयी सृष्टिमें उसका विस्तार करते हैं। इस प्रकारसे सप्तर्षिगण जीवोंपर महान् कृपा करते हैं। कदाचित् ये स्थूल सृष्टिके सत्त्वांश और चैतन्यांशको धारणकर प्रलयकालमें सुरक्षित न रखते तो नवीन सृष्टि पुनः होना कठिन होती। ये ऋषि भगवान्‌के अनन्य भक्त हैं और उन्हींके कृपाप्रसादसे समर्थ होकर जीवोंका कल्याण करते रहते हैं। ये एक रूपसे नक्षत्रलोकमें सप्तर्षिमण्डलमें स्थित रहते हैं और दूसरे रूपमें तीनों लोकोंमें विशेष रूपसे भूलोकमें स्थित रहकर लोगोंको धर्माचरण तथा सदाचारकी शिक्षा देते हैं तथा ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, तप, भगवत्प्रेम, सत्य, परोपकार, क्षमा, अहिंसा आदि सात्त्विक भावोंकी प्रतिष्ठा करते हैं।

प्रति चार युग (सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलि) बीतनेपर वेदविप्लव होता है। इसीलिये सप्तर्षिगण भूतलपर अवतीर्ण होकर वेदका उद्धार करते हैं। सप्तर्षिमण्डल आकाशमें सुप्रसिद्ध ज्योतिर्मण्डलोंमें है। इसके अधिष्ठाता ऋषिगण लोकमें ज्ञान-परम्पराको सुरक्षित रखते हैं। अधिकारी जिज्ञासुको प्रत्यक्ष या परोक्ष, जैसा वह अधिकारी हो, तत्त्वज्ञानकी ओर उन्मुख करके मुक्तिपथमें लगाते हैं। ये सभी ऋषि कल्पान्तचिरजीवी, त्रिकालदर्शी, मुक्तात्मा और दिव्य देहधारी होते हैं। ये स्थितप्रज्ञ तथा अतीन्द्रियद्रष्टा हैं। पुराणोंमें इन्हें ब्रह्मवादी और गृहमेधी कहा गया है (वायुपुराण)। गृहस्थ होते हुए भी ये मुनिवृत्तिसे रहते हैं। ये सत्य, धर्म, ज्ञान, शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, सदाचार एवं अपरिग्रहके मूर्तिमान् स्वरूप और ब्रह्मतेजसे सम्पन्न होते हैं। यज्ञोंद्वारा देवताओंका आप्यायन और नित्य स्वाध्याय इनकी मुख्य चर्या रहती है।

मन्वन्तर और सप्तर्षि

अलग-अलग मन्वन्तरोंमें सप्तर्षि बदल जाते हैं। मनुकाल ही मन्वन्तर कहलाता है। ब्रह्माजीके एक दिन (कल्प)-में चौदह मनु होते हैं। चौदहों मनु तथा मनुपुत्र एक-एक कर समस्त पृथ्वीके राजा होकर धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हैं। मनुओंके नामानुसार ही चौदह मन्वन्तरोंके चौदह भिन्न-भिन्न नाम पड़े हैं। इन चौदह मनुओंमें प्रथम मनुका नाम है स्वायम्भुव मनु।

भगवान् विष्णुके नाभिपद्मसे चतुर्मुख ब्रह्माजीने आविर्भूत होकर मैथुनी सृष्टिके सङ्कल्पको लेकर अपने ही शरीरसे स्वायम्भुव मनु तथा महारानी शतरूपाको प्रकट किया। ये आदि मनु ही प्रथम मनु हैं, जिनके नामसे स्वायम्भुव

* यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥ (गीता १०।४१)

मन्वन्तर पड़ा। द्वितीय मनुका नाम स्वारोचिष है। इसी प्रकार क्रमशः औत्तम, तामस, रैवत तथा चाक्षुष—ये छः मनु हुए। वर्तमानमें सातवाँ वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। इस मन्वन्तरके बाद सात मनु और होंगे, जिनके नाम हैं—सूर्यसावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, रौच्य तथा भौत्य (मार्कण्डेयपुराण)। कल्पभेदसे मन्वन्तरोंके नामोंमें भी अन्तर मिलता है।

प्रत्येक मन्वन्तरमें सप्तर्षि भिन्न-भिन्न नामरूपोंसे अवतरित होते हैं। पुराणोंमें इस बातका विस्तारसे वर्णन है। यहाँ विष्णुपुराणके अनुसार चौदह मन्वन्तरोंके सप्तर्षियोंका पृथक्-पृथक् नाम दिया जा रहा है—

प्रथम स्वायम्भुव मन्वन्तरमें—मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ।

द्वितीय स्वारोचिष मन्वन्तरमें—ऊर्ज्ज, स्तम्भ, वात, प्राण, पृषभ, निरय और परीवान्।

तृतीय उत्तम मन्वन्तरमें—महर्षि वसिष्ठके सातों पुत्र।

चतुर्थ तामस मन्वन्तरमें—ज्योतिर्धामा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वनक और पीवर।

पञ्चम रैवत मन्वन्तरमें—हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुधामा, पर्जन्य और महामुनि।

षष्ठ चाक्षुष मन्वन्तरमें—सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उत्तम, मधु, अतिनामा और सहिष्णु।

वर्तमान सप्तम वैवस्वत मन्वन्तरमें—काश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज।

अष्टम सावर्णिक मन्वन्तरमें—गालव, दीप्तिमान्, राम, अश्वत्थामा, कृप, ऋष्यशृङ्ग और व्यास।

नवम दक्षसावर्णि मन्वन्तरमें—मेधातिथि, वसु, सत्य, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, सवन और भव्य।

दशम ब्रह्मसावर्णि मन्वन्तरमें—तपोमूर्ति, हविष्मान्, सुकृत, सत्य, नाभाग, अप्रतिमौजा और सत्यकेतु।

एकादश धर्मसावर्णि मन्वन्तरमें—वपुष्मान्, घृणि, आरुणि, निःस्वर, हविष्मान्, अनघ और अग्नितेजा।

द्वादश रुद्रसावर्णि मन्वन्तरमें—तपोद्युति, तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति, तपोधन, तपोरति और तपोधृति।

त्रयोदश देवसावर्णि मन्वन्तरमें—धृतिमान्, अव्यय, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, निर्मोह, सुतपा और निष्प्रकम्प।

चतुर्दश इन्द्रसावर्णि मन्वन्तरमें—अग्निध्र, अग्निबाहु, शुचि, युक्त, मागध, शुक्र और जित।

इस प्रकार चौदह मन्वन्तरोंमें सप्तर्षियोंका परिगणन पृथक्-पृथक् नाम-रूपोंमें हुआ है। इन ऋषियोंकी अपार महिमा है, ये सभी तपोधन हैं।

ऋषियोंने वेदमन्त्रोंका दर्शन किया है, इसीलिये **'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः'** कहा गया है। ऋषि कौन हैं? इसकी व्याख्यामें बताया गया है कि ऋषि वेदमन्त्रोंके द्रष्टा और स्मर्ता हैं। इसीलिये वेदोंको अपौरुषेय कहा गया है। **'ऋषिर्दर्शनात् स्तोमान् ददर्श'** (निरुक्त नैगमकाण्ड २।११) आदि कहा गया है। यह भी वैदिक सिद्धान्त है कि वेदका अध्ययन ऋषि, छन्द, देवता और विनियोगके अधिष्ठानके साथ करना चाहिये। आचार्य शौनक कहते हैं—

'एतान्यविदित्वा योऽधीतेऽनुब्रूते जपति जुहोति यजते याजयते तस्य ब्रह्म निर्वीर्यं यातयामं भवति'''।'

(अनुक्रमणी १।१)

अर्थात् जो मनुष्य ऋषि, छन्द, देवता और विनियोगको जाने बिना वेदका अध्ययन, अध्यापन, जप, हवन, यजन, याजन आदि करते हैं; उनका वेदाध्ययन निष्फल तथा दोषयुक्त होता है।

इस प्रकार ऋषियोंके स्मरणकी विशेष महिमा है। प्रातःकाल जगनेके अनन्तर ऋषियोंके नाम-स्मरणपूर्वक उनसे मङ्गलकी कामना की जाती है—

भृगुर्वसिष्ठः क्रतुरङ्गिराश्च
मनुः पुलस्त्यः पुलहश्च गौतमः।
रैभ्यो मरीचिश्च्यवनश्च दक्षः
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥

(वामनपुराण)

वेदोंमें तो सप्तर्षियोंकी महिमाका बार-बार प्रख्यापन हुआ है। वहाँ सात संख्याका परिगणन ऋषियोंके एक विशेष

वर्गके लिये हुआ है। ब्रह्मर्षि, देवर्षि, महर्षि, परमर्षि, काण्डर्षि, श्रुतर्षि तथा राजर्षि—इन सात रूपोंमें भी ऋषियोंका विभाजन है। जैसे ४९ मरुद् देवताओंका सात-सातका वर्ग है, वैसे ही ऋषियोंमें भी सात ऋषियोंके वर्ग हैं, जो सप्तर्षि कहलाते हैं। सातकी संख्याकी विशेष महिमा है। इस ब्रह्माण्डमें सात लोक ऊपर और सात लोक नीचे हैं, सात ही सागर हैं, वेदके गायत्री, उष्णिक् आदि सात छन्द ही मुख्य हैं, भगवान् सूर्य सप्ताश्ववाहन कहे जाते हैं। यजुर्वेदके एक मन्त्रमें सातकी संख्याका विशेष परिज्ञान कराया गया है—

सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त ऋषयः सप्त धाम प्रियाणि। सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरा पृणस्व घृतेन स्वाहा॥ (यजु० १७।७९)

उपनिषद्के एक मन्त्रमें भी सातकी संख्याका अवबोधन कराया गया है—

सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्
सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः।
सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा
गुहाशया निहिताः सप्त सप्त॥

(मुण्डकोपनिषद् २।१।८)

यज्ञमें छन्दोमय सात परिधियाँ तथा सात-सातकी संख्यामें समिधाएँ बतायी गयी हैं। '**सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः**' (यजु० ३१।१५)। सप्तशती तथा सप्ताह आदिमें भी सप्त पद निहित है।

प्रातःस्मरणके एक माङ्गलिक श्लोकमें सप्तर्षियों तथा सात-सातकी संख्यावाले पदार्थोंसे प्रभातको सुप्रभात बनानेकी प्रार्थना की गयी है—

सप्त स्वराः सप्त रसातलानि
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥
सप्तार्णवाः सप्त कुलाचलाश्च
सप्तर्षयो द्वीपवनानि सप्त।
भूरादिकृत्वा भुवनानि सप्त
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥

(वामनपुराण)

अर्थात् षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत तथा निषाद—ये सप्त स्वर; अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल तथा पाताल—ये सात अधोलोक सभी मेरे प्रातःकालको मङ्गलमय करें। सातों समुद्र, सातों कुलपर्वत, सप्तर्षिगण, सातों वन तथा सातों द्वीप; भूर्लोक, भुवर्लोक आदि सातों लोक— सभी मेरे प्रातःकालको मङ्गलमय करें।

इसी आशयसे ऋषियोंकी सातकी संख्याको लेकर एक विशेष वर्ग है, जो सप्तर्षि कहलाता है।

सप्तर्षियोंकी आराधना—वेदके अनेक मन्त्रोंमें सप्तर्षियोंकी प्रार्थना की गयी है। तर्पणमें नित्य ऋषितर्पण होता है तथा श्रावणीके दिन ऋषियोंका तर्पण तथा विशेष पूजन होता है। वेदमें प्राप्त सप्तर्षियोंकी प्रार्थनाके मुख्य मन्त्रका भाव यह है कि सप्तर्षिगण सूक्ष्मरूपसे इस देहमें भी विद्यमान रहकर देवरूप होकर इसका संचालन करते हैं। ये सात ऋषि प्राण, त्वचा, चक्षु, श्रवण, रसना, घ्राण तथा मन-रूपसे देहमें स्थित रहते हैं और सुषुप्तिकालमें देहमें व्याप्त रहते हुए भी हृदयाकाशस्थित विज्ञानात्मक ब्रह्ममें प्रविष्ट हो जाते हैं—

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्। सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥

(यजु० ३४।५५)

इसके साथ ही यजुर्वेद (१३।५४—५८)-में सप्तर्षियोंके पूजनके मन्त्र आये हैं। भाद्रपद शुक्ल पञ्चमी ऋषिपञ्चमीके नामसे विख्यात है, इस दिन इनकी विशेष पूजा-आराधना की जाती है तथा सातों ऋषियोंकी पृथक्-पृथक् यथाशक्ति स्वर्णादिकी प्रतिमा बनाकर प्रतिष्ठाकर उनकी पूजा की जाती है।

'**अरुन्धतीसहितसप्तर्षिभ्यो नमः**' इस नाममन्त्रसे भी एक साथ पूजन किया जा सकता है। इनके ध्यानमें बताया गया है कि ये ऋषिश्रेष्ठ ब्रह्मतेज और करोड़ों सूर्योंकी आभासे सम्पन्न हैं—

कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गौतमः।
जमदग्निर्वसिष्ठश्च अरुन्धत्या सहाष्टकाः॥
मूर्तिं ब्रह्मण्यदेवर्षेर्ब्रह्मण्यं तेज उत्तमम्।
सूर्यकोटिप्रतीकाशमृषिवृन्दं विचिन्तयेत्॥

(वर्षकृत्यदीपक)

कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि

तथा वसिष्ठ—ये वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तरके सप्तर्षि हैं। महर्षि वसिष्ठजीके साथ उनकी धर्मप्राणा देवी अरुन्धती भी साथमें ही सप्तर्षिमण्डलमें स्थित रहती हैं। महाभागा अरुन्धतीके पातिव्रत्यकी अपार महिमा है, इसी बलपर ये सदा वसिष्ठजीके साथ रहती हैं। सप्तर्षियोंके साथ देवी अरुन्धतीजीका भी पूजन होता है। अखण्ड सौभाग्य तथा श्रेष्ठ दाम्पत्यके लिये इनकी आराधना होती है।

आकाशमें सप्तर्षिमण्डल कहाँ स्थित है—इस विषयमें श्रीमद्भागवत (५। २२। १७)-में बताया गया है कि नवग्रहोंके लोकोंसे ऊपर ग्यारह लाख योजनकी दूरीपर कश्यप आदि सप्तर्षि दिखायी देते हैं। ये सब लोकोंकी मङ्गलकामना करते हुए भगवान् विष्णुके परम पद ध्रुवलोकको प्रदक्षिणा किया करते हैं—**'तत उत्तरस्मादृषय एकादशलक्षयोजनान्तर उपलभ्यन्ते य एव लोकानां शमनुभावयन्तो भगवतो विष्णोर्यत्परमं पदं प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति॥'**

आकाशमें सप्तर्षिमण्डलके उत्तरमें ध्रुवलोक स्थित है।

इस प्रकार सप्तर्षिमण्डलमें स्थित रहकर ये सप्तर्षिगण जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंके साक्षी बनते हैं और भगवान्की अवतरणलीलामें सहयोगी बनते हैं। भगवान् श्रीराम आदिकी लीलामें महर्षि वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम तथा अत्रि आदि ऋषि सहयोगी रहे हैं। ऐसे ही अन्य अवतारोंमें भी ऋषिगण भगवान्की भक्ति करते हैं और उन्हींके कृपाप्रसादसे जगत्के कल्याणकार्यमें सतत चेष्टारत रहते हैं। भगवान्के लीलासंवरणके अनन्तर भी ये उनके द्वारा प्रतिपादित धर्मकी मर्यादाको सुरक्षित रखनेके लिये कल्पपर्यन्त बने रहते हैं और पुनः अवतरित होते हैं।

भगवती संध्याका माता अरुन्धतीके रूपमें अवतरण

संध्या ब्रह्माजीकी मानस पुत्री थी। वह तपस्या करनेके लिये चन्द्रभाग पर्वतके बृहल्लोहित नामक सरोवरके पास घूम रही थी और इस बातके लिये बड़ी उत्सुक थी कि कोई संत सद्गुरु प्राप्त हो एवं मुझे तपस्याका मार्ग बतावे। भगवान्के प्यारे भक्त सर्वदा लोगोंके हितसाधनमें तत्पर रहते हुए इस बातकी प्रतीक्षा किया करते हैं कि कोई सच्चा जिज्ञासु मिले और उसे कल्याणकी ओर अग्रसर करें। संध्याकी जिज्ञासा देखकर महर्षि वसिष्ठ वहीं प्रकट हुए और संध्यासे पूछा—'कल्याणी! तुम इस घोर जङ्गलमें कैसे विचर रही हो, तुम किसकी कन्या हो और क्या करना चाहती हो? यदि कोई गोपनीय बात न हो तो यह भी बताओ कि तुम्हारा यह सुन्दर मुखमण्डल उदास क्यों हो रहा है?' संध्या उनके चरणोंमें नमस्कार करके उन मूर्तिमान् ब्रह्मचर्य महर्षि वसिष्ठसे बड़ी नम्रताके साथ कहने लगी—'भगवन्! मैं तपस्या करनेके लिये इस सूने जङ्गलमें आयी हूँ। अबतक मैं बहुत उद्विग्न हो रही थी कि कैसे तपस्या करूँ, मुझे तपस्याका मार्ग मालूम नहीं है, परंतु अब आपको देखकर मुझे बड़ी शान्ति मिली है और मेरी अभिलाषा पूर्ण हो जायगी।' सर्वज्ञ वसिष्ठने उसकी बात सुनकर उसके मनके सारे भाव जान लिये और कुछ नहीं पूछा। फिर जैसे एक कारुणिक गुरु अपने शिष्यको उपदेश करता है, वैसे ही बड़े स्नेहसे बोले—'कल्याणी! तुम एकमात्र परम ज्योतिस्वरूप, धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षके दाता भगवान् विष्णुकी आराधना करके ही अपना अभीष्ट प्राप्त कर सकती हो। सूर्यमण्डलमें शंख-चक्र-गदाधारी चतुर्भुज वनमाली भगवान् विष्णुका ध्यान करके **'ॐ नमो वासुदेवाय ॐ'** इस मन्त्रका जप करो और मौन रहकर तपस्या करो। स्नान, पूजा और सब कुछ मौन होकर ही करो। पहले छः दिनतक कुछ भी भोजन मत करना, केवल तीसरे दिन रात्रिमें एवं छठे दिन रात्रिमें कुछ पत्ते खाकर जल पी लेना। उसके पश्चात् तीन दिनतक निर्जल उपवास करना और फिर रात्रिमें भी पानी मत पीना। इस तरह तपस्या समाप्त होनेपर हर तीसरे दिन रात्रिमें कुछ भोजन कर सकती हो। वृक्षोंका वल्कल पहनना और जमीनपर सोना। इस प्रकार तपस्या करती हुई भगवान्का चिन्तन करो। भगवान् तुमपर प्रसन्न होंगे और शीघ्र ही तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करेंगे।' इस प्रकार उपदेश करके महर्षि

वसिष्ठ अन्तर्धान हो गये और वह भी तपस्याकी पद्धति जानकर बड़े आनन्दके साथ भगवान्‌की पूजा करने लगी। इस प्रकार बराबर चार युगतक उसकी तपस्या चलती रही। उसके व्रतको देखकर सभी आश्चर्यचकित और विस्मित थे।

अब भगवान् विष्णु भी उसकी भावनाके अनुसार



रूप धारण करके उसके समक्ष प्रकट हुए। गरुडपर सवार अपने प्रभुकी मनोहर छविको देखकर वह सम्भ्रमके साथ उठ खड़ी हुई और 'क्या कहूँ? क्या करूँ?' इस चिन्तामें पड़ गयी। उसकी स्तुति करनेकी इच्छा जानकर भगवान्‌ने उसे दिव्य ज्ञान, दिव्य दृष्टि एवं दिव्य वाणी प्रदान की। अब वह भगवान्‌की स्तुति करने लगी। बड़े प्रेमसे ज्ञानपूर्ण स्तुति करते-करते वह भगवान्‌के चरणोंपर गिर पड़ी। उसके तप:कृश शरीरको देखकर भगवान्‌को बड़ी दया आयी और उन्होंने अमृतवर्षिणी दृष्टिसे उसे हृष्ट-पुष्ट कर दिया तथा वर माँगनेको कहा। संध्याने कहा 'भगवन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कृपा करके पहला वर तो यह दें कि संसारमें पैदा होते ही किसी प्राणीके मनमें कामके विकारका उदय न हो और दूसरा वर यह दीजिये कि मेरा पातिव्रत्य अखण्ड रहे तथा तीसरा यह कि मेरे भगवत्स्वरूप पतिके अतिरिक्त और कहीं भी मेरी सकाम दृष्टि न हो। जो पुरुष मुझे सकाम दृष्टिसे देखे, वह पुरुषत्वहीन अर्थात् नपुंसक हो जाय।' भगवान्‌ने कहा—चार अवस्थाएँ होती हैं—बाल्य, कौमार, यौवन और बुढ़ापा। इनमें तीसरी अवस्था अथवा दूसरी अवस्थाके अन्तमें लोगोंमें काम उत्पन्न होगा। तुम्हारी तपस्याके प्रभावसे आज मैंने यह मर्यादा बना दी कि पैदा होते ही कोई प्राणी कामयुक्त नहीं होगा। त्रिलोकीमें तुम्हारे सतीत्वकी ख्याति होगी और तुम्हारे पतिके अतिरिक्त जो भी तुम्हें सकाम दृष्टिसे देखेगा वह तुरंत नपुंसक हो जायगा। तुम्हारे पति बड़े भाग्यवान्, तपस्वी, सुन्दर और तुम्हारे साथ ही सात कल्पतक जीवित रहनेवाले होंगे। तुमने मुझसे जो वर माँगे थे, वे दे दिये। अब जो तुम्हारे मनमें बात है वह बताता हूँ। तुमने पहले आगमें जलकर शरीर त्याग करनेकी प्रतिज्ञा की थी सो यहीं चन्द्रभागा नदीके किनारे महर्षि मेधातिथि बारह वर्षका यज्ञ कर रहे हैं, उसीमें जाकर शीघ्र ही अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो, वहाँ ऐसे वेशसे जाओ कि मुनिलोग तुम्हें देख न सकें। मेरी कृपासे तुम अग्निदेवकी पुत्री हो जाओगी। जिसे तुम पति बनाना चाहती हो, मनसे उसका चिन्तन करते-करते अपना शरीर त्याग करो।' यह कहकर भगवान्‌ने अपने करकमलोंसे संध्याके शरीरका स्पर्श किया और तुरंत ही उसका शरीर पुरोडाश (यज्ञका हविष्य) बन गया। उन महामुनिके सकल विश्वहितकारी यज्ञमें अग्नि मांसभोजी न हो जाय, इसलिये प्रभुने ऐसा किया। इसके बाद सन्ध्या भी अदृश्य होकर उस यज्ञमण्डपमें गयी। भगवान्‌की कृपासे उस समय उसने अपने मनमें मूर्तिमान् ब्रह्मचर्य और तपश्चर्याके उपदेशक वसिष्ठको पतिके रूपमें वरण किया और उन्हींका चिन्तन करते-करते अपने पुरोडाशमय शरीरको पुरोडाशके रूपमें अग्निदेवको समर्पित कर दिया। अग्निदेवने भगवान्‌की आज्ञासे उसके शरीरको जलाकर सूर्यमण्डलमें प्रविष्ट कर दिया। सूर्यने उसके शरीरके दो भाग करके अपने रथपर देवता और पितरोंकी प्रसन्नताके लिये स्थापित

कर लिया। उसके शरीरका ऊपरी भाग जो दिनका प्रारम्भ यानी प्रात:काल है, उसका नाम 'प्रात:संध्या' और शेषभाग दिनका अन्त 'सायंसंध्या' हुआ। भगवान्ने उसके प्राणको दिव्य शरीर और अन्त:करणको शरीरी बनाकर मेधातिथिके यज्ञीय अग्निमें स्थापित कर दिया। इसके पश्चात् मेधातिथिने यज्ञके अन्तमें उस स्वर्णके



समान सुन्दरी संध्याको पुत्रीके रूपमें प्राप्त किया। उस समय यज्ञीय अर्घ्यजलमें स्नान कराकर वात्सल्य स्नेहसे परिपूर्ण और आनन्दित होकर उसे गोदमें उठा लिया और उसका नाम अरुन्धती रखा। किसी भी कारणसे वह धर्मका रोध नहीं करती थी, इसीसे उसका 'अरुन्धती' नाम सार्थक हुआ। यज्ञ समाप्त होनेके बाद कृतकृत्य होकर मेधातिथि अपने शिष्योंके साथ अपने आश्रमपर रहते हुए आनन्दित होकर अपनी कन्या अरुन्धतीका लालन-पालन करने लगे।

अब कुमारी अरुन्धती मेधातिथिके चन्द्रभागानदीके तटपर स्थित तापसारण्य नामक आश्रममें शुक्लपक्षकी चन्द्रकलाकी भाँति दिनोंदिन बढ़ने लगी। पाँचवें वर्षमें पदार्पण करनेपर ही उसके सद्गुणोंसे सम्पूर्ण तापसारण्य पवित्र हो गया। आज भी लोग उस अरुन्धतीके क्रीड़ाक्षेत्र तापसारण्य और चन्द्रभागाके जलमें जा-जाकर स्नान करते हैं और विष्णुपदलाभ करते हैं, उनकी सांसारिक अभिलाषाएँ भी पूर्ण होती हैं।

एक दिन जब अरुन्धती चन्द्रभागाके जलमें स्नान करके अपने पिता मेधातिथिके पास ही खेल रही थी, स्वयं ब्रह्माजी पधारे और उसके पितासे कहा, 'अब अरुन्धतीको शिक्षा देनेका समय आ गया है, इसलिये इसे अब सती-साध्वी स्त्रियोंके पास रखकर शिक्षा दिलवानी चाहिये; क्योंकि कन्याकी शिक्षा पुरुषोंद्वारा नहीं होनी चाहिये। स्त्री ही स्त्रियोंको शिक्षा दे सकती है; किंतु तुम्हारे पास तो कोई स्त्री नहीं है, अतएव तुम अपनी कन्याको बहुला और सावित्रीके पास रख दो। तुम्हारी कन्या उनके पास रहकर शीघ्र ही महागुणवती हो जायगी।' मेधातिथिने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की और उनके जानेपर वे अरुन्धतीको लेकर सूर्यलोकमें गये। वहाँ उन्होंने सूर्यमण्डलमें स्थित पद्मासनासीन सावित्री देवीका दर्शन किया। उस समय बहुला मानस-पर्वतपर जा रही थीं, इसलिये सावित्री देवी भी सूर्यमण्डलसे निकलकर वहींके लिये चल पड़ीं। बात यह थी कि प्रतिदिन वहाँ सावित्री, गायत्री, बहुला, सरस्वती एवं द्रुपदा एकत्रित होकर धर्मचर्चा करती थीं और लोक-कल्याणकी कामना किया करती थीं। महर्षि मेधातिथिने उन माताओंको पृथक्-पृथक् प्रणाम किया और सबको सम्बोधन करके कहा कि 'यह मेरी यशस्विनी कन्या है। यही इसके उपदेशका समय है। इसीसे मैं इसे लेकर यहाँ आया हूँ। ब्रह्माने ऐसी ही आज्ञा की है। अब यह आपके पास ही रहेगी। माता सावित्री और बहुला आप दोनों इसे ऐसी शिक्षा दें कि यह सच्चरित्र हो।' उन दोनोंने कहा—'महर्षे! भगवान् विष्णुकी कृपासे तुम्हारी कन्या पहलेसे ही सच्चरित्र हो चुकी है; किंतु ब्रह्माकी आज्ञाके कारण हम इसे अपने पास रख लेती हैं। यह शिक्षा प्राप्त करे। यह पूर्वजन्ममें ब्रह्माकी कन्या थी। तुम्हारे तपोबलसे और भगवान्की कृपासे यह तुम्हारी पुत्री हुई है। यह सती न केवल तुम्हारा या तुम्हारे कुलका बल्कि सारे संसारका कल्याण करेगी।'

मेधातिथि वहाँसे विदा हुए और अरुन्धती उनकी सेवा करने लगी। उन जगन्माताओंकी सेवामें रहकर अरुन्धतीका समय बड़े आनन्दसे बीतने लगा। अरुन्धती कभी सावित्रीके साथ सूर्यके घर जाती तो कभी बहुलाके साथ इन्द्रके घर जाती। इस प्रकार सात वर्ष और बीत गये और स्त्रीधर्मकी शिक्षा प्राप्त करके वह अपनी शिक्षिका सावित्री और बहुलासे भी श्रेष्ठ हो गयी। एक दिन मानसपर्वतपर विचरण करते-करते अरुन्धतीने मूर्तिमान् ब्रह्मचर्य महर्षि वसिष्ठको देखा। इन्हें देखते ही उसका मन क्षुब्ध हो गया और वह कामके विकारसे काँप उठी। किसी प्रकार धैर्य धारण करके पश्चात्ताप करती हुई वह बहुला और सावित्रीके निकट उपस्थित हुई। अरुन्धतीको उदास देखकर सावित्रीने ध्यानयोगसे सारी बात जान ली और उसके मस्तकपर हाथ रखकर वात्सल्यपूर्ण शब्दोंमें पूछा। उनका प्रश्न सुनकर अरुन्धती संकोचके मारे जमीनमें गड़ गयी, उससे बोला नहीं गया। अन्तत: सावित्रीने स्वयं सारी बात कहकर समझाया कि 'वे परम तेजस्वी ऋषि कोई दूसरे नहीं हैं, वे तुम्हारे भावी पति हैं और यह पहलेसे ही निश्चित हो चुका है। उनके दर्शनके कारण क्षोभ होनेसे तुम्हारा सतीत्व नष्ट नहीं हुआ। तुमने उन्हें पतिके रूपमें पूर्वजन्ममें ही वरण कर लिया है और वे भी तुमसे प्रेम करते हैं, तुम्हें हृदयसे चाहते हैं।'

इसके बाद सावित्रीने अरुन्धतीको उसके पूर्वजन्मकी कथा कह सुनायी, जिससे अरुन्धतीको बड़ा सन्तोष मिला और उसे पूर्वजन्मकी बातें याद आ गयीं। इसके बाद सावित्री ब्रह्माके पास गयीं और उनसे सब बातें कहकर अरुन्धतीके विवाहके लिये यही उपयुक्त समय बतलाया। ब्रह्मा भी निश्चय करके मानसपर्वतपर आ गये और शंकर तथा विष्णुको भी वहीं प्रार्थना करके बुलाया। मेधातिथिको बुलानेके लिये नारदको भेजा और नारदजी जाकर उनको बुला लाये। ब्रह्मा आदिके कहनेपर मेधातिथिने उनके साथ ही अपनी कन्याको लेकर मानसपर्वतके लिये प्रस्थान किया और जाकर देखा कि महर्षि वसिष्ठ मानसपर्वतकी कन्दरामें समाधि लगाये बैठे हैं और उनके मुखमण्डलसे सूर्यकी भाँति प्रकाशकी किरणें निकल रही हैं। उनकी समाधि टूटनेपर अपनी कन्याको आगे करके मेधातिथिने निवेदन किया—'भगवन्! यह मेरी ब्रह्मचारिणी पुत्री है, आप इसे ब्राह्म विधिसे स्वीकार करें। आप जहाँ-जहाँ, चाहे जिस रूपमें रहेंगे, यह आपकी सेवा करेगी और छायाकी भाँति पीछे-पीछे चलेगी।' मेधातिथिकी प्रार्थना सुनकर तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओंको आये हुए देखकर और तपस्याके बलसे भावी बातको जानकर महर्षि वसिष्ठने स्वीकार कर लिया। अरुन्धतीकी आँखें उनके चरणोंमें लग गयीं। अब ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं इन्द्रादि देवताओंने विवाहोत्सव सम्पन्न किया। उनके वल्कल आदिके वस्त्र, मृगचर्म और जटाको खोलकर बड़े सुन्दर-सुन्दर बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहनाये। विधिपूर्वक स्वर्णकलशके जलसे अभिषेक-स्नान कराया, वैदिक मन्त्रोंका पाठ हुआ। ब्रह्माने सूर्यके समान प्रकाशमान्, त्रिलोकीमें बिना रुकावटके उड़नेवाला बड़ा सुन्दर विमान दिया। विष्णुने सबसे ऊँचा स्थान दिया और रुद्रने सात कल्पतककी आयु दी। अदितिने ब्रह्माके बनाये हुए अपने दोनों कानोंके कुण्डल उतारकर दे दिये। सावित्रीने पातिव्रत्य, बहुलाने बहुपुत्रत्व, देवेन्द्रने बहुत-से रत्न और कुबेरने समता दी। इसी प्रकार सभी ऋषि-मुनियोंने अपनी ओरसे उपहार दिये।

विवाहके अवसरपर ब्रह्मा, विष्णु आदिके द्वारा स्नान कराते समय जो जलधाराएँ गिरी थीं, वे ही गोमती, सरयू, शिप्रा, महानदी आदि सात नदियोंके रूपमें हो गयीं, जिनके दर्शन, स्पर्श, स्नान और पानसे सारे संसारका कल्याण होता है। विवाहके पश्चात् वसिष्ठजी महाराज अपनी धर्मपत्नीके साथ विमानपर सवार होकर देवताओंके बतलाये हुए स्थानपर चले गये। वे जब-जहाँ-जिस रूपमें रहकर तपस्या करते हुए संसारके कल्याणमें संलग्न रहते हैं, तब-वहाँ-उन्हींके अनुरूप वेशमें रहकर अरुन्धती उनकी सेवा किया करती हैं। आज भी सप्तर्षिमण्डलमें स्थित वसिष्ठके पास ही वे दीखती हैं।

विष्णुके अंशावतार श्रीभरतजी



भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही॥

श्रीभरतजी श्रीरामके ही स्वरूप हैं। वे व्यूहावतार माने जाते हैं और उनका वर्ण ऐसा है कि—

भरतु रामही की अनुहारी। सहसा लखि न सकहिं नर नारी॥

विश्वका भरण-पोषण करनेवाले होनेसे ही उनका नाम 'भरत' पड़ा। धर्मके आधारपर ही सृष्टि है। धर्म ही धराको धारण करता है। धर्म है, इसलिये संसार चल रहा है। संसारकी तो बात जाने दीजिये, यदि एक गाँवमेंसे पूरा-पूरा धर्म चला जाय, वहाँ कोई धर्मात्मा किसी रूपमें न रहे तो उस गाँवका तत्काल नाश हो जायगा। भरतजीने धर्मके उसी धुरे—आदर्शको धारण किया।

जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को॥

जन्मसे ही भरतलाल श्रीरामके प्रेमकी मूर्ति थे। वे सदा श्रीरामके सुख और उनकी प्रसन्नतामें ही प्रसन्न रहते थे। मैं-पनका भान उनमें कभी आया ही नहीं। उन्होंने स्वयं कहा है—

महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कही न बैन।
दरसन तृपित न आजु लगि पेम पिआसे नैन॥

बड़ा ही संकोची स्वभाव था भरतलालका। अपने बड़े भाईके सामने वे संकोचकी ही मूर्ति बने रहते थे। ऐसे संकोची, ऐसे अनुरागी, ऐसे भ्रातृभक्त भावमयको जब पता लगा कि माता कैकेयीने उन्हें राज्य देनेके लिये श्रीरामको वनवास दिया है, तब उनकी व्यथाका पार नहीं रहा। कैकेयीको उन्होंने बड़े कठोर वचन कहे, परंतु ऐसी अवस्थामें भी वे दयानिधि किसीका कष्ट नहीं सह पाते थे। जिस मन्थराने यह सब उत्पात किया था, उसीको जब शत्रुघ्नलाल दण्ड देने लगे, तब भरतजीने छुड़ा दिया! धैर्यके साथ पिताका और्ध्वदैहिक कृत्य करके भरतजी श्रीरामको वनसे लौटानेके लिये चले। उन्होंने राज्यकी रक्षाका प्रबन्ध कर दिया था। अयोध्याका जो साम्राज्य देवताओंको भी लुभाता था, उस राज्यको, उस सम्पत्तिको भरतने तृणसे भी तुच्छ मानकर छोड़ दिया! वे बार-बार यह सोचते थे—'श्रीराम, माता जानकी और लक्ष्मण अपने सुकुमार चरणोंसे वनके कठोर मार्गमें भटकते होंगे।' यही व्यथा उन्हें व्याकुल किये थी। वे भरद्वाजसे कहते हैं—

राम लखन सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं॥
अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात।
बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बरषा बात॥
एहि दुख दाहँ दहइ दिन छाती। भूख न बासर नीद न राती॥

वे स्वयं मार्गमें उपवास करते, कंद-मूल खाते और भूमिपर शयन करते थे। साथमें रथ, अश्व, गज चल रहे थे; किंतु भरतलाल पैदल चलते थे। उनके लाल-लाल कोमल चरणोंमें फफोले पड़ गये थे; किंतु उन्होंने सवारी अस्वीकार कर दी। उन्होंने सेवकोंसे कह दिया—

रामु पयादेहि पायँ सिधाए। हम कहँ रथ गज बाजि बनाए॥
सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा॥

भरतका प्रेम, भरतका भाव, भरतकी विह्वलताका वर्णन तो श्रीरामचरितमानसके अयोध्याकाण्डमें ही देखने योग्य है। ऐसा अलौकिक अनुराग कि जिसे देखकर पत्थरतक पिघलने लगे! कोई 'श्रीराम' कह दे, कहीं श्रीरामके स्मृति-चिह्न मिलें, किसीसे सुन पड़े श्रीरामका समाचार, वहीं, उसीसे भरत विह्वल होकर लिपट पड़ते हैं! सबसे उन्हें अविचल रामचरणानुराग ही माँगना है। चित्रकूट पहुँचकर वे अपने प्रभुके जब चरणचिह्न देखते हैं, तो—

हरषहिं निरखि राम पद अंका। मानहुँ पारसु पायउ रंका॥
रज सिर धरि हियँ नयनन्हि लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं॥

महर्षि भरद्वाजने ठीक ही कहा था—

तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरें देह जनु राम सनेहू॥

चित्रकूटमें श्रीरामजी मिलते हैं। अयोध्याके समाजके पीछे ही महाराज जनक भी वहाँ पहुँच जाते हैं। महर्षि वसिष्ठ तथा विश्वामित्रजी और महाराज जनकतक कुछ कह नहीं पाते। सब लोग परिस्थितिकी विषमता देखकर थकित हो जाते हैं। सारी मन्त्रणाएँ होती हैं और अनिर्णीत रह जाती हैं। केवल जनकजी ठीक स्थिति जानते हैं। वे भरतको पहचानते हैं। एकान्तमें रानी सुनयनासे उन्होंने कहा—

परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे॥
साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू॥
भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं मनसहुँ राम रजाइ।

श्रीराम क्या आज्ञा दें? वे भक्तवत्सल हैं। भरतपर उनका असीम स्नेह है। वे भरतके लिये सब कुछ त्याग सकते हैं। उन्होंने स्पष्ट कह दिया—

मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु।

परंतु धन्य हैं भरतलाल! धन्य है उनका अनुराग! आराध्यको जो प्रिय हो, जिसमें श्रीरामकी प्रसन्नता हो, जो करनेसे श्रीरघुनाथको संकोच न हो, वही उन्हें प्रिय है। उन्हें चाहे जितना कष्ट सहना पड़े; किंतु श्रीरामको तनिक भी संकोच नहीं होना चाहिये। उनका अविचल निश्चय है—

जो सेवकु साहिबहि सँकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची॥

अतएव श्रीरामकी प्रसन्नताके लिये उनकी चरणपादुका लेकर भरत अयोध्या लौट आये। राजसिंहासनपर पादुकाएँ पधरायी गयीं। राम वनमें रहें और भरत राजसदनके सुख भोगें—यह सम्भव नहीं था। अयोध्यासे बाहर नन्दिग्राममें भूमिमें गड्ढा खोदकर कुशका आसन बिछाया उन्होंने। चौदह वर्षतक वे महातापस बिना लेटे; बैठे रहे। गोमूत्रयावक-व्रत ले रखा था उन्होंने। गायको जौ खिला देनेपर वह जौ गोबरमें निकलता है, उसीको गोमूत्रमें पकाकर वे ग्रहण करते थे। चौदह वर्ष उनकी अवस्था कैसी रही, यह गोस्वामी तुलसीदासजी बतलाते हैं—

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू॥

भरतजीने इसी प्रकार अवधिके वे वर्ष बिताये। उनका दृढ़ निश्चय था—

बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥

श्रीराम भी इसे भलीभाँति जानते थे। उन्होंने भी विभीषणसे कहा—

बीतें अवधि जाउँ जौं जिअत न पावउँ बीर।

इसीलिये श्रीरघुनाथजीने हनुमान्‌जीको पहले ही भरतके पास भेज दिया था। जब पुष्पकसे श्रीराघवेन्द्र आये, उन्होंने तपस्यासे कृश हुए, जटा बढ़ाये अपने भाईको देखा। उन्होंने देखा कि भरतजी उनकी चरणपादुकाएँ मस्तकपर रखे चले आ रहे हैं। प्रेमविह्वल रामने भाईको हृदयसे लिपटा लिया।

तत्त्वत: भरत और श्रीराम नित्य अभिन्न हैं। अयोध्यामें या नित्यसाकेतमें भरतलाल सदा श्रीरामकी सेवामें संलग्न, उनके समीप ही रहते हैं।

शेषावतार श्रीलक्ष्मणजी

बंदउँ लछिमन पद जलजाता। सीतल सुभग भगत सुख दाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका॥

श्रीरामके चतुर्व्यूह स्वरूपमेंसे ही एक रूप लक्ष्मणजी हैं। वाल्मीकिजीने उन्हें ***‘सहससीसु अहीसु महिधरु’*** कहकर भगवान् शेषका अवतार बताया है। श्रीरामकी सेवा करना ही उनके जीवनका एकमात्र व्रत है। जब वे बहुत छोटे थे, पलनेमें रहते थे, तभीसे श्रीराघवके अनुयायी थे।

बारेहि ते निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी॥

जब विश्वामित्रजीकी यज्ञ-रक्षा करने ये रामजीके साथ गये, तब बड़े भाईकी सम्पूर्ण सेवा स्वयं ही करते थे। रात्रिमें जब दोनों भाई मुनि विश्वामित्रके चरण दबाकर उनकी आज्ञासे विश्राम करने आते, तब लक्ष्मणजी बड़े भाईके चरण दबाने लगते और बार-बार बहुत कहनेपर, तब कहीं सोनेके लिये जाते। प्रात:काल भी वे श्रीरामसे पहले ही जग जाते थे।

लक्ष्मणजी बड़े ही स्नेहमय तथा कोमल स्वभावके थे। उनके इस स्वभावका अनेक बार लोगोंको पता लगा; किंतु कोई श्रीरामका किसी भी प्रकार अपमान या अनिष्ट करता जान पड़े, यह इन्हें सहन नहीं होता था। फिर ये अत्यन्त उग्र हो उठते थे और तब किसीको कुछ भी नहीं

गिनते थे। जब जनकपुरमें राजाओंके द्वारा धनुष न उठनेपर जनकजीने कहा—'मैंने समझ लिया कि अब पृथ्वीमें कोई वीर नहीं रहा, तब कुमार लक्ष्मणको लगा कि इससे तो श्रीरामके बलका भी तिरस्कार होता है। वे यह सोचते ही उग्र हो उठे। उन्होंने जनकजीको चुनौती देकर अपना शौर्य प्रकट किया। इसी प्रकार जब परशुरामजी बिगड़ते-डाँटते आये, तब भी लक्ष्मणजीसे उनका दर्प सहा नहीं गया। ये श्रीरामको अपना स्वामी मानते थे। सेवकके रहते स्वामीका तिरस्कार हो, ऐसे सेवकको धिक्कार है। परशुरामजीको इन्होंने उत्तर ही नहीं दिया, उनकी युद्धकी चुनौती तकका उपहास कर दिया! ऐसे परम भक्त लक्ष्मणने जब सुना कि पिताने माता कैकेयीके कहनेसे रामको वनवास देना निश्चित किया है, तब कैकेयी और राजापर इन्हें बड़ा क्रोध आया। परंतु श्रीरामकी इच्छाके विरुद्ध कुछ भी करना इन्हें अभीष्ट नहीं था। 'यदि रामजी वनको जाते हैं तो लक्ष्मण कहाँ अयोध्यामें रहनेवाले हैं!' यह बात सभी जानते थे। जब प्रभुने राजधर्म, पिता-माताकी सेवाका कर्तव्य समझाकर इन्हें रहनेको कहा, तब इनका मुख सूख गया। व्याकुल होकर बड़े भाईके चरण पकड़ लिये इन्होंने और रोते-रोते प्रार्थना करने लगे—

गुर पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरे सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी॥
धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥
मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई॥

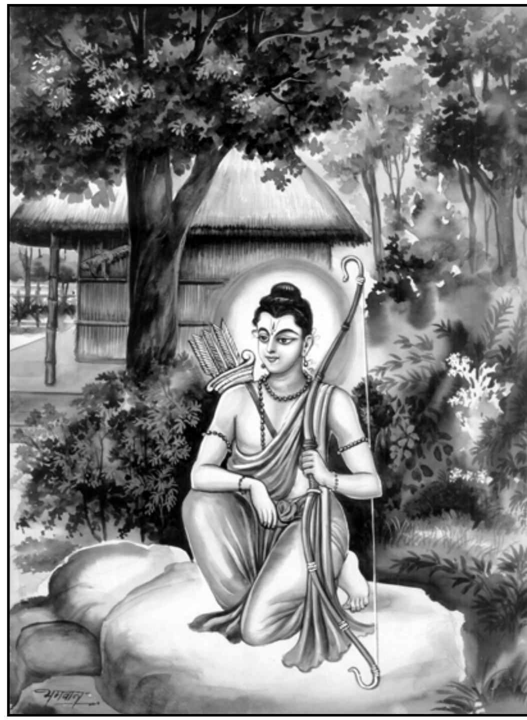
अयोध्याका राजसदन, माता-पिताका प्यार और राज्यके सुखभोग छोड़कर घोर वनमें भटकना स्वीकार किया लक्ष्मणने। श्रीरामने उन्हें साथ चलनेकी आज्ञा दी तो उन्हें यह 'वरदान' प्रतीत हुआ। वल्कल वस्त्र धारण करके अयोध्यासे इन्होंने श्रीरामका अनुगमन किया। माता सुमित्राने अपने इस पुत्रको आदेश दिया था—

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥

जिसने अपना चित्त श्रीरामके चरणोंमें लगा दिया है, उसमें राग-द्वेष, रोष, ईर्ष्या, मद-मोह आदि विकार आ ही कैसे सकते हैं। लक्ष्मणजीने तो वनमें सेवाव्रत लेकर भूख-प्यास, निद्रा-थकावट आदि सबपर विजय प्राप्त कर ली। वे सदा सावधान रहते थे। मार्गमें चलते समय भी—

सीय राम पद अंक बराएँ। लखन चलहिं मगु दाहिन लाएँ॥

कहीं प्रभुके चरण-चिह्नोंपर अपने पैर न पड़ जायँ, इसके लिये वे सतत सावधान रहते थे। जल, फल, कंद, पुष्प, समिधा आदि लाना, अनुकूल स्थानपर कुटिया बनाना, रात्रिमें जागते हुए पहरा देना प्रभृति सब छोटी-बड़ी



सेवाएँ लक्ष्मणजी बड़े उत्साहसे वनमें करते रहे। जैसे अज्ञानी पुरुष बड़े यत्नसे अपने शरीरकी सेवामें लगा रहता है, वैसे ही लक्ष्मणजी यत्नपूर्वक श्रीरामकी सेवामें लगे रहते थे। शृङ्गवेरपुरमें जब श्रीरामको पृथ्वीपर सोते देख निषादराज दुखी हो गये, तब लक्ष्मणजीने उन्हें तत्त्वज्ञान तथा रामजीके स्वरूपका उपदेश किया। वनवासके समय भगवान् स्वयं लक्ष्मणजीको अनेक बार ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदिके उपदेश करते रहे।

श्रीलक्ष्मणजीका संयम, ब्रह्मचर्य-व्रत आश्चर्यजनक है। अपने चौदह वर्षके अखण्ड ब्रह्मचर्यके बलपर ही ये मेघनादको युद्धमें जीत सके थे। जब सुग्रीवने ऋष्यमूक पहुँचनेपर सीताजीके द्वारा गिराये आभूषण दिये, तब

श्रीरघुनाथजी उन्हें लक्ष्मणको दिखाकर पूछने लगे—'देखो, ये जानकीके ही आभूषण हैं न?' उस समय लक्ष्मणजीने उत्तर दिया—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले॥
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्।

(वा०रा० ४।६।२२-२३)

'प्रभो! मैं केयूरों तथा कुण्डलोंको नहीं पहचानता। मैं तो केवल नूपुरोंको नित्य चरणवन्दनके समय देखते रहनेसे पहचानता हूँ।' इस निष्ठा और संयमकी कोई क्या महिमा वर्णन करेगा! लगभग चौदह वर्ष बराबर साथ रहे, अनेक बार श्रीरामके वनमें जानेपर अकेले रक्षक बने रहे, सब प्रकारकी छोटी-बड़ी सेवा करते रहे; किंतु कभी जानकीजीके चरणोंसे ऊपर दृष्टि गयी ही नहीं! धन्य मर्यादा! मारीचके छलसे जब श्रीरामजी उसके पीछे धनुषपर बाण चढ़ाकर दौड़ गये और उस राक्षसकी कपटभरी पुकार सुनकर सीताजीने भगवान्की लीला सम्पन्न करनेके लिये लक्ष्मणजीकी नीयतपर ही संदेह-नाट्य किया, तब भगवान्की आज्ञा न होनेपर भी एकाकिनी श्रीजानकीजीको छोड़कर श्रीरामके पास चले गये। जहाँ किसी प्रकारकी आशङ्का हो, वहाँ किसी भी सत्पुरुषको रहना नहीं चाहिये।

जब श्रीराम समुद्रके पास मार्ग देनेकी प्रार्थना करनेके विचारसे कुश बिछाकर बैठे, तब यह बात लक्ष्मणजीको नहीं रुची। ये पुरुषार्थ-प्रिय हैं। इन्होंने कहा 'दैवके भरोसे तो कादरलोग बैठे रहते हैं।' असलमें तो इन्हें यह सह्य नहीं था कि उनके सर्वसमर्थ स्वामी समुद्रसे प्रार्थना करें।

श्रीरामकी आज्ञासे लक्ष्मण कठोर-से-कठोर कार्य भी करनेको उद्यत रहते थे। सीताजीको वनमें छोड़ आनेका काम भरत और शत्रुघ्नजीने स्पष्ट अस्वीकार कर दिया। लक्ष्मणजीके लिये यह हृदयपर पत्थर रखकर करनेका काम था; किंतु वे श्रीरामकी आज्ञा किसी प्रकार टाल नहीं सकते थे। यह कार्य भी उन्होंने स्वीकार किया। उनका आत्मत्याग महान् है। श्रीराम एकान्तमें कालके साथ बात कर रहे थे। उन्होंने यह निश्चय किया था कि इस समय यदि कोई यहाँ आ जायगा तो उसे प्राणदण्ड दिया जायगा। लक्ष्मणजीको द्वारपर नियुक्त किया गया था। उसी समय वहाँ दुर्वासाजी आये और तुरंत श्रीरामसे मिलनेका आग्रह करने लगे। विलम्ब होनेपर शाप देकर पूरे राजकुलको नष्ट कर देनेकी धमकी दी उन्होंने! लक्ष्मणजीने भगवान्को जाकर संवाद सुनाया। श्रीरामने दुर्वासाजीका सत्कार किया। ऋषिके चले जानेपर श्रीरघुनाथजी बहुत दुःखी हुए। प्रतिज्ञाके अनुसार लक्ष्मणजीको उस समय भीतर जानेके लिये प्राणदण्ड होना चाहिये था। स्वामीको दुःख न हो, उनकी प्रतिज्ञा रक्षित रहे, इसलिये उन्होंने स्वयं माँगकर निर्वासन स्वीकार कर लिया; क्योंकि प्रियजनका निर्वासन प्राणदण्डके ही समान है। इस प्रकार आजन्म श्रीरामकी सेवा करके, श्रीरामके लिये उनका वियोग भी लक्ष्मणजीने स्वीकार किया।

भगवान् सदाशिवके विविध अवतार

[भगवान् सदाशिवका लीला-विलास ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंमें विराजमान है। लीलाभिनयके लिये प्रभु जब इस जगत्की सृष्टि करते हैं तो अन्तर्यामीरूपसे स्वयं भी इसमें प्रविष्ट हो जाते हैं—व्याप्त हो जाते हैं—'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' और जब आवश्यकता समझते हैं तो स्वयं भी व्यक्तरूपसे प्रकट हो जाते हैं। वेदोंमें भगवान् शिवकी महिमा और उनकी करुणाका विशेष गान हुआ है। रुद्र, शिव, मृड, भव आदि ये सभी उन्हींके नाम हैं। उनका घोर तथा अघोर—दो रूपोंमें विशेष वर्णन आया है। भगवान् शिवकी संहारलीलाकी मूर्ति घोर एवं रक्षण तथा पालन-पोषणकी मूर्ति अघोर कहलाती है। वेदोंमें जहाँ एक रुद्रकी चर्चा है, वहीं 'असंख्यातरुद्र' पदसे अनन्तानन्त रुद्रोंका निर्वचन किया गया है। एकादश रुद्र तो प्रसिद्ध हैं ही, ऐसे ही भगवान् शिव सृष्टिके मूलतत्त्व लिङ्गके रूपमें प्रकट हैं और पूजित होते हैं। द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग, बाणलिङ्ग, स्वयम्भूलिङ्ग आदि भगवान् शिवके लिङ्गरूपमें प्राकट्यके द्योतक हैं। ऐसे ही अष्टमूर्तियोंके रूपमें भी उनकी उपासना होती है। सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष आदि उनके पञ्च स्वरूप प्राप्त होते हैं। पुराणोंमें तो भक्तोंके कल्याणके लिये भगवान् शिवके विभिन्न रूपोंमें अवतरणका वर्णन प्राप्त होता है। महाकाल, भैरव, यक्ष, दुर्वासा, हनुमान्, पिप्पलाद, हंस आदि लीलावतारोंकी कथाएँ अत्यन्त कल्याणकारिणी हैं। उनका अर्धनारीश्वर तथा हरिहरके रूपमें अवतरण विश्वको शिक्षा देनेके लिये ही हुआ। ऐसे ही प्रणवके रूपमें उनका ही अवतरण होता है। मृत्युञ्जय, दक्षिणामूर्ति, नटराज, भिक्षुक, महाकाल, पञ्चमुख, नीलकण्ठ, पशुपति, त्र्यम्बक तथा योगेश्वरावतार आदि अनेक नाम-रूपोंमें प्रकट होकर भगवान्ने विविध लीलाएँ की हैं, जो भक्तोंके लिये अतीव मङ्गलदायिनी हैं। यहाँ संक्षेपमें भगवान् सदाशिवकी कुछ अवतार-कथाओंको प्रस्तुत किया जा रहा है—सम्पादक]

महादेवका नन्दीश्वरावतार

(आचार्य पं० श्रीरामदत्तजी शास्त्री)

वन्दे महानन्दमनन्तलीलं
महेश्वरं सर्वविभुं महान्तम्।
गौरीप्रियं कार्तिकविघ्नराज-
समुद्भवं शङ्करमादिदेवम्॥

'जो परमानन्दमय हैं, जिनकी लीलाएँ अनन्त हैं, जो ईश्वरोंके भी ईश्वर, सर्वव्यापक, महान्, गौरीके प्रियतम तथा कार्तिकेय और विघ्नराज गणेशको उत्पन्न करनेवाले हैं, उन आदिदेव शङ्करकी मैं वन्दना करता हूँ।'

प्राचीन कालमें एक बार सनत्कुमारजीने नन्दीश्वरजीसे पूछा कि हे नन्दीश्वर! आप महादेवके अंशसे कैसे उत्पन्न हुए तथा आपने शिवत्व कैसे प्राप्त किया? यह सब मैं सुनना चाहता हूँ, आप कहिये—

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! शिलाद नामके एक ऋषि थे। पितरोंके उद्धारकी इच्छासे उन्होंने इन्द्रके उद्देश्यसे बहुत समयतक कठोर तप किया। तपसे संतुष्ट होकर इन्द्र उनको वर देनेको गये। इन्द्रने शिलादसे कहा—मैं प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगो। तब इन्द्रको प्रणामकर आदरपूर्वक स्तोत्रोंसे स्तुतिकर शिलाद हाथ जोड़कर बोले—हे देवेश! आप प्रसन्न हों तो मुझे मृत्युहीन अयोनिज पुत्रकी प्राप्ति हो। इन्द्र बोले—हे मुने! मैं तुमको मृत्युहीन अयोनिज पुत्र नहीं दे सकता; क्योंकि विष्णुभगवान्से ब्रह्मातक सब मृत्युवाले हैं औरकी तो बात ही क्या है! यदि भगवान् शिव प्रसन्न हो जायँ तो वह तुम्हारे लिये मृत्युहीन अयोनिज पुत्र प्रदान कर सकते हैं, अत: आप शिवजीको प्रसन्न करें। इतना कहकर इन्द्र अपने लोकको चले गये।

इन्द्रके जानेके बाद शिलादने दिव्य सहस्रवर्षतक महादेवजीकी आराधना की। उनकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शिव प्रकट हुए तथा शिलादसे कहा—हे शिलाद! मैं तुम्हें वर देने आया हूँ। भगवान् शिवके ध्यानमें मग्न और समाधिमें लीन शिलादमुनिने शिवकी वाणीको नहीं सुना। तब शिवने उन मुनिका हाथसे स्पर्श किया, जिससे उनकी समाधि छूट गयी और अपने नेत्रोंके सम्मुख अपने आराध्य उमासहित भगवान् शम्भुको देखकर वे मुनि आनन्दपूर्वक उनके चरणोंमें गिर पड़े।

बड़े हर्षसे गद्‌गदवाणीमें वे शिवजीकी स्तुति करने लगे। तब देवदेवेश भगवान् शिवजीने शिलादसे कहा कि हे तपोधन! मैं तुम्हें वर देने आया हूँ। शिवजीके ऐसे वचन सुनकर शिलाद बोले—हे महेश्वर! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो आप मुझको अपने समान मृत्युहीन अयोनिज पुत्र प्रदान करें।

शिवजी बोले—हे विप्र! मैं स्वयं ही तुम्हारे यहाँ नन्दी नामक अयोनिज पुत्ररूपसे प्रकट होऊँगा। हे मुने! तुम मुझ लोकत्रयीके पिताके भी पिता होनेका सौभाग्य प्राप्त करोगे। इस प्रकार शिलादको वर देकर शिव पार्वतीसहित अन्तर्धान हो गये। शिलादमुनिने अपने आश्रमपर आकर यह सारा वृत्तान्त अन्य मुनियोंसे कहा तो सभी मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए।

हे सनत्कुमार! कुछ समय बीतनेपर एक दिन शिलाद यज्ञ करनेके निमित्त यज्ञक्षेत्रको जोत रहे थे। मैं उसी समय उन शिवकी आज्ञासे उनका पुत्ररूप होकर प्रलयाग्निके समान देदीप्यमानरूपमें प्रकट हुआ। उस समय देवताओंने फूल बरसाये तथा ऋषिगण भी चारों तरफसे पुष्पवृष्टि करने लगे। हे मुने! उस समय मेरा स्वरूप प्रलयकालके सूर्य और अग्निके समान प्रकाशित तथा त्रिनेत्र, चतुर्भुज और जटामुकुटधारी था। साथ ही वह त्रिशूल आदि शस्त्रोंको धारण किये हुए था। मेरा ऐसा स्वरूप देखकर मेरे पिताने मुझे प्रणाम किया और बोले—हे सुरेश्वर! तुमने मुझे महान् आनन्द दिया है, इस कारण तुम्हारा नाम 'नन्दी' हुआ। तदनन्तर मेरे पिता मुझे अपनी पर्णकुटीमें ले गये। पर्णकुटीमें पहुँचकर मैंने अपना वह रूप त्यागकर मनुष्यशरीर धारण कर लिया।

हे सनत्कुमार! मुझपर अत्यधिक स्नेह करनेवाले उन शालंकायनके पुत्र शिलादने मेरे सम्पूर्ण जातकर्म आदि संस्कार किये। पाँच वर्षकी अवस्थामें ही मेरे पिताने मुझे साङ्गोपाङ्ग वेदोंको और शास्त्रोंको पढ़ाया। सातवें वर्षमें मित्रावरुणसंज्ञक दो मुनि शिवजीकी आज्ञासे मुझे देखनेको आये, तब मेरे पितासे सत्कारको प्राप्त होकर वे मुनि अच्छी प्रकार बैठे और मुझे बारम्बार देखकर वे महात्मा बोले कि हे तात! सम्पूर्ण शास्त्रोंमें पारगामी ऐसा बालक हमने नहीं देखा, परंतु यह तुम्हारा पुत्र नन्दी थोड़ी अवस्थावाला है। इसकी आयु एक वर्षकी ही और होगी। उन ब्राह्मणोंके ऐसा कहनेपर मेरे पिता शिलाद उच्च स्वरमें रोने लगे। मैंने अपने पिताको रोते हुए देखकर कहा—हे पिता! आप क्यों रोते हैं, यह मैं तत्त्वपूर्वक जानना चाहता हूँ? पिता बोले—हे पुत्र! मैं तुम्हारी अल्पमृत्युके दुःखसे दुःखी हूँ। मैंने कहा—हे पिता! देवता, दानव, यमराज, काल तथा मनुष्य भी मुझे मारें तो भी मेरी अल्पमृत्यु नहीं होगी, इस कारण आप दुःखी मत होइये। हे पिता! यह मैं आपसे सत्य कहता हूँ, आपकी शपथ खाता हूँ। पिता बोले—हे पुत्र! तुम्हारी अल्पमृत्युको कौन दूर करेगा? तब मैंने कहा—हे तात! मै तपसे अथवा विद्यासे मृत्युको दूर न करूँगा, केवल महादेवजीके भजनसे मैं इस मृत्युको जीतूँगा, इसमें संदेह नहीं है। नन्दीश्वर बोले—हे मुने! इस प्रकार कहकर पिताके चरणोंमें सिरसे प्रणामकर और उनकी प्रदक्षिणा करके मैं श्रेष्ठ वनको चला गया।

नन्दिकेश्वर बोले—हे मुने! वनमें जाकर मैं एकान्तस्थलमें स्थित होकर अति कठिन तथा श्रेष्ठ मुनियोंके लिये भी दुष्कर तप करने लगा। मैं पञ्चमुख सदाशिवके परम ध्यानमें मग्न हो पवित्र नदीके उत्तर भागमें एकाग्रचित्तसे सावधान हो रुद्रमन्त्र जपने लगा। तब प्रसन्न होकर सदाशिव पार्वतीसहित प्रकट होकर बोले—हे शिलादनन्दन! तुम्हारे तपसे मैं संतुष्ट हूँ, तुम अभीष्ट वर माँगो। सामने शिव-पार्वतीको देखकर अपने सिरको उनके चरणोंमें झुकाकर मैं उनकी स्तुति करने लगा। तब उन परमेश वृषभध्वजने दोनों हाथोंसे मुझे पकड़कर स्पर्श किया तथा बोले—हे वत्स! हे महाप्राज्ञ! तुम्हें मृत्युसे भय कहाँ? उन दोनों ब्राह्मणोंको मैंने ही भेजा था, तुम मेरे ही समान हो, इसमें कुछ संशय नहीं है। तुम पिता और सुहृज्जनोंसहित अजर, अमर, दुःखरहित, अविनाशी, अक्षय और मेरे प्रिय होगे। इस प्रकार कहकर उन्होंने अपनी कमलोंसे बनी शिरोमाला उतारकर शीघ्र मेरे कण्ठमें डाल दी। हे मुने!

उस सुन्दर मालाको कण्ठमें पहनते ही तीन नेत्र, दस



भुजाओंवाला मानो मैं दूसरा शिव ही हो गया। परमेश्वरने कहा और क्या श्रेष्ठ वर दूँ? इतना कहकर वृषभध्वजने अपनी जटाओंसे हारके समान निर्मल जल ग्रहणकर 'नदी हो' ऐसा कहकर उसको मेरे ऊपर छिड़का। उस जलसे पाँच शुभ नदियाँ—१-जटोदका, २-त्रिस्रोता, ३-वृषध्वनि, ४-स्वर्णोदका और ५-जम्बूनदी उत्पन्न होकर बहने लगीं। यह पञ्चनद नामक परम पवित्र शिवका पृष्ठदेश जपेश्वरके समीप वर्तमान है। शिवजी पार्वतीजीसे बोले कि मैं नन्दीको गणेश्वरपदमें अभिषिक्त करता हूँ, तुम्हारी इसमें क्या सम्मति है? पार्वतीजी बोलीं—हे देवेश! यह शिलादपुत्र नन्दी आजसे मेरा महाप्रिय पुत्र हुआ।

तदनन्तर शिवजीने अपने सभी गणोंको बुलाकर कहा कि यह नन्दीश्वर मेरा पुत्र, सब गणोंका अधिपति तथा प्रियगणोंमें मुख्य हुआ, सभीको मेरे इस वचनका पालन करना चाहिये। तुम सब प्रीतिपूर्वक नन्दीको स्नान कराओ और आजसे यह नन्दी तुम सबका स्वामी हुआ। शिवजीके ऐसा कहनेपर सम्पूर्ण गणपति 'बहुत अच्छा' कहकर सब अभिषेककी सामग्री ले आये। तदनन्तर इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता तथा नारायण, सम्पूर्ण मुनि प्रसन्न हो सब लोकोंसे आये। शिवके नियोगसे ब्रह्माजीने सावधान हो नन्दीका अभिषेक किया, तब विष्णुने फिर इन्द्रने इसके पश्चात् लोकपालोंने अभिषेक किया। तब सभीने नन्दीश्वरजीकी स्तुति की।

नन्दीश्वरने कहा—हे विप्र! इस प्रकार गणाध्यक्षपदपर अभिषिक्त होनेके उपरान्त मुझ नन्दीने ब्रह्माजीकी आज्ञासे सुयशा नामवाली मरुत्की परम मनोहर कन्यासे विवाह किया। विवाहके समय जब मैं उस रूपवती सुन्दरी सुयशाके साथ मनोहर सिंहासनपर बैठा तब महालक्ष्मीने मुझे मुकुटसे सजाया, देवीने अपने कण्ठका दिव्य हार मुझे दिया। श्वेत वृषभ, हाथी तथा सिंहकी ध्वजा, सुवर्णका हार इत्यादि वस्तुएँ मुझे मिलीं। विवाहके पश्चात् मैंने ब्रह्माजी, विष्णुजीके चरणोंमें नमस्कार किया, तभी शिवजीने मुझे सपत्नीक देख परम प्रीतिसे कहा—हे सत्पुत्र! तुम पति और यह सुयशा तुम्हारी पत्नी है। मैं तुमको वही वर दूँगा, जो तुम्हारे मनमें है। तुम मेरे सदा प्रिय होगे; तुम अजेय, महाबली होकर पूजनीय होगे। जहाँ मैं रहूँगा वहाँ तुम होगे, जहाँ तुम होगे वहाँ मैं रहूँगा। इस प्रकार कहकर शिवजी उमासहित कैलासको चले गये। नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! जिस प्रकार मैंने शिवत्व प्राप्त किया, वह कथा मैंने आपको सुना दी। **(शिवपुराण)**

'पूर्णं शिवं धीमहि'

यो धत्ते भुवनानि सप्त गुणवान् स्त्रष्टा रजःसंश्रयः संहर्ता तमसान्वितो गुणवतीं मायामतीत्य स्थितः।
सत्यानन्दमनन्तबोधममलं ब्रह्मादिसंज्ञास्पदं नित्यं सत्त्वसमन्वयादधिगतं पूर्णं शिवं धीमहि॥

जो रजोगुणका आश्रय लेकर संसारकी सृष्टि करते हैं, सत्त्वगुणसे सम्पन्न हो सातों भुवनोंका धारण-पोषण करते हैं, तमोगुणसे युक्त हो सबका संहार करते हैं तथा त्रिगुणमयी मायाको लाँघकर अपने शुद्ध स्वरूपमें स्थित रहते हैं, उन सत्यानन्दस्वरूप, अनन्त बोधमय, निर्मल एवं पूर्णब्रह्म शिवका हम ध्यान करते हैं। वे ही सृष्टिकालमें ब्रह्मा, पालनके समय विष्णु और संहारकालमें रुद्र नाम धारण करते हैं तथा सदैव सात्त्विकभावको अपनानेसे ही प्राप्त होते हैं।

शङ्करके पूर्णावतार—कालभैरव

(डॉ० श्रीमुकुन्दपतिजी त्रिपाठी 'रत्नमालीय')

देवराजसेव्यमानपावनाङ्घ्रिपङ्कजं
व्यालयज्ञसूत्रमिन्दुशेखरं कृपाकरम्।
नारदादियोगिवृन्दवन्दितं दिगम्बरं
काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे॥
भानुकोटिभास्वरं भवाब्धितारकं परं
नीलकण्ठमीप्सितार्थदायकं त्रिलोचनम्।
कालकालमम्बुजाक्षमक्षशूलमक्षरं
काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे॥

देवराज इन्द्र जिनके पावन चरणकमलोंकी भक्तिपूर्वक निरन्तर सेवा करते हैं, जो व्यालरूपी विकराल यज्ञसूत्र धारण करनेवाले हैं, जिनके ललाटपर चन्द्रमा शोभायमान है, जो दिगम्बरस्वरूपधारी हैं, कृपाकी मूर्ति हैं, नारदादि सिद्ध योगिवृन्द जिनकी सेवामें लगे रहते हैं, उन काशीपुरीके अभिरक्षक स्वामी कालभैरवकी मैं चरण-वन्दना करता हूँ। जो करोड़ों सूर्यके समान दीप्तिमान् हैं, जो भयावह भवसागर पार करानेवाले परम समर्थ प्रभु हैं, जो नीले कण्ठवाले, अभीष्ट वस्तुको देनेवाले और तीन नेत्रोंवाले हैं, जो कालके भी काल, कमलके समान सुन्दर नयनोंवाले, अक्षमाला और त्रिशूल धारण करनेवाले अक्षरपुरुष हैं, उन काशीपुरीके प्रभु कालभैरवकी मैं आराधना करता हूँ।

अधर्ममार्गको अवरुद्ध कर, धर्म-सेतुकी प्रतिष्ठापना करनेवाले, स्वभक्तोंको अभीष्ट सिद्धि प्रदान करनेवाले, कालको भी कँपा देनेवाले, प्रचण्ड तेजोमूर्ति, अघटितघटन-सुघट-विघटन-पटु, कालभैरवजी भगवान् शङ्करके पूर्णावतार* हैं, जिनका अवतरण ही पञ्चानन ब्रह्मा एवं विष्णुके गर्वापहरणके लिये हुआ था। भैरवी-यातना-चक्रमें तपा-तपाकर पापियोंके अनन्तानन्त पापोंको नष्ट कर देनेकी विलक्षण क्षमता उन्हें प्राप्त है। देवमण्डलीसहित देवराज इन्द्र और ऋषिमण्डलीसहित देवर्षि नारद उनकी स्तुति कर अपनेको धन्य मानते हैं। उनकी महिमा अद्भुत है। उनकी लीलाएँ विस्मयकारिणी हैं। उन महामहिमावान्के चरणोंमें शीश नवाते हुए यहाँ उनका संक्षिप्त आख्यान शिवपुराणके आधारपर प्रस्तुत किया जा रहा है—

अति प्राचीन कालमें एक बार सुमेरुपर्वतके मनोरम शिखरपर ब्रह्मा और शिवजी बैठे हुए थे। उसी कालमें परम-तत्त्वकी जिज्ञासासे प्रेरित होकर समस्त देव और ऋषिगण वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने श्रद्धा-विनयपूर्वक शीश झुकाकर, हाथ जोड़कर ब्रह्माजीसे निवेदन किया—'हे देवाधिदेव! प्रजापति! लोकपिता! लोकपालक! कृपाकर हमें परम अविनाशी तत्त्वका उपदेश दें। हमारे मनमें उस परम-तत्त्वको जाननेकी प्रबल अभिलाषा है।'

भगवान् शङ्करकी विश्वविमोहिनी मायाके प्रभावसे मोहग्रस्त हो ब्रह्माजी यथार्थ तत्त्वबोध न कराकर आत्मप्रशंसामें प्रवृत्त हो गये। वे कहने लगे—

जगद्योनिरहं धाता स्वयम्भूरज ईश्वरः।
अनादिभागहं ब्रह्म ह्येक आत्मा निरञ्जनः॥
प्रवर्तको हि जगतामहमेव निवर्तकः।
संवर्तको मदधिको नान्यः कश्चित् सुरोत्तमाः॥

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता ८। १३-१४)

हे समुपस्थित देव एवं ऋषिगण! आदरपूर्वक सुनें—मैं ही जगच्चक्रका प्रवर्तक, संवर्तक और निवर्तक हूँ। मैं धाता, स्वयम्भू, अज, अनादि ब्रह्म तथा एक निरञ्जन आत्मा हूँ। मुझसे श्रेष्ठ कोई नहीं है।

सभामें विद्यमान भगवान् विष्णुको उनकी आत्मश्लाघा नहीं रुची। अपनी अवहेलना किसे अच्छी लगती है? अमर्षभरे स्वरमें उन्होंने प्रतिवाद किया—हे धाता! आप कैसी मोहभरी बातें कर रहे हैं? मेरी आज्ञासे ही तो आप सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त हैं। मेरे आदेशकी अवहेलना कर किसीकी प्राणरक्षा सम्भव नहीं। कदापि सम्भव नहीं—

* 'भैरवः पूर्णरूपो हि शङ्करस्य परात्मनः।' (शिवपुराण, शतरुद्र० ८। २)

ममाज्ञया त्वया ब्रह्मन् सृष्टिरेषा विधीयते।
जगतां जीवनं नैव मामनादृत्य चेश्वरम्॥

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता ८।१८)

पारस्परिक विवाद-क्रममें आरोप-प्रत्यारोपका स्वर उत्तरोत्तर तीखा होता गया। विवाद-समापन-क्रममें जब वेदोंका साक्ष्य माँगा गया तो उन्होंने शिवको परमतत्त्व अभिहित किया। मायाविमोहित ब्रह्मा तथा विष्णु—किसीको भी वेद-साक्ष्य रास नहीं आया। वे बोल पड़े—अरे वेदो! तुम्हारा ज्ञान नष्ट हो गया है क्या? भला अशुभ वेशधारी, धूलिधूसर, पीतवर्ण, दिगम्बर, रात-दिन शिवाके साथ रमण करनेवाले शिव कभी परमतत्त्व कैसे हो सकते हैं? वाद-विवादके कटुत्वको समाप्त करने हेतु प्रणवने मूर्तरूप धारणकर भगवान् शिवकी महिमा प्रकट करते हुए कहा—लीलारूपधारी भगवान् शिव अपनी शक्तिके बिना कभी रमण नहीं कर सकते। वे परमेश्वर शिवजी स्वयं सनातन ज्योतिस्वरूप हैं और उनकी आनन्दमयी यह 'शिवा' नामक शक्ति आगन्तुकी न होकर शाश्वत है। अत: आप दोनों अपने भ्रमका परित्याग करें। ॐकारके निर्भ्रान्त वचनोंको सुनकर भी प्रबल भवितव्यताविवश ब्रह्मा एवं विष्णुका मोह दूर नहीं हुआ तो उस स्थलपर एक दिव्य ज्योति प्रकट हुई, जो भूमण्डलसे लेकर आकाशतक परिव्याप्त हो गयी। उसके मध्यमें दोनोंने एक ज्योतिर्मय पुरुषको देखा। उस समय ब्रह्माके पाँचवें मुखने कहा—'हम दोनोंके बीचमें यह तीसरा कौन है जो पुरुषरूप धारण किये है?' विस्मयको और अधिक सघन करते हुए उस ज्योतिपुरुषने त्रिशूलधारी, नीललोहित स्वरूप धारण कर लिया। ललाटपर चन्द्रमासे विभूषित उस दिव्य स्वरूपको देखकर भी ब्रह्माजीका अहङ्कार पूर्ववत् रहा। पहलेकी तरह ही वे बोल पड़े—

'आओ, आओ वत्स चन्द्रशेखर, आओ। डरो मत। मैं तुम्हें जानता हूँ। पहले तुम मेरे मस्तकसे पैदा हुए थे। रोनेके कारण मैंने तुम्हारा नाम 'रुद्र' रखा है। मेरी शरणमें आ जाओ। मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।'

ब्रह्माजीकी गर्वमयी बातें सुनकर भगवान् शिव कुपित हुए और उन्होंने भयङ्कर क्रोधमें आकर 'भैरव' नामक पुरुषको पैदा किया, जिन्हें ब्रह्माको दण्डित करनेका प्रथम कार्य सौंपा गया—

'प्राक्च पङ्कजजन्मासौ शास्यस्ते कालभैरव।'

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता ८।४६)

उनका नामकरण करते हुए भगवान् शिवने व्यवस्था दी—**'त्वत्तो भेष्यति कालोऽपि ततस्त्वं कालभैरवः।'** (शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता ८।४७)

हे महाभाग! काल भी तुमसे डरेगा, इसलिये तुम्हारा विख्यात नाम 'कालभैरव' होगा। उसके अपर नामोंका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा—हे वत्स! तुम कालके समान शोभायमान हो, इसलिये तुम्हारा नाम 'कालराज' रहेगा। तुम कुपित होकर दुष्टोंका मर्दन करोगे, इसलिये तुम्हारा नाम 'आमर्दक' होगा। भक्तोंके पापोंका तत्काल भक्षण करनेकी सामर्थ्यसे युक्त होनेके कारण तुम्हारा नाम 'पापभक्षण' होगा। तदनन्तर भगवान् शिवने उसी क्षण उन्हें काशीपुरीका आधिपत्य भी सौंप दिया और कहा—मेरी जो मुक्तिदायिनी काशीनगरी है, वह सभी नगरियोंसे श्रेष्ठ है, हे कालराज! आजसे वहाँ तुम्हारा सदा ही आधिपत्य रहेगा—

या मे मुक्तिपुरी काशी सर्वाभ्योऽहि गरीयसी।
आधिपत्यं च तस्यास्ते कालराज सदैव हि॥

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता ८।५०)

भगवान् शिवसे इस प्रकार वरदान प्राप्त कर कालभैरवने अपनी बायीं उँगलीके नखसे शिवनिन्दामें प्रवृत्त ब्रह्माजीके पाँचवें मुखको काट दिया, यह विचार कर कि पापी अङ्गका ही शासन अभीष्ट है।

'यदङ्गमपराध्नोति कार्यं तस्यैव शासनम्।'

वह पाँचवाँ मुख (कपाल) उनके हाथमें आ चिपका। इस घटनासे भयभीत विष्णु और ब्रह्माजी शतरुद्रीका पाठ कर भगवान् शिवसे कृपायाचना करने लगे। दोनोंका अभिमान नष्ट हो गया। उन्हें यह भलीभाँति ज्ञात हो गया कि साक्षात् शिव ही सच्चिदानन्द परमेश्वर गुणातीत परब्रह्म हैं। उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर शिवजीने भैरवजीको ब्रह्मा-विष्णुके प्रति कृपालु होनेकी सलाह दी—

'त्वया मान्यो विष्णुरसौ तथा शतधृतिः स्वयम्।'

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता ८।६१)

हे नीललोहित! तुम ब्रह्मा और विष्णुका सतत सम्मान करना। ब्रह्माजीको दण्ड देनेके क्रममें हे भैरव! तुम्हारे द्वारा उन्हें कष्ट पहुँचा है, अतः लोकशिक्षार्थ तुम प्रायश्चित्तस्वरूप ब्रह्महत्यानिवारक कापालिकव्रतका आचरण कर भिक्षावृत्ति धारण करो—

'चर त्वं सततं भिक्षां कपालव्रतमाश्रितः।'

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता ८।६२)

भगवान् भैरव प्रायश्चित्ताचरण-लीलामें तत्काल प्रवृत्त हो गये। ब्रह्महत्या विकराल स्त्रीरूप धारणकर उनका अनुगमन करने लगी।

त्रैलोक्यभ्रमण करते हुए जब भगवान् भैरव वैकुण्ठ पहुँचे तो भगवान् विष्णुने उनका स्वागत-सत्कार करते हुए भगवती लक्ष्मीसे उन्हें भिक्षा दिलवायी।

तदनन्तर भिक्षाटन करते हुए भगवान् भैरव वाराणसीपुरीके 'कपालमोचन' नामक तीर्थपर पहुँचे, जहाँ आते ही उनके हाथमें संसक्त कपाल छूटकर गिर गया और वह ब्रह्महत्या पातालमें प्रविष्ट हो गयी। अपना प्रायश्चित्त पूरा कर वे वाराणसीपुरीकी पूर्ण सुरक्षाका दायित्व सँभालने लगे। बटुकभैरव, आसभैरव, आनन्दभैरव आदि उनके विविध अंश-स्वरूप हैं। उनकी महिमा वर्णनातीत है। वे भगवान् शिवके आदेश—**'तत्र (वाराणस्यां) ये पातकिनरास्तेषां शास्ता त्वमेव हि।'** का अनुपालन कर रहे हैं। उनकी महिमाके विषयमें भगवान् विष्णु कहते हैं—

अयं धाता विधाता च लोकानां प्रभुरीश्वरः।
अनादिः शरणः शान्तः पुरः षड्विंशसम्मितः॥
सर्वज्ञः सर्वयोगीशः सर्वभूतैकनायकः।
सर्वभूतान्तरात्मायं सर्वेषां सर्वदः सदा॥

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता ९।११-१२)

ये धाता, विधाता, लोकोंके स्वामी और ईश्वर हैं। ये अनादि, सबके शरणदाता, शान्त तथा छब्बीस तत्त्वोंसे युक्त हैं। ये सर्वज्ञ, सब योगियोंके स्वामी, सभी जीवोंके नायक, सभी भूतोंकी अन्तरात्मा और सबको सब कुछ देनेवाले हैं।

भगवान् भैरवका अवतरण अगहन मासकी अष्टमी तिथि (कृष्णपक्ष)-को हुआ था, अतः उक्त तिथिको उनकी जयन्ती धूम-धामपूर्वक मनायी जाती है—

कृष्णाष्टम्यां तु मार्गस्य मासस्य परमेश्वरः।
आविर्बभूव सल्लीलो भैरवात्मा सतां प्रियः॥

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता ९।६३)

उपर्युक्त मास तथा तिथिको भक्तिभावपूर्वक उनकी पूजा करनेसे जन्म-जन्मान्तरके पाप नष्ट हो जाते हैं। स्वयं भगवान् शिवने भैरव-उपासनाकी महिमा बताते हुए पार्वतीजीसे कहा है—हे देवि! भैरवका स्मरण पुण्यदायक है। यह स्मरण समस्त विपत्तियोंका नाशक, समस्त कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला तथा साधकोंको सुखी रखनेवाला है, साथ ही लम्बी आयु प्रदान करता है और यशस्वी भी बनाता है।

मंगलवारयुक्त अष्टमी और चतुर्दशीको कालभैरवके दर्शनका विशेष महत्त्व है। वाराणसीपुरीकी अष्ट दिशाओंमें स्थापित अष्टभैरवों—रुरुभैरव, चण्डभैरव, असिताङ्गभैरव, कपालभैरव, क्रोधभैरव, उन्मत्तभैरव तथा संहारभैरवका दर्शन-आराधन अभीष्ट फलप्रद है। रोली, सिन्दूर, रक्तचन्दनका चूर्ण, लाल फूल, गुड़, उड़दका बड़ा, धानका लावा, ईखका रस, तिलका तेल, लोहबान, लाल वस्त्र, भुना केला, सरसोंका तेल—ये भैरवजीकी प्रिय वस्तुएँ हैं, अतः इन्हें भक्तिपूर्वक समर्पित करना चाहिये।

भगवान् भैरव शाक्त साधकोंके भी परमाराध्य हैं। ये ही भक्तोंकी प्रार्थना भगवती दुर्गाके पास पहुँचाते हैं। देवीके प्रसिद्ध ५१ पीठोंकी रक्षामें ये भिन्न-भिन्न नाम-रूप धारण कर अहर्निश साधकोंकी सहायतामें तत्पर रहते हैं। प्रतिदिन भैरवजीकी आठ बार प्रदक्षिणा करनेसे मनुष्योंके सर्वविध पाप विनष्ट हो जाते हैं—

अष्टौ प्रदक्षिणीकृत्य प्रत्यहं पापभक्षणम्।
नरो न पापैर्लिप्येत मनोवाक्कायसम्भवैः॥

(काशीखण्ड ३१।१५१)

ऐसे महाप्रभु भैरव समस्त जनोंके पाप-तापका शमन करें।

यक्षावतार

भगवान् शिवने यक्षरूपसे अवतार धारण किया था। भगवान्‌का यह यक्षावतार अभिमानियोंके अभिमानको दूर करनेवाला तथा साधु पुरुषोंके लिये भक्तिको बढ़ानेवाला है। एक बारकी बात है, समुद्र-मन्थनके बाद जब अमृत निकला तो उसका पानकर देवताओंने असुरोंपर विजय प्राप्त कर ली और इस खुशीमें वे उन्मत्त हो उठे तथा शिवाराधनाको भूल बैठे। उन्हें यह अभिमान हो आया कि हम ही सर्वशक्तिमान् हैं। भक्तको अपनी भक्तिका—साधनाका मिथ्याभिमान हो जाय तो भगवान्‌को भला कैसे सहन हो! यह तो पतनका ही मार्ग ठहरा, अत: उन्होंने देवताओंके मिथ्या गर्वको दूर करनेके लिये 'यक्ष' नामक अवतार धारण किया और वे लीला करनेके लिये इसी यक्षरूपसे देवताओंके समीप जा पहुँचे। वहाँ भगवान्‌ने पूछा कि आप सब लोग एकत्र होकर यहाँ क्या कर रहे हैं, तो सभी देवता समुद्र-मन्थनके संदर्भमें अपना-अपना पराक्रम बढ़-चढ़कर सुनाने लगे और कहने लगे कि हमारी ही शक्तिसे असुर पराजित होकर भाग गये।

देवताओंके उन अभिमान-भरे वचनोंको सुनकर यक्षरूपी महादेवने कहा—'देवताओ! आपको गर्व करना ठीक नहीं; कर्ता-हर्ता तो कोई दूसरा ही देव है, आप लोग उन महेश्वरको भूलकर व्यर्थ ही अपने बलका अभिमान कर रहे हैं। यदि आप अपनेको महान् बली समझते हों तो यह एक 'तृण' है, इसे आप तोड़कर दिखायें, ऐसा कहकर यक्षावतारी शिवने लीला करते हुए अपने तेजसे सम्पन्न एक तृण (तिनका) उनके पास फेंका और उसे तोड़नेके लिये कहा।

इन्द्रादि सभी देवताओंने प्रथम तो पृथक्-पृथक् और फिर मिलकर अनेक अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग कर अपनी पूरी शक्ति लगा दी, पर उस रुद्रतेज-सम्पन्न तृणको तोड़नेमें वे समर्थ न हो सके। भला, जब स्वयं शिव ही लीला कर रहे थे तो उस लीलाको उनकी कृपाके बिना कौन समझ सके? देवता हतप्रभ हो गये।

उसी समय आकाशवाणी हुई, जिसे सुनकर देवताओंको बड़ा विस्मय हुआ। आकाशवाणीमें कहा गया—'अरे देवो! भगवान् शंकर ही परम शक्तिमान् हैं, वे ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं। उनके बलसे ही सभी बलवान् हैं, उनकी लीला अपरम्पार है, उनकी लीलासे ही आप लोग मोहित हैं, आप सभी उन्हींकी शरण ग्रहण करें।' यह सुनकर देवता लोग यक्षावतारी शिवको पहचान सके और अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति करने लगे। तब भगवान् शिवने अपने यक्षरूपका परित्याग करके शिव-रूप धारण किया, जिसका दर्शनकर देवताओंको बड़ा आनन्द हुआ। **(शिवपुराण)**

दुर्वासावतार

महातपस्वी तथा धर्मात्मा महर्षि दुर्वासा भगवान् शंकरके ही अवतार-रूप हैं। श्रेष्ठ धर्मका प्रवर्तन करने, भक्तोंकी धर्मपरीक्षा करने तथा भक्तिकी अभिवृद्धि करनेके लिये साक्षात् भगवान् शंकरने ही दुर्वासामुनिके रूपमें अवतार धारणकर अनेक प्रकारकी लीलाएँ की हैं। इस अवतारकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है—

ब्रह्मज्ञानी अत्रि ब्रह्माजीके पुत्र थे। वे ब्रह्माजीके मानसपुत्र कहलाते हैं। इनकी अनसूया नामकी सती-साध्वी धर्मपत्नी थीं। अनसूयाका पातिव्रत-धर्म विश्व-विश्रुत ही है। पुत्रकी आकांक्षासे महर्षि अत्रि तथा देवी अनसूयाने ऋक्षकुल नामक पर्वतपर जाकर निर्विन्ध्या नदीके पावन तटपर सौ वर्षतक दुष्कर तप किया। उनके तपका ऐसा प्रभाव हुआ कि एक उज्ज्वल अग्निमयी ज्वाला प्रकट हुई, जिसने तीनों लोकोंको व्याप्त कर लिया। देवता, ऋषि, मुनि सभी चिन्तित हो उठे। तब ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर—ये तीनों देव उस स्थानपर गये, जहाँ महामहर्षि अत्रि तथा देवी अनसूया तप कर रहे थे। तदनन्तर प्रसन्न होकर तीनों देवोंने उन्हें अपने-अपने अंशसे एक-एक पुत्र (इस प्रकार तीन पुत्र) प्राप्त करनेका वर प्रदान किया।

वरदानके प्रभावसे ब्रह्माजीके अंशसे चन्द्रमा, विष्णुके अंशसे दत्तात्रेय तथा भगवान् शंकरके अंशसे मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाका आविर्भाव हुआ। ये तीनों अत्रि और अनसूयाके पुत्र कहलाये। दुर्वासाके रूपमें अवतार लेकर भगवान् शंकरने अनेक लीलाएँ कीं हैं, जो अति प्रसिद्ध हैं। भगवान् शंकरके रुद्ररूपसे महर्षि दुर्वासा प्रकट हुए थे, इसीलिये उनका रूप अति रौद्र था, इसी कारण वे अति क्रोधी भी थे, किंतु महर्षि दुर्वासा दयालुताकी मूर्ति हैं, अत्यन्त करुणासम्पन्न हैं। भक्तोंका दुःख दूर करना तथा रौद्ररूप धारणकर दुष्टोंका दमन करना ही उनका स्वभाव रहा है। शिवपुराणमें कथा आयी है कि एक बार नदीमें स्नान करते समय महर्षि दुर्वासाका वस्त्र नदीके प्रवाहमें प्रवाहित हो गया। कुछ दूरीपर देवी द्रौपदी भी स्नान कर रही थीं, उस समय द्रौपदीने अपने अंचलका एक टुकड़ा फाड़कर उन्हें प्रदान किया, इससे प्रसन्न होकर शंकरावतार महर्षि दुर्वासाने उन्हें वर दिया कि यह वस्त्रखण्ड वृद्धिको प्राप्तकर तुम्हारी लज्जाका निवारण करेगा और तुम सदा पाण्डवोंको प्रसन्न रखोगी। इसी वरका प्रभाव था कि जब कौरवसभामें दुःशासनके द्वारा द्रौपदीकी साड़ी खींची जाने लगी तो वह बढ़ती ही गयी। वरके प्रभावसे द्रौपदीकी लाज बच गयी। इसी प्रकारसे इनके द्वारा अनेक भक्तोंकी रक्षा हुई।

पिप्पलादावतार

जहाँ महान् त्याग, तपस्या, दान, परोपकार एवं लोककल्याणके लिये आत्मदानकी बात आयेगी, वहाँ महर्षि दधीचिका नाम बड़े ही आदरसे लिया जायगा। महर्षि दधीचि भृगुवंशमें उत्पन्न हैं। वेदोंमें दध्यङ्ङाथर्वण भी इनका नाम आया है। भगवान् शिवमें इनकी अनन्य निष्ठा रही है। इसीलिये ये महाशैव भी कहलाते हैं। शिवजीके आशीर्वादसे ही इनकी अस्थियाँ वज्रके समान कठोर हुई थीं। इनकी पत्नीका नाम सुवर्चा था, ये सदाचार-सम्पन्न, महान् साध्वी, पतिव्रता तथा भगवान् शिवमें विशेष भक्तिसम्पन्न थीं। इन दोनोंकी शिवभक्तिसे ही प्रसन्न होकर भगवान् शिवने महासाध्वी सुवर्चाके गर्भसे 'पिप्पलाद' नामसे अवतार धारणकर जगत्का कल्याण किया और अनेक लीलाएँ कीं—

तस्मात् तस्यां महादेवो नानालीलाविशारदः।
प्रादुर्बभूव तेजस्वी पिप्पलादेति नामतः॥

(शिवपु०, शतरुद्रसं० २४।५)

भगवान् शिवके पिप्पलादावतार धारण करनेकी बड़ी ही रोचक कथा पुराणोंमें मिलती है, जिसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है—

देवकार्यकी सिद्धि तथा वृत्रासुर आदि दैत्योंसे जगत्की रक्षाके लिये महर्षि दधीचिद्वारा अपनी अस्थियोंके दान तथा शिवकृपासे उनके लोककी प्राप्तिकी बात सर्वविश्रुत ही है। हुआ यों कि जब इन्द्र, बृहस्पति आदि देवता दधीचिसे उनकी अस्थियोंकी याचना करनेके लिये उनके आश्रमपर पहुँचे तो वहाँ देवोंको महर्षि दधीचि और सुवर्चाके दर्शन हुए। देवताओंने अत्यन्त विनम्रतासे उन्हें प्रणाम किया। महर्षि दधीचि सर्वज्ञ थे। वे अपने पास आये हुए देवताओंका अभिप्राय समझ गये। तब उन्होंने अपनी धर्मपत्नी देवी सुवर्चाको किसी कार्यके बहाने दूसरे आश्रममें भेज दिया। देवी सुवर्चा उस समय गर्भवती थीं।

देवताओंने देखा कि देवी सुवर्चा चली गयी हैं तो उन्होंने प्रार्थना करते हुए महर्षिसे कहा—'महामुने! आप सब कुछ जानते ही हैं कि हम क्यों आये हैं तथापि प्रभो! आप महान् शिवभक्त हैं, दाता हैं तथा शरणागतरक्षक हैं; वृत्र आदि दैत्योंने महान् उपद्रव मचा रखा है, सारी सृष्टि पीडित है, हमलोग भी अपने स्थानोंसे च्युत हो गये हैं, इस समय आप ही रक्षा करनेमें समर्थ हैं, आपकी अस्थियोंमें शिव-तेज तथा हमारे अस्त्र-शस्त्रोंकी दिव्य शक्ति समाहित है, अतः आप अपनी अस्थियोंका हमें दान कर दें, इनसे वज्रका निर्माण करके वृत्रासुर आदि दैत्योंका नाश करनेमें हम सक्षम हो पायेंगे।

अन्य किसी अस्त्र-शस्त्रमें ऐसी शक्ति नहीं है कि वह दैत्योंका नाश कर सके; क्योंकि वरदानके प्रभावसे वृत्रासुर इस समय अजेय हो गया है।' ऐसा कहकर देवता कातर-दृष्टिसे मुनिकी ओर देखने लगे।

महर्षि दधीचि देवताओंके आगमनको समझ ही रहे थे। दानका मौका आये, फिर महात्मा दधीचि कैसे चूक सकते थे। आज तो सारे ब्रह्माण्डकी रक्षा करनी है, फिर इसके लिये एक शरीर तो क्या कई जन्मोंतक शरीर-त्याग करना पड़ता तब भी महर्षिके लिये कम ही बात थी। संत तो थे ही, परहितके लिये उन्होंने प्राणोंके उत्सर्गको कम ही समझा। देवताओंकी याचनाको उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

दधीचिमुनिने अपने आराध्य भगवान् शंकरका ध्यान किया और ध्यान-समाधिसे अपने प्राणोंको खींचते हुए शिवतेजमें समाहित कर लिया। महर्षिका प्राणहीन शरीर पार्थिवकी तरह स्थित हो गया। आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी। उसी समय इन्द्रने सुरभि गौको बुलाया और महर्षिके शरीरको चटवाया। तब उनकी अस्थियोंसे विश्वकर्माने वज्रादि अन्यान्य अस्त्र-शस्त्रोंको बनाया। देवराज इन्द्रद्वारा वज्रके प्रयोगसे वृत्रासुर मारा गया और देवता विजयी हुए। संसारमें सुख-शान्तिका साम्राज्य छा गया।

देवताओंके आश्रम-प्रदेशसे जानेपर जब महर्षिपत्नी सुवर्चा आश्रममें वापस आयीं तो देवताओंकी नीति उन्हें समझमें आ गयी। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि उनके परोक्षमें देवताओंने उनके प्राणाराध्यसे अस्थियोंकी याचना की और महामतिने अपनी अस्थियोंका दानकर अपने प्राणोंका उत्सर्ग कर दिया। वे कुपित हो उठीं और उन्होंने देवताओंको पुत्रहीन होनेका शाप दे डाला तथा उसी समय अत्यन्त क्रोधाविष्ट हो उन्होंने लकड़ियाँ एकत्रकर एक चिताका निर्माण किया और पतिका ध्यान करते हुए वे ज्यों ही चितापर आरूढ होनेको उद्यत हुईं; उसी समय लीलाधारी भगवान् शंकरकी प्रेरणासे आकाशवाणी हुई—

'हे देवि! तुम इस प्रकारका साहस न करो; क्योंकि तुम्हारे गर्भमें महर्षि दधीचिका ब्रह्मतेज है, जो भगवान् शंकरका अवतार-रूप है। उसकी रक्षा आवश्यक है। सगर्भाके लिये देह-त्याग करना शास्त्रविरुद्ध है'—

'सगर्भा न दहेद् गात्रमिति ब्रह्मनिदेशनम्।'

(शिवपु० शतरुद्रसं० २४। ४३)

आकाशवाणी सुनकर सुवर्चाको अत्यन्त विस्मय हुआ और वे पास ही स्थित एक पीपलके वृक्षके नीचे बैठ गयीं। वहीं उन्होंने एक दिव्य बालकको जन्म दिया, जो साक्षात् शिवका अवतार ही था। उस समय उसके दिव्य तेजसे दसों दिशाएँ आलोकित हो उठीं। देवी सुवर्चाने उसे साक्षात् रुद्रावतार समझकर प्रणाम किया और रुद्रस्तवसे उसकी स्तुति की और कहा—'हे परमेशान! तुम इस पीपल (अश्वत्थ)-वृक्षके निकट चिरकालतक स्थित रहो। महाभाग! तुम समस्त प्राणियोंके लिये सुखदाता और अनेक प्रकारकी लीला करनेमें समर्थ होओ। अब इस समय पतिलोकमें जानेकी मुझे आज्ञा प्रदान करो।' ऐसा कहकर अपने पुत्रको वहीं पीपलके समीप छोड़कर पतिका ध्यान करती हुई सुवर्चा सती हो गयीं और उन्होंने पतिके साथ शिवलोक प्राप्त किया।

इसी समय सभी देवता तथा ऋषि-महर्षि वहाँ आये और दधीचि एवं सुवर्चाके उस पुत्रको साक्षात् रुद्रावतार जानकर अनेक स्तुतियोंसे उनकी प्रार्थना करने लगे तथा इसे भगवान् शिवकी ही कोई लीला समझकर आनन्दित हो गये। वहाँपर देवताओंने महान् उत्सव किया। आकाशसे पुष्पवृष्टि भी होने लगी। विष्णु आदि देवताओंने उस दिव्य बालकके सभी संस्कार कराये। ब्रह्माने प्रसन्न होकर उस बालकका 'पिप्पलाद' यह नाम रखा—

'पिप्पलादेति तन्नाम चक्रे ब्रह्मा प्रसन्नधीः।'

(शिवपु०, शतरुद्रसं० २४। ६१)

चूँकि शिवावतार वह बालक पीपलके वृक्षके नीचे आविर्भूत हुआ था और माताकी आज्ञासे पीपल-वृक्षके समीप रहा तथा उसने पीपलके मुलायम पत्तोंका भक्षण भी किया, इसलिये उसका पिप्पलाद यह नाम सार्थक ही हुआ। कुछ समय बाद देवता तथा ऋषि-महर्षि सब अपने स्थानोंको चले गये। पिप्पलाद उसी पीपल-वृक्षके मूलमें स्थित रहकर तपस्यामें स्थित हो गये। ऐसे ही तप करते

हुए उन्हें बहुत समय व्यतीत हो गया।

एक दिन पिप्पलाद मुनि पुष्पभद्रा नामक नदीमें स्नान करनेके लिये गये। वहाँ उन्हें राजा अनरण्यकी कन्या राजकुमारी पद्मा दिखलायी दी। वह पार्वतीके अंशसे प्रादुर्भूत हुई थी तथा दिव्य रूप एवं गुणोंसे सम्पन्न थी। उसे प्राप्त करनेकी आकांक्षासे महात्मा पिप्पलाद उसके पिता अनरण्यके पास गये और विवाहके लिये कन्याकी याचना की। प्रथम तो राजा अनरण्य महर्षिकी वृद्धावस्था और जर्जर शरीरको देखकर चिन्तित हुए, किंतु फिर उन्होंने उनके अलौकिक तेज और प्रभावको समझते हुए अपनी कन्या उन्हें सौंप दी।

पद्मा अपने वृद्ध पति महात्मा पिप्पलादकी अनन्य मनसे सेवा करने लगी। वह महान् पातिव्रत्य-गुणसे सम्पन्न थी।

एक बार पद्मा नदीमें स्नान करने गयी हुई थी, उसी समय उसके पातिव्रत्य-धर्मकी परीक्षा करनेके लिये साक्षात् धर्मदेवता दिव्य रूप एवं रमणीय दिव्याभरणोंको धारणकर पद्माके पास आये और पिप्पलादकी जरावस्थाका ध्यान दिलाते हुए अपनेको वरण करनेके लिये बार-बार आग्रह करने लगे; परंतु पद्मा तनिक भी डिगी नहीं। महात्मा पिप्पलाद उसके प्राणाधार भी थे। मन-वाणी तथा कर्मसे उसकी पतिमें अनन्य भक्ति थी। उसने धर्मदेवकी बड़ी भर्त्सना की और उसे क्षीण हो जानेका शाप दे दिया। धर्मदेव भयभीत हो अपने वास्तविक रूपमें प्रकट हो हाथ जोड़कर खड़े हो गये और बोले—'देवि! मैं साक्षात् धर्म हूँ। तुम्हारी पतिभक्ति देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ; किंतु तुम्हारे शापसे मैं भयभीत हूँ।' देवी पद्मा बोली—'धर्मदेव! मैंने अज्ञानमें ही यह सब किया है, किंतु शाप तो मिथ्या हो नहीं सकता, इसलिये तीनों युगोंमें चतुष्पाद धर्मके एक-एक पाद क्षीण रहेंगे। सत्ययुगमें तुम चारों पादोंसे स्थित रहोगे, त्रेतामें तीन पादोंसे रहोगे, द्वापरमें दो पादोंसे स्थित रहोगे तथा कलियुगमें केवल एक पादसे स्थित रहोगे। इस तरह प्रत्येक चतुर्युगीमें ऐसी ही व्यवस्था रहेगी। इसके साथ ही शापका परिहार बताकर पद्मा पुनः पतिसेवामें जानेको उद्यत हुई। तब प्रसन्न हुए धर्मदेवने वृद्ध महात्मा पिप्पलादको रूपवान्, गुणवान्, स्थिर यौवनसे युक्त पूर्ण युवा हो जानेका वर प्रदान किया और पद्माको भी चिरयौवना होकर अखण्ड सुख-सौभाग्य प्राप्त करनेका वर दिया।

वरदानके प्रभावसे पिप्पलाद तथा देवी पद्माने बहुत समयतक धर्माचरणपूर्वक गृहस्थ-जीवनका आचरण किया। इस प्रकार महाप्रभु शंकरके लीलावतार पिप्पलादने अनेक प्रकारकी लीलाएँ कीं—

एवं लीलावतारो हि शंकरस्य महाप्रभोः।
पिप्पलादो मुनिवरो नानालीलाकरः प्रभुः॥

(शिवपु०, शतरुद्रसं० २५।१४)

जब महात्मा पिप्पलादका अवतार हुआ था, उस समय उन्होंने देवताओंसे प्रश्न किया था कि 'हे देवगणो! क्या कारण है कि मेरे जन्मसे पूर्व ही पिता (दधीचि) मुझे छोड़कर चले गये और जन्म होते ही माता भी सती हो गयीं?' तब देवताओंने बताया कि शनिग्रहकी दृष्टिके कारण ही ऐसा कुयोग बना। इसपर क्रुद्ध हो पिप्पलादने शनिको नक्षत्र-मण्डलसे गिरनेका शाप दिया। तत्क्षण ही शनि आकाशसे गिर पड़े। पुनः देवताओंकी प्रार्थनापर पिप्पलादने उन्हें पूर्ववत् स्थिर हो जानेकी आज्ञा दे दी। इसीलिये महर्षि पिप्पलादके नाम-स्मरण तथा पीपल (जो भगवान् शंकरका ही रूप है)-के पूजनसे शनिकी पीडा दूर हो जाती है। महामुनि गाधि, कौशिक तथा पिप्पलाद—इन तीनोंका नाम-स्मरण करनेसे शनिग्रहकृत पीडा नष्ट हो जाती है। शंकरावतार महामुनि पिप्पलाद तथा देवी पद्माके चरित्रका श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक पाठ अथवा श्रवण शनिग्रहद्वारा किये गये अनिष्ट—पीडा आदिको दूर करनेके लिये श्रेष्ठतम उपाय है—

गाधिश्च कौशिकश्चैव पिप्पलादो महामुनिः।
शनैश्चरकृतां पीडां नाशयन्ति स्मृतास्त्रयः॥
पिप्पलादस्य चरितं पद्माचरितसंयुतम्।
यः पठेच्छृणुयाद् वापि सुभक्त्या भुवि मानवः॥
शनिपीडाविनाशार्थमेतच्चरितमुत्तमम्।

(शिवपु० शतरुद्रसं० २५।२०—२२)

द्विजेश्वरावतार

प्राचीन कालमें भद्रायु नामक एक महाप्रतापी राजा थे, वे शिवके परम भक्त थे। देवी कीर्तिमालिनी भद्रायुकी साध्वी पत्नी थीं। अपने स्वामीके समान ही कीर्तिमालिनीकी भी शिवमें परम श्रद्धा एवं निष्ठा थी। एक बार वसन्तकालमें राजा-रानी दोनों वन-विहारके लिये वनमें गये। भगवान् शिवने उनकी भक्ति तथा धर्मकी परीक्षा करनेके लिये द्विज-दम्पतीका रूप धारणकर लीला करनेकी इच्छा प्रकट की, उस समय वे स्वयं द्विज-रूपमें हो गये तथा माँ पार्वती ब्राह्मणी बन गयीं। द्विज-दम्पती उस वनमें उसी स्थानपर आये, जहाँ राजा भद्रायु और रानी कीर्तिमालिनी सुखपूर्वक बैठे हुए थे। भगवान् शंकरने अपनी लीलासे वहाँ एक मायामय व्याघ्रकी भी रचना कर ली—

अथ तद्धर्मदृढतां परीक्षन् परमेश्वरः।
लीलां चकार तत्रैव शिवया सह शंकरः॥
शिवा शिवश्च भूत्वोभौ तद्वने द्विजदम्पती।
व्याघ्रं मायामयं कृत्वाविर्भूतौ निजलीलया॥

(शिवपु०, शतरुद्रसं० २७।८-९)

अब भगवान् शंकरने लीला दिखानी प्रारम्भ की। भगवान् शंकर तथा पार्वती द्विज-दम्पतीके रूपमें व्याघ्रके भयसे भाग रहे थे और उनके पीछे व्याघ्र भयंकर गर्जना करते हुए आ रहा था। वे दोनों 'अरे कोई है, बचाओ-बचाओ'—इस प्रकार चिल्लाते-चिल्लाते, रोते-रोते वहाँ पहुँचे जहाँ राजा भद्रायु स्थित थे। वे दोनों राजासे अपने प्राणोंकी रक्षाकी प्रार्थना करने लगे। उनके आर्त स्वरको सुनकर तथा भयंकर व्याघ्रको उनके पीछे आते देखकर जबतक राजा धनुषपर बाण चढ़ाते, उतने ही समयमें उस तीक्ष्ण दाँतोंवाले व्याघ्रने ब्राह्मणी (पार्वती)-को दबोच लिया। ब्राह्मणी रोती-चिल्लाती रह गयी। राजाने अनेक अस्त्रोंसे व्याघ्रपर प्रहार किया, किंतु उसे कुछ भी असर नहीं हुआ। होता भी कैसे, उसे तो लीलाधारी भगवान्ने अपनी मायासे लीलाके लिये ही बनाया था। वह व्याघ्र ब्राह्मणीको दूरतक घसीटता चला गया। राजाके सभी अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ साबित हुए।

ब्राह्मण राजाके क्षत्रियत्वको बहुत प्रकारसे धिक्कारने लगा कि उनके रहते उनकी पत्नीको व्याघ्र हर ले गया। 'जो शरणागतकी रक्षा न कर सके उसका जीना व्यर्थ है।' यह सुनकर राजाके मनमें अत्यन्त ग्लानि हुई। उन्हें अपना जीवन व्यर्थ लगने लगा। अतः उन्होंने प्राणोंके उत्सर्गका निश्चय किया और वृद्ध ब्राह्मणके चरणोंमें गिरकर वे क्षमा-याचना करते हुए कहने लगे—'ब्रह्मन्! अब मेरा जीवन बेकार ही है। मेरा बल, पराक्रम सब व्यर्थ गया। मैं देवी ब्राह्मणीको छुड़ा नहीं सका, अतः अब मुझे राज्य तथा समस्त वैभव आदिसे कोई प्रयोजन नहीं है, इसलिये उसे आप स्वीकारकर मुझे क्षमा करें।'

इसपर लीलारूप वृद्ध ब्राह्मणने कहा—'अरे राजन्! मेरी प्रिया ब्राह्मणी नहीं रही, इसलिये मेरे लिये सारा सुखोपभोग व्यर्थ ही है, यह तो वैसा ही है जैसे अंधेके लिये दर्पण निष्प्रयोजन ही होता है। यदि आपको देना ही है तो मेरी स्त्री नहीं रही, इसलिये आप अपनी स्त्री मुझे प्रदान करें। अन्यथा मेरे प्राण शरीरमें नहीं रह सकते।'

वृद्ध ब्राह्मणकी बात सुनकर पहले तो राजा भद्रायु बड़े ही संकटमें पड़ गये। उन्हें महान् आश्चर्य हुआ। वे कुछ निर्णय करनेमें समर्थ नहीं हुए; किंतु दूसरे ही क्षण उन्होंने निश्चय किया कि ब्राह्मणके प्राणोंकी रक्षा न करनेसे महान् पाप होगा। अतः उन्होंने पत्नीका दान करके अग्निमें प्रवेश कर जानेका निर्णय लिया। ऐसा निश्चय करके उन्होंने लकड़ियाँ एकत्र कीं तथा अग्नि प्रज्वलितकर ब्राह्मणको बुलाकर अपनी पत्नी उन्हें दे दी और फिर भगवान् शिवका स्मरण-ध्यान करके ज्यों ही राजा भद्रायु अग्निमें प्रविष्ट होनेके लिये उद्यत हुए, त्यों ही लीलाधारी भगवान् शंकर जो द्विजरूपमें थे, वे साक्षात् शिवरूपमें सामने प्रकट हो गये। उनके पाँच मुख थे, मस्तकपर चन्द्रकला सुशोभित थी, जटाएँ लटकी हुई थीं। वे हाथोंमें त्रिशूल, खट्वाङ्ग, ढाल, कुठार, पिनाक तथा वरद और अभय-मुद्रा धारण किये थे। वे वृषभपर आरूढ थे। उनका मुखमण्डल अद्भुत दिव्य प्रकाशकी

आभासे प्रकाशित हो रहा था। उनका वह रूप अत्यन्त मनोरम तथा सुखदायी था।

अपने आराध्य लीलाधारी भगवान् शिवको अपने सामने पाकर राजा भद्रायुके आनन्दकी सीमा न रही। वे बार-बार प्रणाम करते हुए अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति करने लगे। उस समय आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी। देवी उमा भी वहाँ प्रकट हो गयीं।

राजाके महान् त्याग और दृढ़भक्तिसे प्रसन्न होकर शिवने भद्रायुको लीलाका रहस्य समझाते हुए कहा—'राजन्! मैं ही तुम्हारे शिव-भावकी परीक्षा लेनेके लिये द्विजरूपमें अवतरित हुआ था और वह वृद्ध ब्राह्मणी भी और कोई नहीं मेरी प्रिया ये देवी पार्वती ही थीं। वह व्याघ्र भी मैंने लीलासे ही रचा था। तुम्हारे धैर्यको देखनेके लिये ही मैंने तुम्हारी पत्नीको माँगा था। तुम्हारी पत्नी कीर्तिमालिनी और तुम्हारी भक्तिसे हम प्रसन्न हैं, कोई वर माँगो!' फिर शिवभक्तिका वरदान प्राप्तकर अन्तमें राजा भद्रायु तथा कीर्तिमालिनीने शिवसायुज्य प्राप्त किया। भद्रायुने अपने माता-पिता एवं कुल-परम्परा और कीर्तिमालिनीने भी अपने माता-पिता एवं कुल-परम्पराको शिव-भक्त होनेका वरदान प्राप्त किया।

इस प्रकार भगवान् शिवने अपने भक्तके कल्याणके लिये द्विजरूप होकर लीला की और वे द्विजेश्वर कहलाये।

~~ o ~~

भगवान् शिवका यतिनाथ एवं हंसावतार

(श्रीआनन्दीलालजी यादव)

प्राचीन समयमें अर्बुदाचल नामक पर्वतके पास आहुक नामका एक भील रहता था। उसकी पत्नीका नाम आहुका था। पति-पत्नी दोनों ही शिवभक्त थे। वे दोनों अपने गृहस्थधर्मका पालन करते हुए अपनी दिनचर्याका अधिकांश समय शिवोपासनामें ही व्यतीत करते थे। उस भील-दम्पतीका जीवन भोलेभण्डारी शिवकी पूजा-अर्चनाके लिये पूर्णतया समर्पित था।

एक दिन सन्ध्याके समय जब भगवान् भास्कर अस्ताचलकी ओर बढ़ रहे थे, उस समय भगवान् शंकर भीलकी शिवभक्तिकी परीक्षाके लिये संन्यासीका वेष धारण कर उसकी कुटियापर पहुँचे। उस समय केवल आहुका ही वहाँ थी, उसने संन्यासीको प्रणाम करके उनका स्वागत किया। आहुक आहारकी खोजमें वनमें गया हुआ था, लेकिन थोड़ी ही देरमें वह भी कुटियापर पहुँच गया और उसने भी घर आये संन्यासीको प्रणाम किया।

संन्यासी बोले—'भील! मुझे आजकी रात बितानेके लिये जगह दे दो। मैं कल प्रात:काल यहाँसे चला जाऊँगा।' आहुकने कहा—'यतिनाथ! हमारी यह झोपड़ी छोटी है। इसमें केवल दो व्यक्ति ही रातमें ठहर सकते हैं। अभी सूर्यास्त नहीं हुआ है और कुछ रोशनी है। अत: आप रात बितानेके लिये किसी अन्य स्थानकी तलाश कर लें।'

इस बातको सुनकर आहुका बोली—'प्राणनाथ! देखिये, ये यतिनाथ हमारे अतिथि हैं। हम गृहस्थ हैं। गृहस्थ-धर्मानुसार हमें इनकी सेवा करनी चाहिये। इन्हें किसी अन्य स्थानपर जानेके लिये नहीं कहना चाहिये। अत: रातमें आप दोनों झोपड़ीमें अंदर रहियेगा और मैं शस्त्र लेकर बाहर पहरा दूँगी।'

पत्नीकी बातें सुनकर आहुकने कहा—'तुम ठीक कहती हो कि हमें घर आये अतिथिका सत्कार करना चाहिये। अत: आज रात यति महाराज हमारे यहाँ रहेंगे। मेरे होते हुए तुम्हें बाहर पहरा देनेकी जरूरत नहीं है। आप दोनों झोपड़ीमें अंदर रहना और मैं शस्त्र लेकर बाहर पहरा देते हुए आपलोगोंकी रक्षा करूँगा।'

भोजन करनेके बाद यतिनाथ और भीलकी पत्नी तो कुटियामें अंदर सो गये तथा आहुक शस्त्र लेकर बाहर पहरा देने लगा।

रातके समय जंगली हिंसक पशुओंने आहुकको आहार बनानेका यत्न शुरू कर दिया। वह अपनी शक्तिके अनुसार पशुओंसे अपना बचाव करता रहा, लेकिन प्रारब्धानुसार जंगली पशु उसे मारकर खा गये। प्रात:काल

आहुकाने कुटियासे बाहर निकलकर अपने पतिको मृत देखा। वह बहुत दु:खी हुई। यति भी जब कुटियासे बाहर निकले तो आहुकको मृत देखकर उन्होंने भीलनीसे कहा कि यह सब उसके कारण हुआ है।

भीलनी आहुका बोली—'यतिनाथ! आप दु:खी मत होइये। मेरे पतिकी मृत्युका प्रारब्धवश ऐसा ही विधान था। गृहस्थधर्मका पालन करते हुए इन्होंने प्राण त्याग दिये हैं। इनका कल्याण ही हुआ है। आप मेरे लिये एक चिता तैयार कर दें, जिससे मैं पत्नीधर्मका पालन करते हुए अपने पतिका अनुसरण कर सकूँ।'

आहुकाकी बातें सुनकर संन्यासीने उसके लिये एक



चिता तैयार कर दी। आहुकाने ज्यों ही चितामें प्रवेश किया, त्यों ही भगवान् शिव साक्षात् अपने रूपमें उसके समक्ष प्रकट हो गये और उसकी प्रशंसा करते हुए बोले—'तुम धन्य हो। मैं तुमपर अति प्रसन्न हूँ। तुम इच्छानुसार वर माँगो। तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है।'

भगवान् शंकरको अपने सामने प्रत्यक्ष देखकर और उनकी वाणी सुनकर आहुका आत्मविभोर हो गयी। उसके मुखसे वचन नहीं निकले। उसकी उस स्थितिको देखकर देवाधिदेव महादेव अतिप्रसन्न होकर बोले—'मेरा जो यह यतिरूप है, यह भविष्यमें हंसरूपमें प्रकट होगा। मेरे कारण तुम पति-पत्नीका बिछोह हुआ है। मेरा हंसस्वरूप तुम दोनोंका मिलन करायेगा। तुम्हारा पति निषधदेशमें राजा वीरसेनका पुत्र 'नल' होगा और तुम विदर्भनगरमें भीमराजकी पुत्री 'दमयन्ती' होओगी। मैं हंसावतार लेकर तुम दोनोंका विवाह कराऊँगा। तुम दोनों राजभोग भोगनेके पश्चात् वह मोक्षपद प्राप्त करोगे, जो बड़े-बड़े योगेश्वरोंके लिये भी दुर्लभ है'—इतना कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये और भीलनी आहुकाने अपने पतिके मार्गका अनुसरण किया।

कालान्तरमें आहुक नामक भील निषधदेशके राजा वीरसेनका पुत्र 'नल' हुआ और निषधदेशका राजा बना। उस समय नलके समान सुन्दर और गुणवान् व्यक्ति पृथ्वीपर नहीं था। आहुका भीलनी विदर्भके राजा भीमकी पुत्री 'दमयन्ती' हुई। उस समय दमयन्तीके समान पृथ्वीपर सुन्दरी और गुणवती स्त्री नहीं थी। दोनोंके रूप और गुणोंकी चर्चा सर्वत्र होती थी।

नल और दमयन्तीके पूर्वजन्मके अतिथि-सत्कारजनित पुण्य एवं शिवाराधनासे प्रसन्न होकर यतिनाथ भगवान् शिव अपने वचनोंको सत्य प्रमाणित करनेके लिये हंसरूपमें प्रकट हुए। हंसावतारधारी शिव मानववाणीमें कुशलतासे बातें करने एवं संदेश पहुँचानेमें निपुण थे।

भगवान् शंकरने हंसरूपमें दमयन्तीको नलके और नलको दमयन्तीके रूप और गुणोंको बताकर उन्हें विवाह करनेकी प्रेरणा दी। विदर्भराजने दमयन्तीके विवाहके लिये स्वयंवर आयोजित किया। स्वयंवरमें दमयन्तीने नलके गलेमें वर-माला पहना दी और दोनोंका विवाह हो गया।

भगवान् शिव ही यतिनाथके वेषमें आहुक और आहुकाकी परीक्षा लेने गये थे। उनके कारण ही उनका बिछोह हुआ था और उन्होंने ही उन्हें फिर मिला दिया। भोलेभण्डारी महादेव शीघ्र ही प्रसन्न होकर अपने भक्तोंको वर देनेके लिये प्रसिद्ध हैं। शिवकी सर्वत्र पूजा-उपासना होती है। सर्वत्र शिवालय प्रतिष्ठित हैं। जहाँ 'हर-हर महादेव'की ध्वनि गूँजती है। कल्याणकारी भगवान् शिव सबका भला ही करते हैं। **(शिवपुराण)**

अर्धनारीश्वर भगवान् शिव

(सुश्री उषारानी शर्मा)

सकलभुवनभूतभावनाभ्यां
जननविनाशविहीनविग्रहाभ्याम्।
नरवरयुवतीवपुर्धराभ्यां
सततमहं प्रणतोऽस्मि शङ्कराभ्याम्॥

अर्थात् जो समस्त भुवनोंके प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले हैं, जिनका विग्रह जन्म और मृत्युसे रहित है तथा जो श्रेष्ठ नर और सुन्दर नारी (अर्धनारीश्वर) रूपमें एक ही शरीर धारण करके स्थित हैं, उन कल्याणकारी भगवान् शिव और शिवाको मैं प्रणाम करता हूँ।

भगवान् शिवका अर्धनारीश्वररूप परम परात्पर जगत्पिता और दयामयी जगन्माताके आदि सम्बन्धभावका द्योतक है। सृष्टिके समय परम पुरुष अपने ही अर्द्धाङ्गसे प्रकृतिको निकालकर उसमें समस्त सृष्टिकी उत्पत्ति करते हैं—

द्विधा कृतात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः॥

ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप है। ईश्वरका सत्स्वरूप उनका मातृस्वरूप है और चित्स्वरूप पितृस्वरूप है। उनका तीसरा आनन्दरूप वह स्वरूप है, जिसमें मातृभाव और पितृभाव दोनोंका पूर्णरूपेण सामंजस्य हो जाता है, वही शिव और शक्तिका संयुक्त रूप अर्धनारीश्वररूप है। सत्-चित् दो रूपोंके साथ-साथ तीसरे आनन्दरूपके दर्शन अर्धनारीश्वररूपमें ही होते हैं, जो शिवका सम्भवतः सर्वोत्तम रूप कहा जा सकता है।

सत्-चित् और आनन्द—ईश्वरके इन तीन रूपोंमें आनन्दरूप अर्थात् साम्यावस्था या अक्षुब्धभाव भगवान् शिवका है। मनुष्य भी ईश्वरसे उत्पन्न उसीका अंश है, अतः उसके अंदर भी ये तीनों रूप विद्यमान हैं। इसमेंसे स्थूल शरीर उसका सदंश है तथा बाह्य चेतना चिदंश है। जब ये दोनों मिलकर परमात्माके स्वरूपकी पूर्ण उपलब्धि कराते हैं, तब उसके आनन्दांशकी अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार मनुष्यमें भी सत्-चित्की प्रतिष्ठासे आनन्दकी उत्पत्ति होती है।

स्त्री और पुरुष दोनों ईश्वरकी प्रतिकृति हैं। स्त्री उनका सद्रूप है और पुरुष चिद्रूप, परंतु आनन्दके दर्शन तब होते हैं, जब ये दोनों मिलकर पूर्ण रूपसे एक हो जाते हैं। शिव गृहस्थोंके ईश्वर हैं, विवाहित दम्पतीके उपास्य देव हैं। शिव स्त्री और पुरुषकी पूर्ण एकताकी अभिव्यक्ति हैं, इसीसे विवाहित स्त्रियाँ शिवकी पूजा करती हैं।

भगवान् शिवके अर्धनारीश्वर-अवतारकी कथा— पुराणोंके अनुसार लोकपितामह ब्रह्माजीने पहले मानसिक सृष्टि उत्पन्न की थी। उन्होंने सनक-सनन्दनादि अपने मानसपुत्रोंका सृजन इस इच्छासे किया था कि ये मानसी सृष्टिको ही बढ़ायें, परंतु उन्हें सफलता नहीं मिली। उनके मानसपुत्रोंमें प्रजाकी वृद्धिकी ओर प्रवृत्ति ही नहीं होती थी। अपनी मानसी सृष्टिकी वृद्धि न होते देखकर ब्रह्माजी भगवान् त्र्यम्बक सदाशिव और उनकी परमा शक्तिका हृदयमें चिन्तन करते हुए महान् तपस्यामें संलग्न हो गये। उनकी इस तीव्र तपस्यासे भगवान् महादेव शीघ्र ही प्रसन्न हो गये और अपने अनिर्वचनीय अंशसे अर्धनारीश्वरमूर्ति धारण कर वे ब्रह्माजीके पास गये—



तया परमया शक्त्या भगवन्तं त्रियम्बकम्।
सञ्चिन्त्य हृदये ब्रह्मा तताप परमं तपः॥
तीव्रेण तपसा तस्य युक्तस्य परमेष्ठिनः।
अचिरेणैव कालेन पिता सम्प्रतुतोष ह॥

ततः केन चिदंशेन मूर्तिमाविश्य कामपि।
अर्धनारीश्वरो भूत्वा ययौ देवस्स्वयं हरः॥

(शिवपुराण, वायवीय संहिता, पूर्वार्द्ध १५।७—९)

ब्रह्माजीने भगवान् सदाशिवको अर्धनारीश्वररूपमें देखकर विनीत भावसे उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और उनकी स्तुति की। इसपर भगवान् महादेवने प्रसन्न होकर कहा—हे ब्रह्मन्! आपने प्रजाजनोंकी वृद्धिके लिये तपस्या की है, आपकी इस तपस्यासे मैं बहुत संतुष्ट हूँ और आपको अभीष्ट वर देता हूँ। यह कहकर उन देवाधिदेव ने अपने वामभागसे अपनी शक्ति भगवती रुद्राणीको प्रकट किया। उन्हें अपने समक्ष प्रकट देखकर ब्रह्माजीने उनकी स्तुति की और उनसे कहा—हे सर्वजगन्मयि देवि! मेरी मानसिक सृष्टिसे उत्पन्न देवता आदि सभी प्राणी बारंबार सृष्टि करनेपर भी बढ़ नहीं रहे हैं। मैथुनी सृष्टिहेतु नारीकुलकी सृष्टि करनेकी मुझमें शक्ति नहीं है, अतः हे देवि! अपने एक अंशसे इस चराचर जगत्की वृद्धिहेतु आप मेरे पुत्र दक्षकी कन्या बन जायँ।

ब्रह्माजीद्वारा इस प्रकार याचना किये जानेपर देवी रुद्राणीने अपनी भौंहोंके मध्य भागसे अपने ही समान एक कान्तिमती शक्ति उत्पन्न की, वही शक्ति भगवान् शिवकी आज्ञासे दक्षकी पुत्री हो गयी और देवी रुद्राणी पुनः महादेवजीके शरीरमें ही प्रविष्ट हो गयीं।

इस प्रकार भगवान् सदाशिवके अर्धनारीश्वररूपसे ही सृष्टिकी उत्पत्ति हुई। उनका यह रूप यह संदेश देता है कि समस्त पुरुष भगवान् सदाशिवके अंश और समस्त नारियाँ भगवती शिवाकी अंशभूता हैं, उन्हीं भगवान् अर्धनारीश्वरसे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् व्याप्त है—

पुँल्लिङ्गं सर्वमीशानं स्त्रीलिङ्गं विद्धि चाप्युमाम्।
द्वाभ्यां तनुभ्यां व्याप्तं हि चराचरमिदं जगत्॥

देवाधिदेव महादेव—नटराज शिव

(डॉ० सुश्री कृष्णाजी गुप्ता)



हिन्दूधर्मके त्रिदेवोंमें शिवका स्थान महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि शिव संहारक तथा प्रलयकर्ता माने गये हैं, परंतु उनके अनन्य उपासक उन्हें ब्रह्मा एवं विष्णुसे सम्बन्धित कार्य—सृष्टि एवं स्थितिके कर्ता भी मानते हैं। शिवको अनुग्रह, प्रसाद एवं तिरोभाव करनेवाला माना गया है। शिवके ये सम्पूर्ण कृत्य पञ्चकृत्यके परिचायक हैं। संसारके लय, विलय, संरक्षण, अनुग्रह, प्रसाद, तिरोभाव आदि कृत्योंसे उनके पञ्चकृत्योंका उद्भव होता है। शिवके विविध रूप ही उनके विविध कृत्योंके परिचायक हैं। भारतीय संस्कृतिके लगभग प्रत्येक अङ्गपर शिवमहिमाकी छाप है। दर्शन, कला, नृत्य एवं साहित्यमें शिवकी व्यापकता द्रष्टव्य है। विभिन्न शास्त्रोंमें शिवके रहस्यात्मक स्वरूप चर्चाके विषय रहे हैं तथा उन्हें अनेक नामोंसे विभूषित किया गया है।

शास्त्रोंमें जितना अधिक शिवके स्वरूपोंका वर्णन है, उतना ही शिल्पियोंने उनके स्वरूपोंकी प्रतिमाएँ शिल्पित की हैं। कलाकी दृष्टिसे शिवको तीन प्रमुख रूपोंमें प्रस्तुत किया गया है—प्रतीक रूपमें (शिवलिङ्ग), वृषरूपमें (नन्दीप्रतिमा) तथा मानवीय स्वरूपमें (उग्र एवं सौम्य)। उग्र स्वरूपमें शिवको भैरव, घोर, रुद्र, पशुपति, वीरभद्र, विरूपाक्ष तथा कंकाल मूर्तियोंमें दर्शाया गया है। शिवकथानकोंमें इस स्वरूपका अङ्कन संहारमूर्तियोंके रूपमें मिलता है। शैवागमोंमें शिवकी सौम्य मूर्तियोंका वर्णन चन्द्रशेखर, वृषवाहन, उमामहेश्वर, सोम, स्कन्द

आदि रूपोंमें किया गया है। शिवका विशुद्ध स्वरूप महेश, सदाशिव और पञ्चमुखी प्रतिमा—सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष तथा ईशानके माध्यमसे निरूपित किया गया है। शिवकी स्वतन्त्र अभिव्यक्ति तो शिल्पमें बहुत अङ्कित की गयी है; साथ ही शैव, शाक्त, वैष्णव एवं सौर आदि सम्प्रदायोंका समन्वय संहारमूर्तियोंद्वारा प्रस्तुत किया गया है। दक्षिण भारतके देवालयोंमें शिवके अनुग्रह-रूपकी गङ्गाधर तथा कल्याणसुन्दर (शिव-पार्वतीपरिणय) मूर्तियाँ अत्यन्त रोचक भंगिमाओंमें शास्त्रानुरूप प्रस्तुत की गयी हैं।

शिवका एक अन्य अत्यन्त लोकप्रिय रूप 'नटराज' दक्षिणमें चोलकालीन मंदिरोंकी कांस्य-प्रतिमाओंमें प्रकट होता है। शिवको संगीत, नृत्य, नाट्ययोग, व्याख्यान आदि विद्याओंमें पारङ्गत कहा गया है।

प्रतिमाविज्ञानकी दृष्टिसे शिवका अङ्कन सश्वास है, सजीव है तथा शिल्पीकी तूलिकाका उन्मीलन देवाधिदेव महादेवके उन्मेषकारी रूपोंमें मुखर हुआ है।

हिन्दू देवताओंमें शिव ही ऐसे एकमात्र देव हैं, जो सभी नृत्योंमें पारङ्गत माने गये हैं। भरतमुनिने अपने नाट्यशास्त्रमें नृत्यकी १०८ मुद्राओंका वर्णन किया है। शैवागमोंमें शिवको १०१ मुद्राओंसे भी अधिक मुद्राओंमें नृत्य करते हुए वर्णित किया गया है। चिदम्बरम्‌के नटराज मन्दिरके गोपुरके दोनों ओर १०८ मुद्राओंमें शिवके नृत्यका अङ्कन है और प्रत्येक मुद्राको शिल्पीने भरतमुनिके नाट्यशास्त्रके अनुसार प्रस्तरपर उत्कीर्ण किया है। गोपुरमें प्रत्येकके नीचे नाट्यशास्त्रके श्लोक लिखे हुए हैं।

शिवका नटराज-स्वरूप सम्पूर्ण भारतमें लोकप्रिय रहा है, परंतु इस स्वरूपमें शिल्पकी दृष्टिसे उत्तर एवं दक्षिण भारतमें कुछ अंतर है। दक्षिण भारतके नटराज अपनी बायीं भुजामें अग्नि लिये हुए रहते हैं एवं उनके पैरोंके समीप झुका हुआ अपस्मार पुरुष मुयलक रहता है, परंतु उत्तर भारतमें ललितमुद्रामें बहुभुजी नटराजके पैरोंके समीप नन्दी अथवा नर्तनका अनुसरण करता सहचर रहता है। दक्षिण भारतमें नटराज शिवकी कांस्य प्रतिमाएँ बहुतायतसे मिलती हैं। ये प्रतिमाएँ अधिकांशत: १४-१५वीं सदी तथा उसके बादकी हैं। चोल शैलीमें नटराज शिव, विशाल प्रभामण्डलमें अंधकारके प्रतीक अपस्मार-पुरुषपर चरण रखकर नृत्य कर रहे हैं। नृत्यमें शिवकी पाँचों क्रियाओं—सृष्टि, निर्माण, स्थिति, संहार एवं तिरोभावका समावेश है।

विभिन्न पुराणोंमें नटराज शिवका उल्लेख मिलता है। विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें उल्लेख है कि जिस प्रकार प्रजापति, शतक्रतु, धन्वन्तरि, मही, संकर्षण एवं रुद्र क्रमशः इतिहास, धनुर्वेद, आयुर्वेद, फलवेद, पाञ्चरात्र, पाशुपतमतके प्रवर्तक हैं, उसी प्रकार महेश्वर शिव नृत्यविज्ञानके प्रवर्तक हैं। इसीमें उल्लेख है—**'यथा चित्रे तथा नृत्ये त्रैलोक्यानुकृतिं स्मृता।'** इसमें नृत्यके विभिन्न करणके विभिन्न सुझाव दिये गये हैं। मत्स्यपुराण (२५९। १०-११)-में नटराज शिवकी दशभुजी मूर्तिका विवरण इस प्रकार आया है—

वैशाखस्थानकं कृत्वा नृत्याभिनयसंस्थितः॥
नृत्यन् दशभुजः कार्यो गजचर्मधरस्तथा।

अर्थात् दस भुजाओंवाली शिवकी नटराज-मूर्तिको विशाखस्थान मुद्रा (नृत्य या युद्धमें खड़े होनेकी वह मुद्रा जिसमें दोनों पैरोंके बीच एक हाथ जगह खाली रहती है)-में बनाया जाना चाहिये। वह नाचती हुई तथा गजचर्म धारण किये हुए हो।

शिवकी नृत्यप्रतिमाएँ भारतके विभिन्न क्षेत्रों—एलोरा, एलीफेण्टा, बादामी, काञ्जीवरम्, भुवनेश्वरके लिङ्गराज एवं खजुराहो तथा मध्यक्षेत्रमें पूरे वैभवके साथ अङ्कित हैं, परंतु इनके सुन्दर स्वरूप दक्षिण भारतकी कांस्यप्रतिमाओंमें मिलते हैं। इन प्रतिमाओंमें नटराज शिवमें विशेष प्रकारकी उन्नति हुई है, जो कलाके क्षेत्रमें उत्कृष्ट देन है। दक्षिण भारतके शिल्पियोंने शिवको विश्वनर्तकके रूपमें व्यक्त किया है।

शिवका ताण्डव-नृत्य मात्र नृत्य ही नहीं सम्पूर्ण शैवदर्शन है। श्रीमद्भागवत (१०। ६२। ४)-में वर्णित है कि एक बार बाणासुरने अपनी हजार भुजाओंसे वाद्य बजाकर ताण्डव-नृत्य करते शिवको प्रसन्न किया था—

'सहस्रबाहुर्वाद्येन ताण्डवेऽतोषयन्मृडम्॥'

ताण्डव-नृत्यमें शिवकी बिखरी हुई जटाएँ ब्रह्माण्ड हैं, फुफकारता हुआ सर्प वासना है, गङ्गा ज्ञान है, चन्द्र ज्योति है तथा तीसरा नेत्र अग्नि है, मुण्डमाला संसारकी निस्सारता है, पैरोंके नीचे अपस्मार-पुरुष अज्ञानका प्रतीक है। ताण्डव श्मशानका नृत्य है, भैरव या वीरभद्रकी रूपसज्जा इस नृत्यहेतु की जाती है। ताण्डवके पाँच रूप हैं—सृष्टि, (जन्म), स्थिति (सुरक्षा), तिरोभाव (माया), अनुग्रह (क्षमा) एवं संहार (विनाश), जो क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, सदाशिव एवं रुद्रके कार्य हैं और जिन्हें महादेव शिव ताण्डव-नृत्यमें क्रियान्वित करते हैं। कभी-कभी उनके साथ नन्दी, शृङ्गी, ऋषि, गणेश, कार्तिकेय एवं समस्त परिवार भी नृत्य करता है। उनकी जटाएँ फैली हुई होती हैं और जटाके बायीं ओर गङ्गा तथा दायीं ओर चन्द्रमा विराजमान रहता है—**'सुधामयूखलेखया विराजमानशेखरम्'** शिव संसारके क्रमबद्ध जीवनके प्रतिपादनके लिये नृत्य करते हैं। उनका नृत्य पञ्चाक्षर 'न म शि व य' (पाँच अक्षरों)-का समुदाय है। उनके पगमें 'न', मध्यभाग (नाभि)-में 'म', स्कन्धमें 'शि', मुखमें 'व' एवं मस्तकमें 'य' है। शिवके चार हाथोंमें डमरुसे निर्माणका उदय होता है। आशाके हाथसे (अभय) रक्षा प्रवृत्त होती है, अग्निलिये हाथसे विध्वंस प्रवृत्त होता है, चौथा हाथ जो पैरकी ओर उठा हुआ रहता है, आत्माका शरणस्थल है तथा ऊपरकी ओर उठा हुआ पैर मुक्ति प्रदान करता है। तमिलसाहित्यमें 'उन्मैय-विलक्कम्' में शिवके नृत्यकी अलौकिक व्याख्या की गयी है।

यद्यपि शिव महान् नर्तकके रूपमें बहुत पहलेसे साहित्यमें वर्णित किये गये हैं तथापि उनका प्रतिमासम्बन्धी वर्णन केवल शैवागमोंमें ही मिलता है। एक सर्वोच्च नर्तकके रूपमें शिव कई स्वरूप ग्रहण करते हैं और उनकी विभिन्न मुद्राएँ नृत्यके विभिन्न स्वरूपोंको दर्शाती हैं। प्रत्येक नृत्यमें जीव-निकायके आत्यन्तिक कल्याणका लाक्षणिक अर्थ समाहित रहता है।

भगवान् शिवका राधावतार और भगवती महाकालीका कृष्णावतार

(सुश्री निशीजी द्विवेदी, एम०ए०)

[यह कथा 'महाभागवत (देवीपुराण)' से ली गयी है। विभिन्न पुराणोंमें कथाओंमें भिन्नता मिलती है। इन कथाओंकी सार्थकता कल्पभेदके अनुसार मानी जाती है अर्थात् एक कथा एक कल्पकी तथा दूसरी कथा दूसरे कल्पकी है—सम्पादक]

एक बारकी बात है देवर्षि नारदजीने भगवान् शिवजीसे निवेदन किया—प्रभो! अनेक तत्त्वज्ञानी लोग बताते हैं कि परात्पर विद्यास्वरूपिणी भगवती काली हैं। उन्होंने ही स्वयं पृथ्वीपर श्रीकृष्णरूपमें अवतार ग्रहणकर कंसादि दुष्टोंका संहार कर पृथ्वीका भार दूर किया, अतः आप बतानेकी कृपा करें कि महेश्वरीने पुरुषरूपमें क्यों अवतार धारण किया—

वदन्त्यनेकतत्त्वज्ञाः काली विद्या परात्परा।
या सैव कृष्णरूपेण क्षितावववातरत्स्वयम्॥
अभवच्छ्रोतुमिच्छामि कस्माद्देवी महेश्वरी।
पुंरूपेणावतीर्णाभूक्षितौ तन्मे वद प्रभो॥

(महाभागवतपुराण ४९।१, ३)

इसपर भगवान् महादेवजीने नारदजीकी जिज्ञासाको शान्त करनेके लिये उनके द्वारा पूछे गये प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा—

वत्स! एक समयकी बात है—कौतुकी भगवान् शिव कैलासशिखरपर मन्दिरमें पार्वतीके साथ एकान्तमें विहार कर रहे थे। भगवती पार्वतीकी अचिन्त्य सुन्दरता देखकर शम्भु सोचने लगे कि 'नारी जन्म तो अत्यन्त शोभन है'—

'चेतसा चिन्तयामास नारीजन्मातिशोभनम्॥'

तदनन्तर उन्होंने पार्वतीजीसे अनुरोध किया कि मेरी इच्छा है कि पृथ्वीपर आप पुरुषरूपसे एवं मैं आपकी पत्नीके रूपमें अवतीर्ण होऊँ—

यदि मे त्वं प्रसन्नासि तदा पुंस्त्वमवाप्नुहि।
कुत्रचित्पृथिवीपृष्ठे यास्येऽहं स्त्रीस्वरूपताम्॥

(महाभागवतपुराण ४९। १६)

भगवती पार्वतीजीने भगवान् शिवजीसे कहा कि हे महादेव! मैं आपकी प्रसन्नताके लिये पृथ्वीपर वसुदेवके घरमें पुरुषरूपमें श्रीकृष्ण होकर अवश्य जन्म लूँगी और हे त्रिलोचन! मेरी प्रसन्नताके लिये आप भी स्त्रीरूपमें जन्म ग्रहण करें—

भविष्येऽहं त्वत्प्रियार्थं निश्चितं धरणीतले॥
पुंरूपेण महादेव वसुदेवगृहे प्रभो।
कृष्णोऽहं मत्प्रियार्थं स्त्री भव त्वं हि त्रिलोचन॥

इसपर श्रीशिवजीने कहा—हे शिवे! आपके पुरुषरूपसे श्रीकृष्णके रूपमें अवतरित होनेपर मैं आपकी प्राणसदृश वृषभानुपुत्री राधारूप होकर आपके साथ विहार करूँगा। साथ ही मेरी आठ मूर्तियाँ भी रुक्मिणी, सत्यभामा आदि पटरानियोंके रूपमें मृत्युलोकमें अवतरित होंगी—

पुंरूपेण जगद्धात्रि प्राप्तायां कृष्णतां त्वयि।
वृषभानोः सुता राधास्वरूपाहं स्वयं शिवे॥
तव प्राणसमा भूत्वा विहरिष्ये त्वया सह।
मूर्तयोऽष्टौ तथा मर्त्ये भविष्यन्त्युत योषितः॥

देवीने यह भी कहा कि मेरी दो सखियाँ—विजया एवं जया उस समय श्रीदाम एवं वसुदामके नामसे पुरुषरूपमें जन्म लेंगी। पूर्वकालमें विष्णुजीके साथ की गयी अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार मेरे कृष्ण होनेपर श्रीविष्णु मेरे अग्रज बलरामके रूपमें अवतार ग्रहण करेंगे। पूर्वकालमें भगवती एवं विष्णुजीने युद्धमें जिन राक्षसोंका संहार किया था; वे कंस, दुर्योधन आदिके रूपमें जन्म लेंगे। पूर्वकालमें जो महान् राक्षस मारे गये थे, वे राजाके रूपमें जन्म ग्रहण करेंगे। मेरी भद्रकालीकी मूर्ति वसुदेवके घरमें पुरुषरूपमें 'श्याम' के नामसे अवतार लेगी—

किंतु मे भद्रकाली या मूर्तिर्नवघनद्युतिः।
वसुदेवगृहे ब्रह्मन् पुंरूपेण भविष्यति॥

भगवान् विष्णु भी अपने अंशरूपसे पाण्डुपुत्र अर्जुनके रूपमें, धर्मराज अपने अंशरूपसे युधिष्ठिरके रूपमें, पवनदेव अपने अंशसे भीमसेनके रूपमें, अश्विनीकुमार अपने अंशसे माद्रीपुत्र नकुल-सहदेवके रूपमें जन्म लेंगे एवं मेरे अंशसे कृष्णा—द्रौपदीका जन्म होगा। मैं पाण्डुपुत्रोंकी विशेष सहायता करके युद्धके लिये उत्सुक रहूँगी। मैं युद्धमें महान् माया फैलाकर समरक्षेत्रमें सम्मुख उपस्थित होकर परस्पर मारनेकी इच्छावाले वीरोंका संहार करूँगी। मेरी ही मायासे मोहित होकर दुष्ट राजा एक-दूसरेको मार डालेंगे। इस युद्धमें धर्मनिष्ठ पाँच पाण्डव, बालक एवं वृद्धमात्र शेष रह जायँगे। मैं पृथ्वीको भारसे मुक्त करके पुनः यहाँ लौट आऊँगी—

'निर्भारां वसुधां कृत्वा पुनरेष्यामि चात्र तु॥'

(महाभागवतपुराण ४९। ६२)

ब्रह्माजीकी प्रार्थनापर साक्षात् भगवती ही देवकार्यसिद्ध्यर्थ अपने अंशसे वसुदेवपुत्र श्रीकृष्णके रूपमें तथा भगवान् विष्णु वसुदेवके घर बलराम एवं पाण्डुपुत्र अर्जुनके रूपमें अवतीर्ण हुए—

विधिना प्रार्थिता देवी वसुदेवसुतः स्वयम्।
निजांशेनाभवत्कृष्णो देवानां कार्यसिद्धये॥
विष्णुश्चापि द्विधा भूत्वा जन्म लेभे महीतले।
वसुदेवगृहे रामो महाबलपराक्रमः॥
तथापरः पाण्डुसुतो धन्विश्रेष्ठो धनञ्जयः।

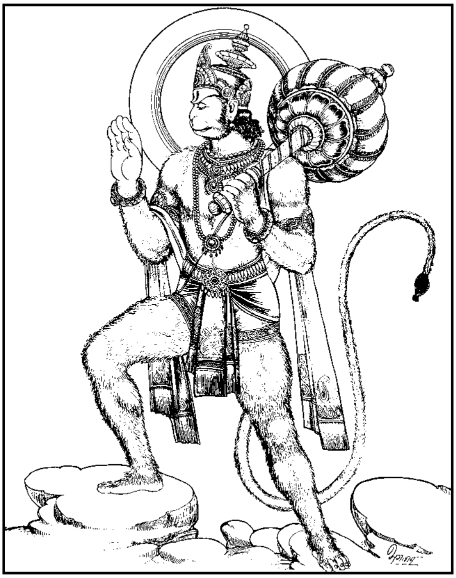
(महाभागवतपुराण ५०। १—३)

कस न दीनपर द्रवहु उमाबर। दारुन बिपति हरन करुनाकर॥
बेद-पुरान कहत उदार हर। हमरि बेर कस भयेहु कृपिनतर॥
कवनि भगति कीन्ही गुननिधि द्विज। होइ प्रसन्न दीन्हेहु सिव पद निज॥
जो गति अगम महामुनि गावहिं। तव पुर कीट पतंगहु पावहिं॥
देहु काम-रिपु! राम-चरन-रति। तुलसिदास प्रभु! हरहु भेद-मति॥

(विनय-पत्रिका)

रुद्रावतार श्रीहनुमान्

(श्रीवासुदेवजी त्रिपाठी 'हिन्दू')



महाबीर बिनवउँ हनुमाना। राम जासु जस आप बखाना॥
कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा॥

(रा०च०मा० १।१७।१०, ५।१६।८)

सृष्टिके संहारक भगवान् रुद्र ही अपने प्रिय श्रीहरिकी सेवाका पर्याप्त अवसर प्राप्त करने तथा कठिन कलिकालमें भक्तोंकी रक्षाकी इच्छासे ही पवनदेवके औरस पुत्र और वानरराज केसरीके क्षेत्रज पुत्र हनुमान्के रूपमें अवतरित हुए—

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस बानर भे हनुमान॥

(दोहावली १४२)

फिर उनके बल, बुद्धि, पराक्रम तथा भक्ति आदि गुणोंका पार पा ही कौन सकता है?

असीम बल एवं पराक्रमके निधान रुद्रावतार केसरीपुत्रने बाललीला करते हुए उदयकालीन सूर्यको फल समझकर भक्षण करनेके लिये शून्यमें छलाँग लगा दी, जिससे समस्त लोकोंमें हाहाकार मच गया तब देवराज इन्द्रने आवेशमें आकर वज्रसे इनपर प्रहार कर दिया, जिससे इनकी ठोढ़ी टेढ़ी हो गयी और ये बड़े वेगसे पृथ्वीपर गिरकर अचेत हो गये, जिससे कुपित होकर पवनदेवने सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें अपना संचरण रोककर त्राहि-त्राहि मचा दी।

तब पवनदेवको प्रसन्न करनेके लिये ब्रह्मादि समस्त देवोंने हनुमान्को समस्त दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंके प्रभावसे मुक्तकर इच्छामृत्युका वरदान दिया—

प्रसादिते च पवने ब्रह्मा तुभ्यं वरं ददौ।
अशस्त्रवध्यतां तात समरे सत्यविक्रम॥
वज्रस्य च निपातेन विरुजं त्वां समीक्ष्य च।
सहस्रनेत्रः प्रीतात्मा ददौ ते वरमुत्तमम्॥
स्वच्छन्दतश्च मरणं तव स्यादिति वै प्रभो।

(वा०रा० ४।६६।२७—२९)

तत्पश्चात् विद्याध्ययनके लिये कपिवर हनुमान्जीने सूर्यदेवको अपना गुरु मानकर जिस आश्चर्यपूर्ण तरीकेसे विद्याग्रहण किया, वह तो समस्त लोकोंको चकित कर देनेवाला है—

भानुसों पढ़न हनुमान गये भानु मन-
अनुमानि सिसुकेलि कियो फेर-फारसो।
पाछिले पगनि गम गगन मगन-मन,
क्रमको न भ्रम, कपि बालक-बिहार सो॥
कौतुक बिलोकि लोकपाल हरि हर बिधि,
लोचननि चकाचौंधी चित्तनि खभार सो।
बल कैधौं बीररस, धीरज कै, साहस कै,
तुलसी सरीर धरे सबनिको सार सो॥

(हनुमानबाहुक ४)

बल, बुद्धि, ओज, शौर्यादि गुणोंमें अप्रतिम पवनपुत्र हनुमान्जीका श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें जो प्रेम एवं भक्ति है, वह महर्षियोंके लिये भी अत्यल्प अंशमें ही गम्य है, अन्यत्र ऐसा उदाहरण असम्भव है। सुग्रीवके कार्यहेतु जब बुद्धिनिधान हनुमान्जी ब्राह्मणवेषमें श्रीरामके पास गये तो अत्यल्प समयमें अपने प्रभुको पहचानकर प्रेमरसमें डूबकर दास्यभावसे बोल पड़े—

मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं॥

(रा०च०मा० ४।२।८)

तदनन्तर भक्तिरसका पूर्ण आनन्द लेनेके लिये तथा अपने अवतारका यथेच्छ लाभ उठानेके लिये शङ्करावतार हनुमान्‌जी एक साधारण वानरकी भाँति अज्ञ बनकर भगवान्‌के चरणकमलोंमें गिर पड़े और अतिसंक्षिप्त शब्दोंसे ही उन्होंने पूरी बात कह दी—

सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें॥

(रा०च०मा० ४।३।४)

अपने प्रेमके वशीभूत कर उन्होंने भगवान् श्रीरामको नरलीला छोड़ अपना स्वरूप प्रकट करनेपर विवश कर दिया। हनुमान्‌जीके हृदयमें वह प्रेम देखकर जिसके वशमें वे सदा रहते हैं, प्रभु श्रीराम बोल ही पड़े—

सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना॥
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ॥

(रा०च०मा० ४।३।७-८)

इसी प्रकार समुद्र लाँघते समय मैनाकपर्वतद्वारा विश्रामकी प्रार्थना करनेपर हनुमान्‌जीने जो शब्द कहे, वे उनके कठोर सेवकत्वको भलीभाँति दर्शाते हैं—

हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥

(रा०च०मा० ५।१)

श्रीरामजीकी दास्यभक्तिके रसमें कपिवर हनुमान्‌जी इस तरह डूबे रहते हैं कि उन्हें अपने अस्तित्व, बल, स्वरूपका किञ्चित् भी बोध नहीं रहता; जैसा कि समुद्रतटपर वानरोंके विचार-मन्थनके समय द्रष्टव्य है और वे जब भी अपने स्वरूपके विषयमें सोचते तो केवल भगवान् श्रीरामके दासके रूपमें।

भगवद्भक्त विभीषणसे मिलनेपर उन्होंने अपना नाम बताकर शेष परिचय इस प्रकार दिया—

सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥
अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥

(रा०च०मा० ५।७।६—८, दो० ७)

उनकी प्रगाढ़ दास्यभक्तिके कारण स्वयं भगवान् श्रीराम हनुमान्‌जीके इस प्रकार कृतज्ञ हो गये कि स्वयंको उनका आजीवन ऋणी मान लिया—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥
सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत॥
बार बार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा॥
प्रभु कर पंकज कपि कें सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥

(रा०च०मा० ५।३२।५—७, दो० ३२, ३३।१-२)

और कुछ सावधान होनेपर शङ्करजीके मुखसे निकल ही पड़ा—

यत्पादपद्मयुगलं तुलसीदलाद्यैः
सम्पूज्य विष्णुपदवीमतुलां प्रयान्ति।
तेनैव किं पुनरसौ परिरब्धमूर्ती
रामेण वायुतनयः कृतपुण्यपुञ्जः॥

(अध्यात्मरा० ५।५।६४)

अर्थात् हे पार्वति! जिनके चरणारविन्दयुगलका तुलसीदल आदिसे पूजन कर भक्तजन अतुलनीय विष्णुपदको प्राप्त कर लेते हैं, उन्हीं श्रीरामने जिनके शरीरका आलिङ्गन किया, उन पवित्र कर्म करनेवाले पवनपुत्रके विषयमें क्या कहा जाय?

कपिकेसरीकी उपाधिसे विभूषित हनुमान्‌जी श्रीरामके भक्त तो हैं ही, साथ ही अतुलित बलके धाम भी हैं।

वाल्मीकिरामायण (किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग ६७)-में हनुमान्‌जीके उस स्वरूपका विस्तारके साथ बहुत प्रभावशाली चित्रण किया गया है, जिसका भाव इस प्रकार है—

जैसे पर्वतकी विस्तृत कन्दरामें सिंह अँगड़ाई लेता है, उसी प्रकार वायुदेवताके औरस पुत्रने उस समय अपने शरीरको अँगड़ाई ले-लेकर बढ़ाया। वे वानरोंके बीचसे उठकर खड़े हो गये। उनके सम्पूर्ण शरीरमें रोमाञ्च हो आया। इस अवस्थामें हनुमान्‌जीने बड़े-बूढ़े वानरोंको प्रणाम करके इस प्रकार कहा—

श्रेष्ठ वानरो! उदयाचलसे चलकर अपने तेजसे प्रज्वलित होते हुए सूर्यदेवको मैं अस्त होनेसे पहले ही छू सकता हूँ

और वहाँसे पृथ्वीपर आकर यहाँ पैर रखे बिना ही पुन: उनके पासतक बड़े भयंकर वेगसे जा सकता हूँ। समुद्रको लाँघते समय मेरा वही रूप प्रकट होगा, जो तीनों पगोंको बढ़ाते समय वामनरूपधारी भगवान् विष्णुका हुआ था। वज्रधारी इन्द्र अथवा स्वयम्भू ब्रह्माजीके हाथसे भी मैं बलपूर्वक अमृत छीनकर सहसा यहाँ ला सकता हूँ। समूची लङ्काको भी भूमिसे उखाड़कर हाथपर उठाये चल सकता हूँ—ऐसा मेरा विश्वास है।

अपने इस स्वरूपके साथ युद्ध करनेपर समस्त राक्षसोंके नाशमें हनुमान्‌जीको कितना समय लगता? किंतु रावण-कुम्भकर्णादि योद्धाओंको क्षणमात्रमें जीत सकनेकी सामर्थ्यसे युक्त होनेपर भी श्रीरामकी मर्यादामें बँधे हुए हनुमान्‌जीने उन्हें पूर्णरूपसे कहीं नहीं जीता, बल्कि कहीं-कहीं क्रोधमें आकर अपना लेशमात्र बल दिखलाया। वाल्मीकिरामायणमें कुम्भकर्णद्वारा सुग्रीवको काँखमें दबा लिये जानेपर महाबली हनुमान्‌जी सोचने लगे—

मेरे लिये जो भी करना उचित होगा, उसे मैं नि:संदेह करूँगा। पर्वताकार रूप धारण करके उस राक्षसका नाश कर डालूँगा। युद्धस्थलमें अपने मुक्कोंसे मार-मारकर महाबली कुम्भकर्णके शरीरको चूर-चूर कर दूँगा। इस प्रकार जब वह मेरे हाथसे मारा जायगा तथा वानरराज सुग्रीवको उसकी कैदसे छुड़ा लिया जायगा, तब सारे वानर हर्षसे खिल उठेंगे।

परंतु फिर हनुमान्‌जीने सोचा कि इसके बादमें सुग्रीव दु:खी होंगे एवं उनके यशका सदाके लिये नाश हो जायगा, अत: मैं एक मुहूर्ततक इनके छूटनेकी प्रतीक्षा देखता हूँ। इससे स्पष्ट है कि पवनपुत्र हनुमान्‌जी अपने स्वरूपको न सँभालकर सुग्रीव तथा राम-लक्ष्मणके यशकी रक्षाको ध्यानमें रखकर ही युद्ध करते रहे। वे ऐसा कोई भी पराक्रम प्रकट नहीं करना चाहते थे, जिससे प्रभु श्रीरामके यश-कीर्तिका क्षय हो। इसी कारणसे वे महाबलवान् कपिश्रेष्ठ रावणके साथ काफी समयतक जूझते रहे, उसके एवं कुम्भकर्णके प्रहारसे कुछ व्याकुल होनेकी उन्होंने लीला की, जिससे कि उनके प्रभुकी कीर्तिका विस्तार हो सके।

श्रीहरिकी प्रेममूर्तिरूप भगवान् शङ्करके अवतार हनुमान्‌जीके अतिरिक्त ऐसा कौन भक्त हो सकता है, जो अपरिमित शक्ति-सामर्थ्यका भण्डार होकर भी अपने प्रभुके कार्य एवं उनके सुयशके लिये स्वयंको बन्धनमें डालकर ऐसा कह सके कि—

मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥

(रा०च०मा० ५।२२।६)

देवताओंके लिये भी दुर्जय वानरोंमें हनुमान्‌जी उसी प्रकार श्रेष्ठ थे, जैसे गजराजोंमें सिंह। पवनपुत्रके अतिरिक्त कौन वानरवीर समुद्र लाँघने, लंकासे गृहसहित सुषेणको लाने तथा अत्यल्प समयमें ही संजीवनी लाकर लक्ष्मणको पुनर्जीवन देनेमें सक्षम था? जाम्बवान्‌ने समस्त वानरोंके दु:खी होनेपर हनुमान्‌जीसे जो वचन कहे, उससे उनकी श्रेष्ठताका बोध होता है।*

वानरजगत्‌के वीर! तथा सम्पूर्ण शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हनुमान्‌जी! तुम एकान्तमें आकर चुप क्यों बैठे हो? कुछ बोलते क्यों नहीं? हनूमन्! तुम तो वानरराज सुग्रीवके समान पराक्रमी हो तथा तेज एवं बलमें श्रीराम और लक्ष्मणके तुल्य हो। कश्यपजीके महाबली पुत्र और समस्त पक्षियोंमें श्रेष्ठ जो विनतानन्दन गरुड हैं, उन्हींके समान तुम भी विख्यात एवं तीव्रगामी हो। महाबली महाबाहु पक्षिराज गरुडको मैंने समुद्रमें कई बार देखा है, जो बड़े-बड़े सर्पोंको वहाँसे निकाल लाते हैं। उनके दोनों पंखोंमें जो बल है; वही बल, पराक्रम तुम्हारी इन दोनों भुजाओंमें भी है। इसीलिये तुम्हारा वेग एवं विक्रम भी उनसे कम नहीं है। वानरशिरोमणे! तुम्हारा बल, बुद्धि, तेज और धैर्य भी

* वीर वानरलोकस्य सर्वशास्त्रविदां वर। तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनूमन् किं न जल्पसि॥
हनूमन्हरिराजस्य सुग्रीवस्य समो ह्यसि। रामलक्ष्मणयोश्चापि तेजसा च बलेन च॥
अरिष्टनेमिन: पुत्रो वैनतेयो महाबल:। गरुत्मानिव विख्यात उत्तम: सर्वपक्षिणाम्॥
बहुशो हि मया दृष्ट: सागरे स महाबल:। भुजङ्गानुद्धरन् पक्षी महाबाहुर्महाबल:॥
पक्षयोर्यद् बलं तस्य भुजवीर्यबलं तव। विक्रमश्चापि वेगश्च न ते तेनापहीयते॥
बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्त्वं च हरिपुङ्गव। विशिष्टं सर्वभूतेषु किमात्मानं न सज्जसे॥ (वा०रा० ४।६६।२—७)

समस्त प्राणियोंसे बढ़कर है। फिर तुम अपने-आपको ही समुद्र लाँघनेके लिये क्यों नहीं तैयार करते?

कपिप्रवर वीरवर हनुमान्‌जी अपने बलके साथ विशाल बुद्धिविज्ञानके भी सागर हैं, जैसा कि तुलसीदासजीने कहा है—

जय हनुमान ज्ञान गुन सागर। जय कपीस तिहुँ लोक उजागर॥

वाल्मीकिरामायण (४।३।२८—३०)-में सुग्रीवके कार्यहेतु जब हनुमान्‌जी रामजीके पास जाते हैं, तब उनकी भाषा-शैली देखकर श्रीरामजी इतने प्रभावित हुए कि लक्ष्मणजीसे उनकी बड़ाई स्वयं अपने श्रीमुखसे करते हुए कहने लगे—

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किञ्चिदपशब्दितम्॥
न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा।
अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित्॥

अर्थात् जिसे ऋग्वेदकी शिक्षा नहीं मिली, जिसने यजुर्वेदका अभ्यास नहीं किया तथा जो सामवेदका विद्वान् नहीं, वह इस प्रकार सुन्दर भाषामें वार्तालाप नहीं कर सकता। निश्चय ही इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरणका कई बार स्वाध्याय किया है; क्योंकि बहुत-सी बातें बोल जानेपर भी इनके मुखसे कोई त्रुटि नहीं हुई। सम्भाषणके समय इनके मुख, नेत्र, ललाट, भौंहें तथा अन्य सभी अङ्गोंसे भी कोई दोष प्रकट हुआ हो, ऐसा कहीं ज्ञात नहीं हुआ।

एवंगुणगणैर्युक्ता यस्य स्युः कार्यसाधकाः।
तस्य सिद्ध्यन्ति सर्वेऽर्था दूतवाक्यप्रचोदिताः॥

(वा०रा० ४।३।३५)

अर्थात् जिसके कार्यसाधक दूत ऐसे उत्तम गुणोंसे युक्त हों, उस राजाके सभी मनोरथ दूतोंकी बातचीतसे ही सिद्ध हो जाते हैं।

अध्यात्मरामायण (४।१।१७—१८)-में भी ऐसा लिखा है—

श्रीरामो लक्ष्मणं प्राह पश्यैनं वटुरूपिणम्।
शब्दशास्त्रमशेषेण श्रुतं नूनमनेकधा॥
अनेन भाषितं कृत्स्नं न किञ्चिदपशब्दितम्।

अर्थात् तब श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे इस प्रकार कहा—लक्ष्मण! इस ब्रह्मचारीको देखो। अवश्य ही इसने सम्पूर्ण शब्दशास्त्र कई बार भलीभाँति पढ़ा है। देखो, इसने इतनी बातें कहीं, किंतु इसके बोलनेमें कहीं कोई एक भी अशुद्धि नहीं हुई।

इस प्रकार स्पष्ट है कि हनुमान्‌जीमें अनन्त बल, पराक्रमके साथ-साथ जो अनन्त बुद्धि, ज्ञान है, वह अलौकिक है।

इन गुणोंको धारण करनेवाले हनुमान्‌जी बालब्रह्मचारी रहकर आजीवन जिस ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते रहे, वह उच्च कोटिके तपोनिष्ठ योगियोंमें भी दुर्लभ है।

रावणके अन्तःपुरमें सीताजीकी खोज करते समय अस्त-व्यस्त स्थितिमें पड़ी हुई स्त्रियोंको देखकर हनुमान्‌जी विचार करने लगे कि—

इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति।

(वा०रा० ५।११।३८)

अर्थात् दूसरोंकी स्त्रियोंको इस अवस्थामें देखनेसे तो मेरे धर्मका ही लोप हो जायगा।

परंतु उन्होंने फिर विचार किया—

कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः।
न तु मे मनसा किंचिद् वैकृत्यमुपपद्यते॥
मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने।
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम्॥

(वा०रा० ५।११।४१-४२)

अर्थात् इसमें संदेह नहीं कि रावणकी स्त्रियाँ निःशङ्क सो रही थीं और उसी अवस्थामें मैंने उन्हें अच्छी तरह देखा तथापि मेरे मनमें कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ। सम्पूर्ण इन्द्रियोंको शुभ और अशुभ अवस्थाओंमें लगनेकी प्रेरणा देनेमें मन ही कारण है, किंतु मेरा मन पूर्णतः स्थिर है।

इतना महान् और अखण्ड ब्रह्मचर्य सुर, नर, नाग, गन्धर्व आदि कौन धारण कर सकता है? निश्चय ही हनुमान्‌जीमें बल, बुद्धि, ओज, ब्रह्मचर्य एवं भक्ति आदि समस्त गुणोंका जो महानतम सङ्गम विराजमान है, वह रुद्रावतारके अतिरिक्त और कोई नहीं धारण कर सकता है।

वाल्मीकीय रामायण (७। ३६। ४४)-में स्पष्ट कहा गया है—

पराक्रमोत्साहमतिप्रताप-
सौशील्यमाधुर्यनयानयैश्च ।
गाम्भीर्यचातुर्यसुवीर्यधैर्यै-
र्हनूमतः कोऽप्यधिकोऽस्ति लोके॥

अर्थात् संसारमें ऐसा कौन है जो पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीति-अनीतिके विवेक, गम्भीरता, चातुर्य, उत्तम बल और धैर्यमें हनुमान्‌जीसे बढ़कर हो।

अपने इन्हीं गुणोंके कारण भक्तराज हनुमान्‌जी श्रीरामजीके सर्वाधिक प्रिय रहे एवं अन्त समयतक अपने साथ रखनेके पश्चात् भगवान् श्रीरामने इन्हें धर्म एवं भक्तोंके रक्षार्थ सदेह पृथ्वीपर रुकनेके लिये कहा—

मत्कथाः प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर॥
तावद् रमस्व सुप्रीतो मद्वाक्यमनुपालयन्।

(वा०रा० ७। १०८। ३३-३४)

अर्थात् हरीश्वर! जबतक संसारमें मेरी कथाका प्रचलन रहे, तबतक तुम भी मेरी आज्ञाका पालन करते हुए प्रसन्नतापूर्वक विचरते रहो।

तभीसे रुद्रावतार हनुमान्‌जी सर्वव्यापक रूपसे पृथ्वीपर विराजमान रहते हुए भक्तोंका कल्याण करते हैं—

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं
तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं
मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

श्रीमद्भागवतमें वेदव्यासजीने बताया है कि किम्पुरुषवर्षमें रहते हुए श्रीहनुमान्‌जी अपने आराध्य श्रीरामके मन्त्रका जप करते हुए भक्तोंके कल्याणके लिये सदा ही तत्पर रहते हैं।

कलियुगमें आज भी पवनकुमारकी कृपासे अनेक भक्त सर्वस्वतन्त्र एवं निर्भीक रहते हैं। तन्त्रग्रन्थोंमें हनुमान्‌जीके पञ्चमुखी, सप्तमुखी एवं एकादशमुखी स्वरूपका भी वर्णन है तथा उसकी साधना-सामग्रीसे तन्त्रशास्त्रोंका एक बृहत् भाग भरा हुआ है।

हनुमान्‌जीकी कृपा होनेपर समस्त व्याधियोंसे छुटकारा प्राप्त होता है एवं असम्भव कार्य भी सुगम होते देखे जाते हैं। भयंकर-से-भयंकर तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र, भूत-प्रेतादि भी हनुमान्‌जीके आनके सम्मुख टिक नहीं पाते—

भूत पिसाच निकट नहिं आवै। महाबीर जब नाम सुनावै॥
दुर्गम काज जगत के जेते। सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते॥

इस कलियुगमें समस्त सिद्धियोंके दाता हनुमान्‌जी ही हैं। अपने भक्तोंके रक्षक हनुमान्‌जीकी शरण प्राप्त कर लेनेपर संसारकी कोई भी व्याधि तथा कर्मसिद्धान्तका जाल आड़े नहीं आता।

प्रलयकालमें जिनके कोपसे सम्पूर्ण सृष्टि नष्ट हो जाती है, जिनकी क्रोधाग्नि त्रैलोक्यको दग्ध कर देती है, ऐसे रुद्रके अवतार उन हनुमान्‌जीसे बढ़कर हो ही कौन सकता है?

जाके गति है हनुमानकी।
ताकी पैज पूजि आई, यह रेखा कुलिस पषानकी॥

× × ×

ताकिहै तमकि ताकी ओर को।
जाको है सब भाँति भरोसो कपि केसरी-किसोरको॥

(विनय-पत्रिका पद ३०-३१)

भगवान् मृत्युञ्जय

हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम्।
अङ्कन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलासकान्तं शिवं स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकुटं देवं त्रिनेत्रं भजे॥

त्र्यम्बकदेव अष्टभुज हैं। उनके एक हाथमें अक्षमाला और दूसरेमें मृगमुद्रा है, दो हाथोंसे दो कलशोंमें अमृतरस लेकर उससे अपने मस्तकको आप्लावित कर रहे हैं और दो हाथोंसे उन्हीं कलशोंको थामे हुए हैं। शेष दो हाथ उन्होंने अपने अङ्कपर रख छोड़े हैं और उनमें दो अमृतपूर्ण घट हैं। वे श्वेत पद्मपर विराजमान हैं, मुकुटपर बालचन्द्र सुशोभित है, मुखमण्डलपर तीन नेत्र शोभायमान हैं। ऐसे देवाधिदेव कैलासपति श्रीशंकरकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

श्रीहनुमदवतारमें सेवा, चरित्र और प्रेमका आदर्श

(पं० श्रीविष्णुदत्तरामचन्द्रजी दुबे)

श्रीहनुमान्‌जी रुद्रावतार हैं। गोस्वामीजीने दोहावली (दोहा १४२)-में लिखा है—

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस बानर भे हनुमान॥

अर्थात् चतुर लोग उसी शरीरका आदर करते हैं, जिस शरीरसे श्रीरामजीमें प्रेम होता है। इस प्रेमके कारण ही श्रीशंकरजी अपने रुद्रदेहको त्यागकर वानररूप हनुमान् बन गये।

चैत्र शुक्ल १५, मंगलवार शुभ मुहूर्तमें भगवान् शिव अपने अंश ग्यारहवें रुद्रसे माता अञ्जनीके गर्भसे पवनपुत्र हनुमान्‌के रूपमें इस धरापर अवतरित हुए। अञ्जनी केसरी नामक वानरकी पत्नी थीं। कुछ लोग इनका प्राकट्यकाल कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी और कुछ चैत्र शुक्ल पूर्णिमा मानते हैं। कल्पभेदसे एवं भक्तकी भावनासे सब सत्य है।

श्रीहनुमान्‌जी नवधा-भक्तिमें दास्यभक्तिके आचार्य माने जाते हैं। स्वामीकी आज्ञाका पालन कर उन्हें सुख पहुँचाना सेवकका परम धर्म है। उसीके आदर्श हैं श्रीहनुमान्‌जी।

कहते हैं साधनाके द्वारा सभी सिद्धियाँ इनके वशमें हैं तथा ये ***‘अष्ट सिद्धि नौ निधि के दाता’*** भी हैं। ये ज्ञानियोंमें अग्रगण्य तथा चारों वेदोंके ज्ञाता हैं।

हनुमान्‌जीकी माता परम तपस्विनी सद्‌गुणोंसे युक्त एवं सदाचारिणी थीं। दिनमें वे पूजनके पश्चात् एवं रात्रिमें शयनके पूर्व हनुमान्‌जीको पुराणोंकी कथाएँ एवं महापुरुषोंके चरित्र सुनातीं और बार-बार बालक हनुमान्‌जीसे पूछतीं। रामकथा सुनते-सुनते हनुमान्‌जी भावविभोर हो जाते और उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा बहने लगती। प्रभु श्रीरामका ध्यान करनेके लिये वे कभी अरण्य, पर्वतकी गुफा, नदी-तटपर चले जाते। ये बचपनमें ही सूर्यको निगल गये— ***‘बाल समय रबि भक्षि लियो।’***

हनुमान्‌जीके गुणोंके सम्बन्धमें श्रीराम महर्षि अगस्त्यजीसे कहते हैं—

शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम्।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः॥

(वा०रा० ७।३५।३)

शूरता, दक्षता, बल, धैर्य, बुद्धिमत्ता, नीति, पराक्रम तथा प्रभुत्व—इन सभी सद्‌गुणोंने श्रीहनुमान्‌जीके भीतर घर कर रखा है।

इसीका समर्थन करते हुए महर्षि अगस्त्य कहते हैं—संसारमें ऐसा कौन है जो पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीति-अनीतिके विवेक, गम्भीरता, चतुरता, उत्तम बल और धैर्यमें हनुमान्‌जीसे बढ़कर हो?

युद्धभूमिमें जब रामानुज लक्ष्मणको अमोघ शक्ति लगी तब हनुमान्‌जी लङ्कासे सुषेण वैद्यको उनके भवनसहित ले आये, पुनः उनकी आज्ञासे द्रोणपर्वतके सहित सञ्जीवनी बूटी ले आये जिसे सुँघानेसे लक्ष्मणजीकी मूर्च्छा दूर हुई। यह हनुमान्‌जीके अतुलित बलका द्योतक है।

रावणके कहनेसे अहिरावण श्रीराम-लक्ष्मणको लेकर देवीके सम्मुख बलि चढ़ानेके लिये पाताललोक चला गया, जब यह बात हनुमान्‌जीको ज्ञात हुई, वे उसी क्षण पातालमें पहुँचे और अहिरावणका वधकर राम-लक्ष्मणको लेकर वानर-भालुओंकी सभाके बीच उपस्थित हो गये। यह हनुमान्‌जीका अपने स्वामीके प्रति अनन्य प्रेम एवं कर्तव्यनिष्ठा थी।

समुद्र पारकर जब हनुमान्‌जीने लङ्कामें प्रवेश किया, उस समय अतिलघुरूप धारण कर अशोकवाटिकामें अशोकवृक्षके पत्तोंमें छिपकर जगज्जननी सीताजीके दर्शन किये और अपने इष्ट श्रीरामका सारा वृत्तान्त सुनाकर मुद्रिका उन्हें दी। सीताजीने भक्तप्रवर हनुमान्‌जीको अजर-अमर, गुणनिधान होने तथा प्रभुकी प्रसन्नताप्राप्तिके अनेक आशीर्वाद दिये। तत्पश्चात् बृहदाकार रूप धारण कर उन्होंने सारी सोनेकी लङ्का जलाकर भस्म कर दी, किंतु विभीषणके भवन एवं सीताजीपर आँचतक नहीं आयी।

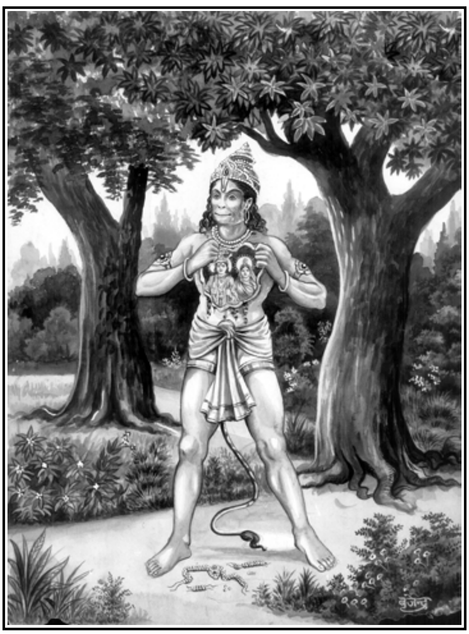
उन्होंने भगवान् श्रीराम एवं सुग्रीवकी प्रत्येक आज्ञाका पालन किया। श्रीरामकी सेवामें प्रधानरूपसे सहायता की और अनेक राक्षसोंका संहार किया।

श्रीरामके अभिषेकके लिये ये चारों समुद्रों और पाँच सौ नदियोंसे जल ले आये थे। यह इनकी असाधारण

शक्तिका द्योतक है।

लङ्काके राजमहलमें माँ सीताका अनुसन्धान करते हुए हनुमान्‌जीको अनेक सुषुप्त स्त्रियोंको देखना पड़ा, किंतु उनके मनमें किसी भी प्रकारका विकार नहीं आया।

एक समयकी बात है—माता जानकीजीने उपहाररूपमें बहुमूल्य मणियोंकी एक माला हनुमान्‌जीको दी। उसमें प्रभु रामकी मूर्ति दिखायी न देनेसे उन्होंने सब मणियोंको फोड़ दिया, इसपर विभीषणजीने पूछा—क्या आपकी विशाल कायामें भी प्रभुकी झाँकीके दर्शन होते हैं? तत्क्षण पवनपुत्र हनुमान्‌जीने अपने तीक्ष्ण नखोंसे वक्षःस्थलको विदीर्णकर वहाँ विराजित सीता-रामकी मूर्तिके दर्शन



सबको करा दिये। उनके रोम-रोमसे 'राम' नामकी ध्वनि हो रही थी। भगवान् रामने उनको हृदयसे लगा लिया और भगवान्‌के करस्पर्शसे उनका शरीर पूर्ववत् हो गया। हनुमान्‌जी प्रभुके अन्तरङ्ग पार्षद हैं।

जहाँ श्रीरघुनाथजीकी कथा होती है, वहाँ वे तत्क्षण उपस्थित हो जाते हैं। जीवमात्रको प्रभुके पादपद्मोंमें पहुँचाकर उनका कल्याण करनेके लिये वे आतुर रहते हैं। हनुमान्‌जीके वीर और दास—दोनों रूपोंकी उपासना होती है, विपत्तिनिवारणार्थ वीररूपकी और सुख-शान्तिप्राप्त्यर्थ दासरूपकी। उनकी उपासनासे सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। वे दुःखी आर्तकी पुकार सुनकर उसका दुःख दूर कर देते हैं। वे चाहते हैं कि प्राणी आधि-व्याधि, दुःख-दारिद्र्यसे मुक्ति प्राप्तकर प्रभुके चरणकमलोंका चञ्चरीक बने। अपने आराध्य श्रीरघुनाथजीकी विशुद्ध प्रीति, उनके मङ्गलमय नामोंका कीर्तन और उनकी लीलाका श्रवण—इसके अतिरिक्त इन्हें दूसरा कुछ अभीष्ट नहीं। श्रीहनुमान्‌जीका निश्चित सिद्धान्त है कि जीव चाहे बैठा हो, खड़ा हो, लेटा हो—जिस किसी भी दशामें हो, श्रीराम-नामका स्मरण करके वह भगवान्‌के परमपदको प्राप्त हो जाता है। राम-नामकी महिमा देखिये—

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥

आत्मकल्याणके लिये, प्रभुप्राप्तिके लिये जो उनका आश्रय ग्रहण करते हैं, उन्हें उनकी कृपासे अपने अभीष्टकी यथाशीघ्र प्राप्ति हो जाती है। उनके हृदयमें भगवान् श्रीराम नित्य रमणशील हैं। रामायणपाठ, सुन्दरकाण्डपाठ, हनुमानचालीसा-पाठसे हनुमान्‌जी प्रसन्न रहते हैं। हनुमान्‌जी सदाचार, धर्मपालन, ब्रह्मचर्यपालन, संतसेवा, भक्त-भगवान्‌के प्रति श्रद्धा-विश्वास और प्रीतिसे प्रसन्न होकर उनपर कृपा करते हैं।

श्रीरामजीके द्वारपर श्रीहनुमान्‌जी सतत विराजमान रहते हैं और बिना उनकी आज्ञाके कोई रामजीकी ड्योढ़ीमें प्रवेश नहीं कर सकता, अतः प्रभु श्रीरामके दर्शनाभिलाषीको सर्वप्रथम श्रीहनुमान्‌जीकी कृपा प्राप्त करना आवश्यक है। ***'राम दुआरे तुम रखवारे। होत न आज्ञा बिनु पैसारे॥'*** इसी प्रकार सीतामाताकी कृपाके बिना श्रीरामरूपका दर्शन होना सम्भव नहीं। अतः श्रीरामजीके साक्षात्कार करनेके लिये माँ जानकी एवं श्रीहनुमान्‌जीकी उपासना सोपानस्वरूप है।

श्रीहनुमान्‌जी श्रीरामजीके अङ्ग बतलाये गये हैं। इसलिये हनुमान्‌जीकी पूजा किये बिना श्रीरामजीकी पूजा पूर्ण फलदायी नहीं होती।

आजके समयमें बालब्रह्मचारी श्रीहनुमान्‌जीकी उपासना परमावश्यक है; क्योंकि उनके चरित्रसे ब्रह्मचर्यव्रतधारणकी, स्वामिभक्तिकी, बलबुद्धिके विकासकी तथा अपने इष्ट भगवान् श्रीरामके प्रति निष्काम भक्तिकी शिक्षा प्राप्त होती है। विशेषकर बालकों, विद्यार्थियों, युवकों तथा जो सन्मार्ग-सदाचारसे भटक गये हों, उनके लिये हनुमान्‌जीकी उपासना परमावश्यक है। भूत-प्रेत, पिशाच, राक्षस आदि उनके नामोच्चारणमात्रसे

ही भाग जाते हैं। *'भूत पिसाच निकट नहि आवै। महाबीर जब नाम सुनावै॥'* भयंकर विष तथा व्याधि, भय या गृहसंकटके अवसरपर हनुमद्विग्रहके सम्मुख दीपदानका विधान है। उनके स्मरणमात्रसे अनेक रोगोंका प्रशमन होता है। व्याधिनाशके लिये तथा दुष्ट ग्रहोंकी दृष्टिसे रक्षाके लिये चौराहेपर भी दीपदानकी परम्परा है।

जो सदा स्नेहपूर्वक श्रीरामनाम जप करते हैं उनके ऊपर हनुमान्‌जी विशेष कृपा करते हैं। उनके लिये वे कल्पवृक्ष बनकर उनके सभी मनोरथोंको सफल करते रहते हैं। उन्होंने स्वयं कहा है—

ये जपन्ति सदा स्नेहान्नाम माङ्गल्यकारणम्।
श्रीमतो रामचन्द्रस्य कृपालोर्मम स्वामिनः॥
तेषामर्थे सदा विप्रा प्रदाताहं प्रयत्नतः।
ददामि वाञ्छितं नित्यं सर्वदा सौख्यमुत्तमम्॥

विप्रवर! जो मानव मेरे स्वामी दयासागर श्रीमान् रामचन्द्रजीके मङ्गलकारी नामका प्रेमपूर्वक सदा जप करते हैं, उनके लिये मैं सदा प्रयत्नपूर्वक प्रदाता बना रहता हूँ। मैं नित्य उनकी अभिलाषापूर्ति करते हुए उन्हें उत्तम सुख देता रहता हूँ। इस प्रकार श्रीहनुमान्‌जी स्वयं तो नाम-कीर्तनमें सदा निरत रहते ही हैं, अन्य कीर्तन-प्रेमियोंकी भी सदा सहायता करते रहते हैं।

हनुमान्‌जीके निम्नलिखित बारह नामोंका जो रात्रिमें सोनेके समय या प्रातःकाल उठनेपर अथवा यात्रारम्भके समय पाठ करता है, उस व्यक्तिके समस्त भय दूर हो जाते हैं, वह व्यक्ति युद्धके मैदानमें, राजदरबारमें या भीषण संकटमें—जहाँ कहीं भी हो, उसे कोई भय नहीं होता। इसलिये हनुमान्‌जीको संकटमोचन कहा जाता है।

हनुमानञ्जनीसूनुर्वायुपुत्रो महाबलः।
रामेष्टः फाल्गुनसखः पिङ्गाक्षोऽमितविक्रमः॥
उदधिक्रमणश्चैव सीताशोकविनाशनः।
लक्ष्मणप्राणदाता च दशग्रीवस्य दर्पहा॥

(आनन्दरामायण ८।१३।८-९)

किम्पुरुषवर्ष एवं साकेतमें इनका नित्य निवास है।

प्रभु श्रीरामकी आज्ञासे पुष्पकविमान जब काञ्चनगिरिपर हनुमान्‌जीकी माँ अञ्जनीके दर्शनार्थ उतरा, सभीने अञ्जनीके चरणोंमें प्रणाम किया। माता अञ्जनीको अपने भाग्यपर गर्व हुआ कि जगदीश्वर प्रभु श्रीराम और जगदम्बा सीता माँको मेरा पुत्र हनुमान् मेरे द्वारपर ले आया, मैं ही यथार्थ पुत्रवती हूँ। फिर उन्होंने हनुमान्‌जीसे कहा—बेटा, कहते हैं कि पुत्र मातासे कभी उऋण नहीं हो पाता, किंतु तू मुझसे उऋण हो गया, तूने अपना जीवन और जन्म सफल कर लिया।

प्रत्येक मंगलवार और शनिवारको श्रीहनुमान्‌जीके दर्शन करने तथा हनुमानचालीसाका पाठ करनेसे साधकका परम कल्याण होता है। श्रीहनुमान्‌जीको शुद्ध घृतमिश्रित सिन्दूरके अनुलेपनकी और चोला चढ़ानेकी परम्परा है। रामभक्त श्रीपवनकुमारको प्रणाम है—

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यानघन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥

भगवान् शिवके 'कृष्णदर्शन' अवतारकी कथा

महाराज नभग श्राद्धदेव मनुके पुत्र और परम वैष्णव राजर्षि अम्बरीषके पितामह थे। ये बड़े विद्वान् और जितेन्द्रिय थे। इन्हीं महाराज नभगको सनातन ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान देनेके लिये भगवान् सदाशिवने 'कृष्णदर्शन' नामक अवतार लिया। यह कथा शिवपुराणमें प्राप्त होती है, जो इस प्रकार है—

नभग जब विद्याध्ययन करते हुए गुरुकुलमें निवास कर रहे थे, तब इक्ष्वाकु आदि उनके भाइयोंने उन्हें नैष्ठिक ब्रह्मचारी मानकर उनको पैतृक सम्पत्तिमें भाग न देकर समस्त सम्पत्ति आपसमें बाँट ली और अपना-अपना भाग लेकर वे उत्तम रीतिसे राज्य करने लगे। गुरुकुलसे वेदोंका साङ्गोपाङ्ग अध्ययन करके वापस लौटनेपर नभगने भाइयोंसे अपना हिस्सा माँगा तो भाइयोंने कहा कि बँटवारेके समय हम तुम्हारा हिस्सा लगाना भूल गये हैं, अतः तुम पिताजीको ही अपने हिस्सेमें ले लो।

नभगने हिस्सेके विषयमें भाइयोंद्वारा कही बात पितासे कही तो श्राद्धदेव मनुने कहा—'बेटा! भाइयोंने तुम्हें यह बात ठगनेके लिये कही है, मैं तुम्हारे लिये भोगसाधक उत्तम दाय नहीं बन सकता, तथापि मैं तुम्हारी जीविकाका एक उपाय बताता हूँ, सुनो। इस समय

आङ्गिरस गोत्रीय ब्राह्मण एक बहुत बड़ा यज्ञ कर रहे हैं, उस कर्ममें प्रत्येक छठे दिनका कार्य वे ठीक-ठीक नहीं समझ पाते—उसमें उनसे भूल हो जाती है। तुम वहाँ जाओ और उन ब्राह्मणोंको विश्वेदेवसम्बन्धी दो सूक्त बतला दिया करो, इससे वह यज्ञ शुद्धरूपसे सम्पादित होगा। वह यज्ञ समाप्त होनेपर वे ब्राह्मण जब स्वर्गको जाने लगेंगे, उस समय संतुष्ट होकर अपने यज्ञसे बचा हुआ सारा धन तुम्हें दे देंगे।'

पिताके कथनानुसार नभगने यज्ञमें जाकर विश्वेदेवसम्बन्धी दोनों सूक्तोंका शुद्ध-शुद्ध उच्चारण किया। यज्ञकर्म समाप्त होनेपर आङ्गिरस ब्राह्मण यज्ञसे बचा हुआ अपना-अपना सारा धन नभगको देकर स्वर्ग चले गये। परंतु उस यज्ञावशिष्ट धनको जब नभग ग्रहण करने लगे, तब उसी समय भगवान् सदाशिव वहाँ 'कृष्णदर्शन' रूपसे प्रकट हो गये। उनके सारे अंग बहुत सुन्दर, परंतु नेत्र कृष्णवर्ण के थे। उन्होंने नभगसे पूछा—'तुम कौन हो, इस धनको क्यों ले रहे हो? यह तो मेरी सम्पत्ति है।'

नभगने कहा—यह तो यज्ञसे बचा हुआ धन है, इसे ऋषिगण मुझे देकर स्वर्ग चले गये हैं। इसे लेनेसे आप मुझे क्यों रोक रहे हैं? इसपर कृष्णदर्शनने कहा—'तात! हम दोनोंके इस झगड़ेमें तुम्हारे पिता ही निर्णायक होंगे, वे जैसा कहें, वैसा ही करना चाहिये।'

नभगने कृष्णदर्शनकी बात अपने पितासे कही, इसपर श्राद्धदेव मनुने भगवान् सदाशिवके चरणकमलोंका ध्यान किया और पुत्र नभगको समझाते हुए कहा—'तात! वे पुरुष जो तुम्हें धन लेनेसे रोक रहे हैं, वे कोई और नहीं बल्कि स्वयं भगवान् सदाशिव ही हैं। वैसे तो संसारकी समस्त सम्पत्ति उन्हीं परमात्मा की है, परंतु यज्ञावशिष्ट धनपर उनका विशेष अधिकार है। अतः तुम्हें उनके पास जाकर अपने द्वारा हुए अपराधके लिये उनसे क्षमा माँगनी चाहिये।'

पिताकी बात सुनकर नभग कृष्णदर्शन भगवान् शिवके पास वापस आये और उनसे अनजानेमें हुए अपराधके लिये क्षमा माँगी। उनके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया तथा सुन्दर स्तुतियोंसे उनका स्तवन किया। लीलाधारी भगवान्‌ने प्रसन्न होकर नभगपर कृपादृष्टि डाली और मुस्कराते हुए कहा—'नभग! तुम्हारे पिताने धर्मानुकूल निर्णय दिया है और तुमने भी साधु-स्वभावके कारण सत्य ही कहा है, अतः मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। यह सारा धन मैं तुम्हें देता हूँ, साथ ही तुम्हें सनातन ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान भी प्रदान करता हूँ। तुम इस लोकमें निर्विकार रहकर सुख भोगो, अन्तमें तुम्हें मेरी कृपासे सद्गति प्राप्त होगी।' ऐसा कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये।

इस प्रकार यह भगवान् सदाशिवके 'कृष्णदर्शन' नामक अवतारकी कथा है, जो सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाली है।* **(शिवपुराण)**

भगवान् शिवका किरातावतार

भगवान् शिव निर्गुण, निराकार, निरंजन, परब्रह्म परमात्मा हैं फिर भी भक्तोंके कल्याणके लिये अवतार लेकर विभिन्न प्रकारकी लीलाएँ करते हैं। उन्होंने अपने भक्त राजा सत्यरथके नवजात शिशुकी रक्षाके लिये **भिक्षु**का अवतार लिया तो धौम्यके बड़े भाई उपमन्युका हित-साधन करनेके लिये **सुरेश्वरावतार** धारण किया। पार्वतीके विवाह-प्रसङ्गमें उन्होंने **जटिल, नर्तक** तथा **द्विज** अवतार धारण किये। द्वापरमें **अश्वत्थामा** उनका अंशावतार हुआ, जो द्रोणाचार्यका पुत्र और महाभारतका विशिष्ट पात्र है। महाभारतकी ही एक अन्य घटनामें उनका **किरातावतार** हुआ, जिसमें उन्होंने अपने भक्त नरश्रेष्ठ अर्जुनकी 'मूक' नामक दैत्यसे रक्षा की और उनसे युद्ध-लीलामें प्रसन्न होकर अपना अमोघ पाशुपतास्त्र प्रदान किया। भगवान्‌के इस अवतारकी पावन कथा इस

* यह कथा किञ्चित् अन्तरके साथ श्रीमद्भागवतमें भी प्राप्त होती है।

प्रकार है—

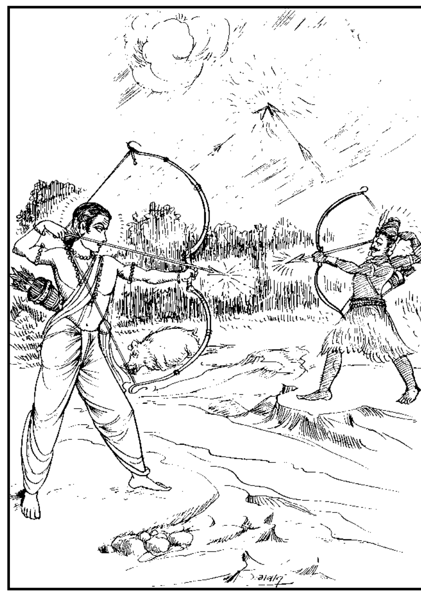
पाण्डवोंके वनवास-कालकी बात है। अर्जुन शस्त्रास्त्रोंकी प्राप्तिके लिये इन्द्रकीलपर्वतपर भगवान् शंकरकी तपस्या कर रहे थे। वे भगवान् सदाशिवके पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करते हुए तपमें सन्नद्ध थे। उनकी घोर तपस्या तथा अपना हितकारी उद्देश्य देखकर देवताओंने भगवान् शंकरसे उन्हें वर देनेकी प्रार्थना की। उधर जब दुर्योधनको अर्जुनकी तपस्याकी बात ज्ञात हुई, तो उस दुरात्माने मूक नामक एक मायावी राक्षसको उनका वध करनेके लिये भेजा।

वह दुष्ट असुर शूकरका वेश धारण कर अर्जुनके समीप पहुँचा और वहाँके पर्वतशिखरों और वृक्षोंको ढहाने लगा। उसकी भयंकर गुर्राहटसे दसों दिशाएँ गूँज रही थीं। यह देखकर भक्तहितकारी भगवान् शंकर किरातवेश धारणकर प्रकट हुए।

शूकरको अपनी ओर आते देखकर अर्जुनने उसपर शर-संधान किया, ठीक उसी समय किरातवेशधारी भगवान् शंकरने भी अपने भक्त अर्जुनकी रक्षाहेतु उस शूकररूपधारी दानव मूकपर अपना बाण चलाया। दोनों बाण एक ही साथ उस शूकरके शरीरमें प्रविष्ट हो गये और वह वहीं गिरकर मर गया। उसे मारकर अर्जुनने अपने आराध्य भगवान् शंकरका ध्यान किया और अपने बाणको उठानेके लिये उस शूकरके पास पहुँचे। इतनेमें ही किरातवेशधारी शिवका एक गण भी वनेचरके रूपमें बाण लेनेके लिये आ पहुँचा और अर्जुनको बाण उठानेसे रोककर कहने लगा कि यह मेरे स्वामीका बाण है, जिसे उन्होंने तुम्हारी रक्षाके लिये चलाया था, परंतु तुम तो इतने कृतघ्न हो कि उपकार माननेकी बजाय उनके बाणको ही चुराये ले रहे हो। यदि तुझे बाणकी ही आवश्यकता है तो मेरे स्वामीसे माँग ले, वे ऐसे बहुतसे बाण तुझे दे सकते हैं।

अर्जुनने कहा—यह मेरा बाण है, इसपर मेरा नाम अंकित है। इस बाणको मैं तुझे ले जाने देकर अपने कुलकी कीर्तिमें दाग नहीं लगवा सकता। भगवान् शंकरकी कृपासे मैं स्वयं अपनी रक्षा करनेमें समर्थ हूँ। अगर तेरे स्वामीमें बल है तो वे आकर मुझसे युद्ध करें।

दूतने अर्जुनकी कही हुई सारी बातें जाकर अपने स्वामीसे विशेषरूपसे निवेदन कर दीं, जिसे सुनकर किरातवेशधारी भगवान् शिव अपने भीलरूपी गणोंकी महान् सेना लेकर अर्जुनके सम्मुख आ गये। उन्हें आया हुआ देखकर अर्जुनने भगवान् शिवका ध्यानकर अत्यन्त



भीषण संग्राम छेड़ दिया। उस घोर युद्धमें अर्जुनने शिवजीका ध्यान किया, जिससे उनका बल बढ़ गया। तदनन्तर उन्होंने किरातवेशधारी शिवके दोनों पैर पकड़कर उन्हें घुमाना शुरू कर दिया। लीलास्वरूपधारी लीलामय भगवान् शिव भक्तपराधीन होनेके कारण हँसते रहे। तत्पश्चात् उन्होंने अपना वह सौम्य एवं अद्भुत रूप प्रकट किया, जिसका अर्जुन चिन्तन करते थे।

किरातके उस सुन्दर रूपको देखकर अर्जुनको महान् विस्मय हुआ। वे लज्जित होकर पश्चात्ताप करने लगे। उन्होंने मस्तक झुकाकर भगवान् शिवको प्रणाम किया और खिन्नमन हो अपनेको धिक्कारने लगे। उन्हें पश्चात्ताप करते देखकर भक्तवत्सल भगवान् महेश्वरका चित्त प्रसन्न हो गया। उन्होंने कहा—पार्थ! तुम तो मेरे परम भक्त हो, यह तो मैंने तुम्हारी परीक्षा लेनेके लिये ऐसी लीला रची थी। उन्होंने प्रेमपूर्वक अर्जुनका

आलिङ्गन किया और बोले—हे पाण्डवश्रेष्ठ! मैं तुमसे परम प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगो।

यह सुनकर प्रसन्नमन अर्जुनने अपने आराध्य भगवान् शिवकी वेदसम्मत स्तुति की और भगवान् शिवके पुन: 'वर माँगो' कहनेपर नतमस्तक हो उन्हें प्रणाम किया और प्रेमपूर्वक गद्गद वाणीमें कहा—हे विभो! मेरे संकट तो आपके दर्शनसे ही दूर हो गये हैं, अब जिस प्रकार मुझे परासिद्धि प्राप्त हो सके, वैसी कृपा कीजिये।

पाण्डुपुत्र अर्जुनमें अपनी अनन्य भक्ति देखकर भगवान् महेश्वरने उन्हें अपना पाशुपत नामक महान् अस्त्र प्रदान किया और समस्त शत्रुओंपर विजय-लाभ पानेका आशीर्वाद दिया।

इस प्रकार लीलामय परम कौतुकी भगवान् शंकरके किरातावतारकी यह कथा है, जो सुनने अथवा सुनानेसे समस्त मनोकामनाओंकी पूर्ति करनेवाली है। **(शिवपुराण)**

भगवान् शिवके अवधूतेश्वरावतारकी कथा

परब्रह्म परमात्मा भगवान् शिव गर्वापहारी हैं। उनका अवधूतेश्वरावतार देवराज इन्द्रके गर्वापहरणके लिये हुआ। इस दिव्य अवतारकी कथा पापोंका निवारण करनेवाली; यश, स्वर्ग, भोग, मोक्ष तथा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको प्राप्त करानेवाली है, यह पुण्य कथा शिवपुराणमें प्राप्त है, जो इस प्रकार है—

पूर्वकालकी बात है, एक बार देवराज इन्द्र सम्पूर्ण देवताओं और बृहस्पतिजीको लेकर कैलासपर्वतपर गये। उस समय इन्द्रके मनमें अपने ऐश्वर्य और अधिकारका अहङ्कार था। भगवान् शिव तो अन्तर्यामी हैं, उन परमात्मासे इन्द्रका अहङ्कार छिपा न रहा। अत: उन्होंने इन्द्रके कल्याणके लिये अवधूतका स्वरूप धारण किया और उनके रास्तेमें खड़े हो गये। इन्द्रने उन अवधूतरूपधारी सदाशिवसे पूछा—'तुम कौन हो? भगवान् शिव अपने स्थानपर हैं या कहीं अन्यत्र गये हैं?' परंतु बार-बार पूछनेपर भी शिवजीने इन्द्रको कोई उत्तर न दिया। इस प्रकार उस दिगम्बर अवधूतद्वारा अपनी अवहेलना होते देख इन्द्र क्रोधित हो गये और उन अवधूतरूपधारी सदाशिवको फटकारते हुए बोले—'अरे मूढ़! दुर्मते! तू बार-बार पूछनेपर भी उत्तर नहीं देता, अत: मैं तुझपर वज्र-प्रहार करता हूँ। देखता हूँ, तुझे कौन बचाता है।'

इन्द्रको वज्र-प्रहारहेतु उद्यत देखकर भगवान् शिवने उन्हें वज्रसहित स्तम्भित कर दिया, फिर तो इन्द्रकी बाँह ही अकड़ गयी और वे मन्त्रसे अभिमन्त्रित सर्पकी भाँति क्रोधसे जलने लगे।

उधर उन अवधूतेश्वरस्वरूप भगवान् शिवके ललाटसे एक तेज निकला। उस प्रज्वलित तेजको इन्द्रकी ओर बढ़ते देखकर देवगुरु बृहस्पतिने यह समझ लिया कि ये और कोई नहीं; अवधूतरूपधारी साक्षात् परमात्मा भगवान् शिव ही हैं, तो उन्होंने भगवान् शिवकी स्तुति की और इन्द्रको उनके शरणागत कर दिया तथा उस प्रज्वलित तेजसे उनकी रक्षा करनेकी प्रार्थना की।

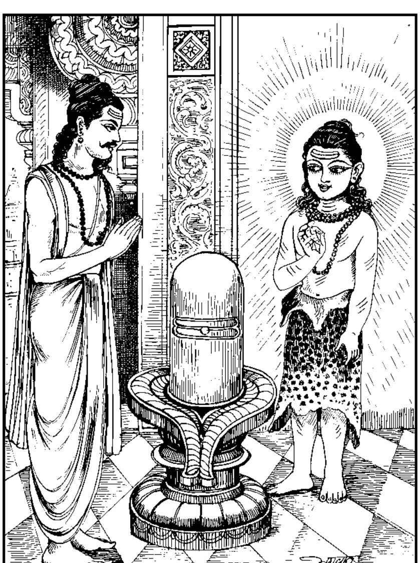
भगवान् शिवने प्रसन्न होकर हँसते हुए कहा—देवगुरो! रोषवश निकली इस अग्निको मैं पुन: कैसे धारण कर सकता हूँ, कहीं सर्प अपनी छोड़ी हुई केंचुल पुन: धारण करता है? फिर भी मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुमने इन्द्रको जीवनदान दिलाया, अत: आजसे तुम्हारा नाम 'जीव' प्रसिद्ध होगा। मेरे ललाटवर्ती नेत्रसे निकली इस अग्निको देवता सह नहीं सकते, अत: मैं इनके कल्याणके लिये इसे अन्यत्र प्रक्षिप्त करता हूँ—यह कहकर अवधूतवेशधारी भगवान् शंकरने उस भयंकर तेजको क्षार-समुद्रमें फेंक दिया, वहाँ गिरते ही वह तत्काल एक बालकके रूपमें परिणत हो गया, जो सिन्धुपुत्र जलंधरके नामसे विख्यात हुआ।

इस प्रकार अवधूतेश्वरावतार धारणकर इन्द्रके गर्वका भञ्जन करके लीलावपुधारी भगवान् सदाशिव अन्तर्धान हो गये।

भगवान् शंकरके 'गृहपति' नामक अग्न्यवतारकी कथा

पूर्वकालकी बात है, नर्मदाके रमणीय तटपर अवस्थित नर्मपुर नामक नगरमें विश्वानर नामक एक जितेन्द्रिय, पुण्यात्मा और शिवभक्त ब्राह्मण निवास करते थे। एक दिन उनकी पतिव्रता भार्याने उनसे महेश्वर-सदृश पुत्रकी याचना की। पत्नीकी इच्छाको भगवान् शिवकी प्रेरणा मानकर वे ब्राह्मणश्रेष्ठ विश्वानर उसे आश्वासन देकर अपने आराध्य भगवान् विश्वनाथकी नगरी काशीपुरीके लिये चल दिये। वहाँ पहुँचकर वे वीरेश लिङ्गकी त्रिकाल अर्चना करते हुए तप करने लगे। इस प्रकार एक वर्ष व्यतीत होनेपर एक दिन वे जब गङ्गाजीसे स्नानकर वापस आये तो उन्हें उस वीरेश लिङ्गके समीपमें एक अष्टवर्षीय बालक दिखायी दिया। उसके शरीरपर भस्म लगी हुई थी तथा सिरपर पीले रंगकी सुन्दर जटा थी। वह लीलापूर्वक हँसता हुआ श्रुति-सूक्तोंका पाठ कर रहा था। उसे देखकर विश्वानरके हृदयमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने उसे साक्षात् परमेश्वर शिव जानकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया और उसकी स्तुति की।

तब बालरूपधारी शिवने कहा—हे विप्रश्रेष्ठ विश्वानर! मैं तुम्हारी तपस्यासे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम अपना अभिलषित वर माँग लो।



विश्वानरने कहा—हे महेशान! आप अन्तर्यामी हैं, अतः मेरे हृदयकी अभिलाषा जानते हुए आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिये। पावनव्रती विश्वानरकी यह बात सुनकर बालरूपधारी महादेवने हँसते हुए कहा—हे शुचे! मैं तुम्हारी पत्नी शुचिष्मतीके गर्भसे तुम्हारे पुत्रके रूपमें प्रकट होऊँगा, मेरा नाम 'गृहपति' होगा—

तव पुत्रत्वमेष्यामि शुचिष्मत्यां महामते।
ख्यातो गृहपतिर्नाम्ना शुचिस्सर्वामरप्रियः॥

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता १३। ५७)

तदनन्तर तारागणोंके अनुकूल होनेपर, जब बृहस्पति केन्द्रवर्ती हुए और शुभ ग्रहोंका योग आया, तब शुभ लग्नमें भगवान् शंकर शुचिष्मतीके गर्भसे विश्वानरके पुत्रके रूपमें प्रकट हुए। भगवान् शिवके इस अवतारकी बात जानकर ब्रह्माजीसहित सभी देवगण उनका दर्शन करने आये। ब्रह्माजीने उनका 'गृहपति' नामकरण करते हुए चारों वेदोंके आशीर्वादात्मक मन्त्रोंसे अभिनन्दन कर सबके साथ प्रस्थान किया।

विश्वानरने समय-समयपर बालक गृहपतिके सभी संस्कार सम्पन्न कराकर वेदाध्ययन कराया। जब गृहपति नौ वर्षके हुए तो एक दिन देवर्षि नारद उन गृहपतिरूपधारी परमेश्वरका दर्शन करने आये। गृहपतिने माता-पितासहित नारदजीको प्रणाम किया। नारदजीने बालक गृहपतिकी हस्तरेखा और लक्षणोंको देखकर कहा—'विश्वानर! तुम्हारा यह पुत्र सर्वगुणसम्पन्न, समस्त शुभ लक्षणोंसे समन्वित है, परंतु इसके बारहवें वर्षमें इसे अग्नि और विद्युत्से भय है।' यों कहकर नारदजी जैसे आये थे, वैसे ही देवलोकको चले गये।

नारदजीका कथन सुनकर विश्वानर-दम्पतीपर मानो वज्रपात हो गया। वे शोकसे मूर्च्छित हो गये। तब माता-पिताको इस प्रकार शोकग्रस्त देखकर भगवान् शंकरका अंशावतार वह बालक गृहपति बोला—आपलोग क्यों चिन्तित हैं? मैं भगवान् मृत्युञ्जयकी आराधना करके कालको भी जीत लूँगा, फिर मृत्यु क्या चीज है!

गृहपतिके ऐसे वचन सुनकर शोकसंतप्त द्विज-दम्पतीको राहत मिली। उन्होंने कहा—बेटा! तू उन शिवकी

शरणमें जा, जो ब्रह्मा आदिके भी कर्ता और विश्वकी रक्षा करनेवाले हैं।

माता-पिताकी आज्ञा पाकर गृहपतिने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। उन्हें बहुत तरहसे आश्वासन देकर वे काशीपुरी चले आये और शिवलिङ्गकी स्थापना कर उसे १०८ कलशोंके जलसे अभिषिक्तकर नियमपूर्वक पूजन-अर्चनमें संलग्न हो गये। जब जन्मसे बारहवाँ वर्ष आया तो वज्रधारी इन्द्र उनके पास पधारे और उनसे वर माँगनेको कहा। इसपर गृहपतिने कहा कि मैं भगवान् शिवके अतिरिक्त अन्य किसी देवसे प्रार्थना नहीं करना चाहता।

गृहपतिकी बात सुनकर इन्द्र क्रोधसे लाल हो गये, उन्होंने अपना भयङ्कर वज्र उठाया। विद्युत्-ज्वालाओंसे व्याप्त वज्रको देखकर गृहपति भयसे व्याकुल हो गये। उसे भयभीत होते देखकर गिरिजासहित भगवान् शंकर प्रकट हो गये। उन्होंने कहा—वत्स! तुम भयभीत न हो, मेरे भक्तपर इन्द्र या वज्र कोई प्रभाव नहीं डाल सकता। मैंने ही इन्द्रका रूप धारणकर तुम्हारी परीक्षा ली थी। मैं तुम्हें वर देता हूँ—आजसे तुम अग्निपदके भागी होगे। तुम समस्त प्राणियोंके अन्दर जठराग्निरूपसे विचरण करोगे। तुम्हारेद्वारा स्थापित यह शिवलिङ्ग 'अग्नीश्वर' नामसे प्रसिद्ध होगा।

इस प्रकार परमात्मा भगवान् शंकरका गृहपति नामक अग्न्यवतार हुआ, जो दुष्टोंको पीड़ित करनेवाला है—

इत्थमग्न्यवतारस्ते वर्णितो मे जनार्दनः।
नाम्ना गृहपतिस्तात शङ्करस्य परात्मनः॥

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता १५।५८)

भगवान् शिवके सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर और ईशान अवतार

वन्दे महानन्दमनन्तलीलं महेश्वरं सर्वविभुं महान्तम्।
गौरीप्रियं कार्तिकविघ्नराजसमुद्भवं शङ्करमादिदेवम्॥

जो परमानन्दमय हैं, जिनकी लीलाएँ अनन्त हैं, जो ईश्वरोंके भी ईश्वर, सर्वव्यापक, महान्, गौरीके प्रियतम तथा कार्तिकेय और विघ्नराज गणेशको उत्पन्न करनेवाले हैं, उन आदिदेव शंकरकी मैं वन्दना करता हूँ।

सर्वव्यापी सर्वेश्वर भगवान् शिवके कल्प-कल्पान्तरोंमें असंख्य अवतार हुए हैं, उनमेंसे पाँच अवतार अन्यतम हैं। यहाँ उनका विवरण संक्षेपमें प्रस्तुत है—

१-सद्योजात—श्वेतलोहित नामक उन्नीसवें कल्पमें उन परमप्रभुका 'सद्योजात' नामक अवतार हुआ था। यह उनका प्रथम अवतार कहलाता है। उस कल्पमें जब ब्रह्मा परमब्रह्मका ध्यान कर रहे थे, उसी समय एक श्वेत और लोहितवर्णवाला शिखाधारी कुमार उत्पन्न हुआ। उसे देखकर ब्रह्माने उसके विषयमें मन-ही-मन विचार किया। जब उन्हें यह ज्ञात हो गया कि यह कुमार ब्रह्मरूपी परमेश्वर है, तब उन्होंने हाथ जोड़कर उसकी वन्दना की। सद्योजात कुमारको शिव जानकर उन्हें महान् हर्ष हुआ। वे अपनी सद्बुद्धिसे उन परब्रह्मका चिन्तन कर ही रहे थे कि वहाँ श्वेतवर्णवाले चार यशस्वी कुमार और प्रकट हुए। वे परमोत्कृष्ट ज्ञानसम्पन्न तथा परब्रह्मके स्वरूप थे। उनके नाम थे—सुनन्द, नन्दन, विश्वनन्द और उपनन्दन। ये सब-के-सब महात्मा ब्रह्माजीके शिष्य हुए और इनसे वह ब्रह्मलोक व्याप्त हो गया। तदनन्तर सद्योजात रूपसे प्रकट हुए परमेश्वर शिवने परम प्रसन्न होकर ब्रह्माको ज्ञान तथा सृष्टि-रचनाकी शक्ति प्रदान की। इस प्रकार यह 'सद्योजात' नामक भगवान् शिवके पहले अवतारकी कथा है।

२-वामदेव—भगवान् सदाशिवके 'वामदेव' नामक दूसरे अवतारकी कथा इस प्रकार है—रक्त नामक बीसवें कल्पमें पितामह ब्रह्माजीने रक्तवर्ण का शरीर धारण किया था। वे पुत्रकी कामनासे परमेश्वरका ध्यान कर रहे थे, उसी समय उनसे एक पुत्र प्रकट हुआ। उसके शरीरपर लाल रंगकी माला और लाल रंगके ही वस्त्र सुशोभित हो रहे थे। उसके नेत्र लाल थे और उसने आभूषण भी लाल रंगके ही धारण कर रखे थे। उस महान् आत्मबलसे सम्पन्न कुमारको देखकर ब्रह्माजी ध्यानस्थ हो गये। जब ब्रह्माजीको

यह ज्ञात हुआ कि कुमाररूपधारी ये वामदेव शिव हैं तो उन्होंने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् उनके विरजा, विवाह, विशोक और विश्वभावन नामके चार पुत्र उत्पन्न हुए, जो सभी लाल वस्त्र धारण किये हुए थे। तदनन्तर उन वामदेवरूपधारी सदाशिवने परम प्रसन्न होकर ब्रह्माजीको ज्ञान तथा सृष्टि-रचनाकी शक्ति दी।

३-तत्पुरुष—भगवान् शिव का 'तत्पुरुष' नामक तीसरा अवतार पीतवासा नामक इक्कीसवें कल्पमें हुआ। उस कल्पमें महाभाग ब्रह्माजी पीतवस्त्रधारी हुए। जब वे पुत्रकी कामनासे ध्यान कर रहे थे, उस समय उनसे एक महातेजस्वी कुमार उत्पन्न हुआ। उस कुमारकी भुजाएँ विशाल थीं और उसके शरीरपर पीताम्बर झलमला रहा था। उसे देखकर ब्रह्माजीने अपने बुद्धिबलसे यह जान लिया कि ये परब्रह्म परमात्मा शिव ही 'तत्पुरुष' रूपमें उत्पन्न हुए हैं। तब उन्होंने ध्यानयुक्त चित्तसे शाङ्करी गायत्रीका जप करते हुए उन्हें नमस्कार किया। तदनन्तर उनके पार्श्वभागसे पीतवस्त्रधारी दिव्य कुमार प्रकट हुए, वे सब-के-सब योगमार्गके प्रवर्तक हुए।

४-अघोर—'शिव' नामक कल्पमें भगवान् शिवका 'अघोर' नामक चौथा अवतार हुआ। उस अवतारकी कथा इस प्रकार है—जब एकार्णवकी स्थितिमें एक सहस्र दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये, तब ब्रह्माजी प्रजाओंकी सृष्टि करनेकी इच्छासे दु:खी हो विचार करने लगे। उस समय ब्रह्माजीके समक्ष एक कुमार प्रकट हुआ। उस कुमारके शरीरका रंग काला था, वह अपने ही तेजसे उद्दीप्त हो रहा था तथा काला वस्त्र, काली पगड़ी और काला यज्ञोपवीत धारण किये हुए था। उसका मुकुट भी काला था और स्नानके पश्चात् अनुलेपन-चन्दन भी काले रंगका ही था। उन महाभयङ्कर, पराक्रमी, महामनस्वी, देवदेवेश्वर, अलौकिक, कृष्णपिङ्गल-वर्णवाले 'अघोर' को देखकर ब्रह्माजीने उनकी वन्दना की। तत्पश्चात् उनके पार्श्वभागसे कृष्णवर्णवाले काले रंगका अनुलेपन धारण किये हुए चार महामनस्वी कुमार उत्पन्न हुए। वे सब-के-सब परम तेजस्वी, अव्यक्तनामा तथा शिव-सरीखे रूपवाले थे। उनके नाम थे—कृष्ण, कृष्णशिख, कृष्णास्य और कृष्णकण्ठधृक्। इस प्रकार उत्पन्न होकर इन महात्माओंने ब्रह्माजीकी सृष्टि-रचनाके निमित्त महान् अद्भुत 'घोर' नामक योगका प्रचार किया।

५-ईशान—ब्रह्माजीके विश्वरूप नामक कल्पमें भगवान् शिवका 'ईशान' नामक पाँचवाँ अवतार हुआ। इस अवतारकी कथा इस प्रकार है—ब्रह्माजी पुत्रकी कामनासे मन-ही-मन शिवजीका ध्यान कर रहे थे, उसी समय महान् सिंहनाद करनेवाली विश्वरूपा सरस्वती प्रकट हुईं तथा उसी प्रकार परमेश्वर भगवान् ईशान प्रादुर्भूत हुए, जिनका वर्ण शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल था और जो समस्त आभूषणोंसे विभूषित थे। उन अजन्मा, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, सब कुछ प्रदान करनेवाले, सर्वस्वरूप, सुन्दर रूपवाले तथा अरूप ईशानको देखकर ब्रह्माजीने उन्हें प्रणाम किया। तब शक्तिसहित विभु ईशानने भी ब्रह्माको सन्मार्गका उपदेश देकर चार सुन्दर बालकोंकी कल्पना की। उनके नाम थे—जटी, मुण्डी, शिखण्डी और अर्धमुण्ड। वे योगानुसार सद्धर्मका पालन करके योगगतिको प्राप्त हो गये।

इस प्रकार जगत्के माङ्गल्यकी कामनासे भगवान् सदाशिवके ये अवतार विभिन्न कल्पोंमें हुए हैं। कल्याणकामी मनुष्योंको भगवान् शंकरके इन स्वरूपोंकी सदा प्रयत्नपूर्वक वन्दना करनी चाहिये; क्योंकि ये श्रेय:प्राप्तिमें एकमात्र हेतु हैं। जो मनुष्य इन सद्योजातादि अवतारोंके प्राकट्यकी कथाको पढ़ता अथवा सुनता है, वह जगत्में समस्त काम्य भोगोंका उपभोग करके अन्तमें परमगतिको प्राप्त होता है—

इमे स्वरूपाः शम्भोर्हि वन्दनीयाः प्रयत्नतः।
श्रेयोर्थिभिर्नरैर्नित्यं श्रेयसामेकहेतवः॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि सद्यादीनां समुद्भवम्।
स भुक्त्वा सकलान्कामान् प्रयाति परमां गतिम्॥

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता १।४९-५०)

भगवान् शिवके स्थिति, पालन, संहार, निग्रह (तिरोभाव) और अनुग्रह—ये पञ्चकृत्य सभी आगमोंमें प्रसिद्ध हैं। इन पाँचोंमें पूर्वके जो चार कृत्य हैं—सृष्टि, पालन, संहार और तिरोभाव—वे संसारका विस्तार करनेवाले हैं और अन्तिम पाँचवाँ कृत्य अनुग्रह है, जो मोक्षका हेतु है, वह सदाशिवमें स्थिर रहता है। भगवान् शिव स्वयं कहते हैं कि ये पाँचों कृत्य मेरे पाँच मुखोंद्वारा धारित हैं, चारों दिशाओंमें चार मुख और पाँचवाँ मुख मध्यमें है—

पञ्चकृत्यमिदं वोढुं ममास्ति मुखपञ्चकम्।
चतुर्दिक्षु चतुर्वक्त्रं तन्मध्ये पञ्चमं मुखम्॥

भगवान् शिवका जो पञ्चाननस्वरूप है, उसमें पश्चिम दिशाका मुख 'सद्योजात' है। '**ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि०**' यह उनकी आराधनाका वैदिक मन्त्र है। उत्तर दिशाका मुख 'वामदेव' है, उसका मन्त्र '**वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः०**' है। दक्षिण मुख 'अघोर' है, उसका मन्त्र '**ॐ अघोरेभ्यो०**' इत्यादि है। भगवान् शिवके पूर्वमुखका नाम 'तत्पुरुष' है, उसका वैदिक मन्त्र '**ॐ तत्पुरुषाय विद्महे०**' इत्यादि है। ऊर्ध्वमुख 'ईशान' नामवाला है, इनकी आराधनाका वैदिक मन्त्र '**ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः०**' इत्यादि है।

पञ्चमुख सदाशिवका एक ध्यान-स्वरूप इस प्रकार वर्णित है—

मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजवावर्णैर्मुखैः पञ्चभिः
त्र्यक्षैरञ्चितमीशमिन्दुमुकुटं पूर्णेन्दुकोटिप्रभम्।
शूलं टङ्ककृपाणवज्रदहनान् नागेन्द्रघण्टाङ्कुशान्
पाशं भीतिहरं दधानममिताकल्पोज्ज्वलं चिन्तयेत्॥

अर्थात् जिन भगवान् शंकरके पाँच मुखोंमें क्रमशः ऊर्ध्वमुख गजमुक्ताके समान हलके लाल रंगका, पूर्वमुख पीतवर्णका, दक्षिणमुख सजल मेघके समान नीलवर्णका, पश्चिममुख मुक्ताके समान कुछ भूरे रंगका और उत्तरमुख जवापुष्पके समान प्रगाढ़ रक्तवर्णका है, जिनकी तीन आँखें हैं और सभी मुख-मण्डलोंमें नीलवर्णके मुकुटके साथ चन्द्रमा सुशोभित हो रहे हैं, जिनके मुखमण्डलकी आभा करोड़ों पूर्ण चन्द्रमाके तुल्य आह्लादित करनेवाली है, जो अपने हाथोंमें क्रमशः त्रिशूल, टङ्क (परशु), तलवार, वज्र, अग्नि, नागराज, घण्टा, अंकुश, पाश तथा अभयमुद्रा धारण किये हुए हैं एवं जो अनन्त कल्पवृक्षके समान कल्याणकारी हैं, उन सर्वेश्वर भगवान् शंकरका ध्यान करना चाहिये।

~~ ० ~~

भगवान् शिवके एकादश रुद्रावतार

पूर्वकालकी बात है, एक बार इन्द्र आदि समस्त देवता दैत्योंसे पराजित और भयभीत होकर अमरावतीपुरीसे भागकर अपने पिता महर्षि कश्यपके आश्रममें आये। वहाँ उन्होंने अपनी कष्ट-कथा कश्यपजीको सुनायी। भगवान् सदाशिवमें आसक्त-बुद्धिवाले कश्यपजीने देवताओंको आश्वासन दिया और स्वयं परम हर्षपूर्वक भगवान् विश्वनाथकी नगरी काशीपुरीकी ओर चल दिये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने गङ्गाजीमें स्नान किया और अपना नित्य-नियम पूरा किया। तदनन्तर शम्भुदर्शनके उद्देश्यसे एक शिवलिङ्गकी स्थापना करके वे भगवान् शिवके चरणकमलोंका ध्यान करते हुए प्रसन्नतापूर्वक तप करने लगे। जब कश्यपजीको इस प्रकार तप करते हुए बहुत अधिक समय व्यतीत हो गया तो सत्पुरुषोंके गतिस्वरूप दीनबन्धु भगवान् शंकर उनके समक्ष प्रकट हुए।

भक्तवत्सल भगवान् शिव परम प्रसन्न तो थे ही, अतः वे अपने भक्त कश्यपजीसे बोले—मुने! मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो। भगवान् महेश्वरको देखते ही कश्यपजी हर्षमग्न हो गये, फिर विविध प्रकारसे उन देवाधिदेवकी स्तुति कर उन्होंने कहा—हे नाथ! महाबली दैत्योंने देवताओं और यक्षोंको पराजित कर दिया है, इसलिये शम्भो! आप मेरे पुत्ररूपसे प्रकट होकर देवताओंके लिये आनन्ददाता बनिये—

भूत्वा मम सुतो नाथ देवा यक्षाः पराजिताः।
दैत्यैर्महाबलैश्शम्भो सुरानन्दप्रदो भव॥

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता १८। २०)

कश्यपजीके ऐसा कहनेपर सर्वेश्वर भगवान् शंकर 'तथास्तु' कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये। तब कश्यपजी भी प्रसन्नतापूर्वक अपने आश्रममें वापस लौट आये। वहाँ उन्होंने सारा वृत्तान्त देवताओंसे कह सुनाया। भगवान् शंकरके अवतार लेनेकी बात जानकर देवताओंका मन प्रसन्नतासे भर गया। वे उन अशरणशरण दीनबन्धु भक्तवत्सल भगवान् शिवके अवतार-धारणकी प्रसन्नतापूर्वक प्रतीक्षा करने लगे।

तदनन्तर भगवान् शंकर ने अपना वचन सत्य करनेके लिये कश्यपद्वारा सुरभीके गर्भसे ग्यारह रुद्रोंके रूपमें अवतार धारण किया। भगवान्‌के इन रुद्रावतारोंसे

सारा जगत् शिवमय हो गया। कश्यपमुनिके साथ-साथ सभी देवता हर्षविभोर हो गये। उन एकादश रुद्रोंके नाम हैं—कपाली, पिङ्गल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, शास्ता, अजपाद, अहिर्बुध्न्य, शम्भु, चण्ड तथा भव। ये एकादश रुद्र सुरभीके पुत्र कहलाते हैं। ये सुखके आवास-स्थान हैं तथा देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये शिवरूपसे उत्पन्न हुए हैं—

एकादशैते रुद्रास्तु सुरभीतनयाः स्मृताः।
देवकार्यार्थमुत्पन्नाशिशवरूपास्सुखास्पदम् ॥

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता १८। २७)

कश्यपके पुत्ररूपमें उत्पन्न ये एकादश रुद्र महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न थे, इन्होंने संग्राममें दैत्योंका संहारकर इन्द्रको पुनः स्वर्गका अधिपति बना दिया। ये शिवरूपधारी एकादश रुद्र अब भी देवताओंकी रक्षाके लिये स्वर्गमें विराजमान रहते हैं।

भगवान् रुद्र मूलतः तो एक ही हैं तथापि जगत्के कल्याणके हेतु अनेक नाम-रूपोंमें अवतरित होते हैं। मुख्य रूपसे ग्यारह रुद्र हैं। विभिन्न पुराणोंमें इनके नाममें भी अन्तर मिलता है। रुद्रोंके साथ रुद्राणियोंका भी वर्णन आता है। श्रीमद्भागवत (३। १२। १२)-में ग्यारह रुद्रोंके नाम इस प्रकार आये हैं—

१-मन्यु, २-मनु, ३-महिनस, ४-महान्, ५-शिव, ६-ऋतध्वज, ७-उग्ररेता, ८-भव, ९-काल, १०-वामदेव और ११-धृतव्रत।

भगवान् शिवके योगेश्वरावतार

प्रत्येक मन्वन्तरके प्रत्येक द्वापरयुगमें भगवान् नारायण स्वयं वेदव्यासके रूपमें अवतार लेकर मनुष्योंके हितके लिये वेदोंका विभाजन करते हैं, उसी प्रकार भगवान् सदाशिव प्रत्येक कलियुगमें योगेश्वरावतारके रूपमें अवतार लेते हैं। ये अवतार कलियुगके मनुष्योंको ध्यानयोगकी शिक्षा देनेके लिये होते हैं; क्योंकि उस समय मनुष्य ध्यानके अतिरिक्त दान, धर्म आदि कर्महेतुक साधनोंद्वारा उन भगवान् सदाशिवका दर्शन नहीं पा सकता। प्रत्येक योगेश्वरावतारके साथ उनके चार अविनाशी शिष्य भी होते हैं, जो महान् शिवभक्त और योगमार्गकी वृद्धि करनेवाले होते हैं। इनके शरीरपर भस्म रमी रहती है, ललाट त्रिपुण्ड्रसे सुशोभित रहता है, रुद्राक्षकी माला ही उनका आभूषण होता है। ये सभी शिष्य धर्मपरायण, वेद-वेदाङ्गके पारगामी विद्वान् और लिङ्गार्चनमें तत्पर रहनेवाले होते हैं। ये शिवजीमें भक्ति रखकर योगपूर्वक ध्यानमें निष्ठा रखते हैं।

वाराहकल्पके सातवें मन्वन्तरमें भगवान् शिवद्वारा लिये गये अट्ठाईस योगेश्वरावतारों और उनके शिष्योंकी नामावली इस प्रकार है—

क्र०	चतुर्युगी	योगेश्वरावतार	शिष्य
१.	पहली	महामुनि श्वेत	श्वेत, श्वेतशिख, श्वेताश्व और श्वेतलोहित
२.	दूसरी	सुतार	दुन्दुभि, शतरूप, हृषीक तथा केतुमान्
३.	तीसरी	दमन	विशोक, विशेष, विपाप और पापनाशन
४.	चौथी	सुहोत्र	सुमुख, दुर्मुख, दुर्दम और दुरतिक्रम
५.	पाँचवीं	कङ्क	सनक, सनातन, सनन्दन और सनत्कुमार
६.	छठीं	लोकाक्षि	सुधामा, विरजा, संजय तथा विजय
७.	सातवीं	जैगीषव्य	सारस्वत, योगीश, मेघवाह और सुवाहन
८.	आठवीं	दधिवाहन	कपिल, आसुरि, पञ्चशिख और शाल्वल
९.	नौवीं	ऋषभ	पराशर, गर्ग, भार्गव तथा गिरिश
१०.	दसवीं	उग्र*	भृङ्ग, बलबन्धु, नरामित्र और केतुशृङ्ग
११.	ग्यारहवीं	तप	लम्बोदर, लम्बाक्ष, केशलम्ब और प्रलम्बक
१२.	बारहवीं	अत्रि	सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्य और शर्व

* लिङ्गपुराण ७। ३२

क्र०	चतुर्युगी	योगेश्वरावतार	शिष्य
१३.	तेरहवीं	महामुनि बलि	सुधामा, काश्यप, वसिष्ठ और विरजा
१४.	चौदहवीं	गौतम	अत्रि, वशद, श्रवण और श्नविष्कट
१५.	पंद्रहवीं	वेदशिरा	कुणि, कुणिबाहु, कुशरीर और कुनेत्रक
१६.	सोलहवीं	गोकर्ण	काश्यप, उशना, च्यवन और बृहस्पति
१७.	सत्रहवीं	गुहावासी	उतथ्य, वामदेव, महायोग और महाबल
१८.	अट्ठारहवीं	शिखण्डी	वाच:श्रवा, रुचीक, श्यावास्य और यतीश्वर
१९.	उन्नीसवीं	माली	हिरण्यनामा, कौसल्य, लोकाक्षि और प्रधिमि
२०.	बीसवीं	अट्टहास	सुमन्तु, वर्वरि, कम्बन्ध और कुलिकन्धर
२१.	इक्कीसवीं	दारुक	प्लक्ष, दार्भायणि, केतुमान् तथा गौतम
२२.	बाईसवीं	लाङ्गली भीम	भल्लवी, मधु, पिङ्ग और श्वेतकेतु
२३.	तेईसवीं	श्वेत	उशिक, बृहदश्व, देवल और कवि
२४.	चौबीसवीं	शूली	शालिहोत्र, अग्निवेश, युवनाश्व और शरद्वसु
२५.	पच्चीसवीं	मुण्डीश्वर	छगल, कुण्डकर्ण, कुम्भाण्ड और प्रवाहक
२६.	छब्बीसवीं	सहिष्णु	उलूक, विद्युत्, शम्बूक और आश्वलायन
२७.	सत्ताईसवीं	सोमशर्मा	अक्षपाद, कुमार, उलूक और वत्स
२८.	अट्ठाईसवीं	लकुली	कुशिक, गर्ग, मित्र और तौरुष्य

इस प्रकार भगवान् सदाशिव प्रत्येक चतुर्युगीके कलियुगमें अवतार लेकर योगमार्गका प्रवर्तन, व्यासजीका सहयोग और संसार-सागरसे भक्तोंका उद्धार करते हैं। कलियुगके प्रवृत्त होनेपर जब निवृत्तिमार्गका लोप होने लगता है, उस समय भगवान् शिव इन योगेश्वरावतारोंके द्वारा निवृत्तिमार्गको सुदृढ़ करते हैं।

~~ ० ~~

भगवान् शिवके महाकाल आदि दस अवतार

परब्रह्म परमात्मा भगवान् सदाशिव और उनकी शक्ति भगवती शिवाने भक्तोंके कल्याण और उनको भोग-मोक्ष प्रदान करनेके लिये दस अवतार धारण किये हैं। यद्यपि भगवान् शिव तथा भगवती शिवा अभिन्न हैं, परंतु भक्तोंकी मनोवाञ्छापूर्तिके लिये वे अवतार ग्रहण करते हैं। जिस रूपमें भगवान् शिवका प्राकट्य होता है, उसी रूपसे उनकी शक्ति भगवती शिवा भी प्रकट होती हैं। तन्त्र-ग्रन्थोंमें तथा पुराणोंमें भगवती शिवाके काली, तारा आदि दस महाविद्यारूपोंका वर्णन आया है, उसी प्रकार भगवान् शिवके भी महाकाल आदि दस रूप हैं। शिवपुराणमें प्राप्त इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

भगवान् सदाशिवका पहला अवतार 'महाकाल' है, इस अवतारकी शक्ति 'महाकाली' हैं। दूसरा 'तार' नामक अवतार हुआ, जिनकी शक्ति 'तारादेवी' हैं। 'बाल भुवनेश' नामक भगवान्का तीसरा अवतार हुआ, जिनकी शक्ति 'बाला भुवनेशी' हुईं। चौथा अवतार 'षोडश श्रीविद्येश' हुआ, जिनकी शक्ति 'षोडशी श्रीविद्या' हुईं। भगवान् शिवका पाँचवाँ अवतार 'भैरव' नामसे प्रसिद्ध हुआ, इस अवतारकी शक्तिका नाम 'भैरवी गिरिजा' है। छठा शिवावतार 'छिन्नमस्तक' नामसे जाना जाता है, इनकी शक्ति 'छिन्नमस्ता' हैं। सम्पूर्ण मनोरथोंके दाता शम्भुका सातवाँ अवतार 'धूमवान्' नामसे विख्यात हुआ, उनकी शक्ति 'धूमावती' हैं। शिवजीका आठवाँ अवतार 'बगलामुख' है, उनकी शक्ति 'बगलामुखी' नामसे विख्यात हुईं। नवाँ शिवावतार 'मातङ्ग' नामसे प्रसिद्ध है, इनकी शक्ति 'मातङ्गी' हैं। भगवान् शिवके दसवें अवतारका नाम 'कमल' है, इनकी शक्ति 'कमला' हैं।

शिवजीके ये दसों अवतार भक्तों तथा सत्पुरुषोंके लिये सुखदायक तथा भोग-मोक्षको देनेवाले हैं।

~~ ० ~~

शिवकी अष्टमूर्तियाँ

(श्री के०पी० मिश्र)

'एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः०।'

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३।२)

केवल एक रुद्र ही तो है अर्थात् जगत्का नियमन करनेवाली शक्तियाँ अनेक होनेपर भी वे सभी रुद्रकी शक्ति हैं। यही कारण है कि ब्रह्मज्ञानी किसी दूसरेका आश्रय नहीं लेते। यह भी निश्चित किया गया है कि एक परमात्मा ही इस जगत्के मूल कारण हैं। वे प्रभु ही इन समस्त लोकोंकी रचना करके रक्षा करते हैं तथा प्रलयकालमें अपनेमें समेट लेते हैं। श्रुति कहती है—

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ६।७)

ईश्वरोंके परम महान् ईश्वर, देवताओंके परमदेव, पतियोंके परमपति, अव्यक्तादि परसे पर तथा विश्वके अधिपति उस स्तवनीय देवको हम जानते हैं।

भगवान्की पराशक्ति तीन भागोंमें विभक्त है। सत्-अंशको सन्धिनी, चित्-अंशको संवित् और आनन्द-अंशको ह्लादिनी कहते हैं। इसी कारण भगवान् सच्चिदानन्द कहलाते हैं। इन शक्तियोंमें हर शक्तिका विलास-वैचित्र्य अनन्त है। जब तीनों शक्तियाँ समरूपमें हो जाती हैं तो मूर्ति कहलाती हैं। भगवान् एवं उनके परिकरका विग्रह इसी अवस्थामें प्रकाशित होता है।

यह जगत् पञ्चमहाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश)-से संगठित है। इसके अतिरिक्त चन्द्रमा, सूर्य और जीवात्मा कुल मिलाकर आठ मूर्तियोंद्वारा समस्त चराचर जगत् व्याप्त है। शिवका एक नाम 'अष्टमूर्ति' भी है।

शिवपुराणके अन्तर्गत ब्रह्माजीद्वारा शिवकी स्तुति इस प्रकार की गयी है। वस्तुतः यह शिवकी आठ मूर्तियोंकी स्तुति है—

नमस्ते भगवन् रुद्र भास्करामिततेजसे।
नमो भवाय देवाय रसायाम्बुमयात्मने॥
शर्वाय क्षितिरूपाय नन्दीसुरभये नमः।
ईशाय वसवे तुभ्यं नमः स्पर्शमयात्मने॥
पशूनां पतये चैव पावकायातितेजसे।
भीमाय व्योमरूपाय शब्दमात्राय ते नमः॥
उग्रायोग्रस्वरूपाय यजमानात्मने नमः।
महाशिवाय सोमाय नमस्त्वमृतमूर्तये॥

(शिवपुराण, वायवीयसंहिता, पू०खं० १२।४१—४४)

हे भगवन्! रुद्र! आपका तेज असंख्य सूर्योंके समान अनन्त है। आपको नमस्कार है। रसस्वरूप और जलमय विग्रहवाले आप भवदेवताको नमस्कार है। नन्दी और सुरभि (कामधेनु) ये दोनों आपके स्वरूप हैं। आप पृथ्वीरूपधारी शर्वको नमस्कार है। स्पर्शमय वायुरूपवाले आपको नमस्कार है। आप ही वसुरूपधारी ईश हैं। आपको नमस्कार है। अत्यन्त तेजस्वी अग्निरूप आप पशुपतिको नमस्कार है। शब्द तन्मात्रासे युक्त आकाशरूपधारी आप भीमदेवको नमस्कार है। उग्ररूपवाले यजमानमूर्ति आपको नमस्कार है। सोमरूप आप अमृतमूर्ति महादेवजीको नमस्कार है।

शर्वो भवस्तथा रुद्र उग्रो भीमः पशोः पतिः।
ईशानश्च महादेवो मूर्तयश्चाष्टविश्रुताः॥

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता २।३)

भगवान् शिवकी इन अष्टमूर्तियोंका नाम शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, महादेव और ईशान है।

शास्त्रोंने ऐसा निश्चय किया है कि कल्याणकर्ता शिवके विश्वात्मक रूपने ही चराचर जगत्को धारण किया है। ये ही शर्व आदि अष्टमूर्तियाँ क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, जीवात्मा, सूर्य और चन्द्रमाको अधिष्ठित किये हुए हैं। किसी एक मूर्तिकी पूजा-अर्चनासे सभी मूर्तियोंकी पूजा-अर्चनाका फल मिल जाता है।

श्रीवेदव्यासजीका कथन है—

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या॥

(श्रीमद्भा० ४।३१।१४)

भाव यह है कि जिस प्रकार वृक्षकी जड़ सींचनेसे उसके तने, शाखा, उपशाखा आदि सभीका पोषण हो जाता है और जैसे भोजन करनेवालेको प्रत्येक ग्रासके साथ तृप्ति मिलती है, शरीर पुष्ट होता है और क्षुधाकी निवृत्ति होती है, वैसे ही भक्तको भगवत्तत्त्वका अनुभव, भगवान्‌की भक्ति तथा विषयोंसे वैराग्य—ये तीनों एक साथ ही प्राप्त हो जाते हैं।

'अष्टमूर्तियों' की आराधना इन मन्त्रोंसे की जाती है—

ॐ शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः। ॐ भवाय जलमूर्तये नमः। ॐ रुद्राय अग्निमूर्तये नमः। ॐ उग्राय वायुमूर्तये नमः। ॐ भीमाय आकाशमूर्तये नमः। ॐ पशुपतये यजमानमूर्तये नमः। ॐ महादेवाय सोममूर्तये नमः। ॐ ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः।

यह जीवात्मा ही क्षेत्रज्ञ है। यही यजमानरूपसे यज्ञकर्ता है। इस कारण ही यह यजमान कहलाता है। मायाके पाशसे बँधे जीव ही पशु हैं। जीवके पति (रक्षक) होनेके कारण ही शिवको पशुपति कहते हैं।

ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च देवदेवस्य शूलिनः।
पशवः परिकीर्त्यन्ते संसारवशवर्तिनः॥
तेषां पतित्वाद्देवेशः शिवः पशुपतिः स्मृतः।
मलमायादिभिः पाशैः स बध्नाति पशून् पतिः॥
स एव मोचकस्तेषां भक्त्या सम्यगुपासितः।

(शिवपुराण,वायवीय सं०उत्तरभाग २।११—१३)

अर्थात् ब्रह्मासे लेकर स्थावर-जङ्गमतक जितने भी जीव हैं, सभी देवाधिदेव शूलपाणि शिवके पशु कहे जाते हैं। उनके पति होनेके कारण वे पशुपति कहे जाते हैं। वे ही ब्रह्मा आदि सभी पशुओंको मल, माया आदि अविद्याके पाशमें जकड़कर रखते हैं तथा भक्तोंद्वारा उपासित होनेपर वे ही उन पाशोंसे मुक्त भी करते हैं।

सभी प्राणियोंके प्रति अनुग्रह, सबकी सेवा, सभी प्राणियोंसे प्रेम—यही शिवकी आराधना है। यदि कोई किसी जीवको कष्ट देता है तो वस्तुतः वह शिवकी अष्टमूर्तियोंको ही कष्ट देता है।

अष्टमूर्तियोंके तीर्थ—

१-सूर्य—सूर्य ही दृश्यमान प्रत्यक्ष देवता हैं—

आदित्यं च शिवं विद्याच्छिवमादित्यरूपिणम्।
उभयोरन्तरं नास्ति ह्यादित्यस्य शिवस्य च॥

सूर्य और शिवमें कोई अन्तर नहीं है। सभी सूर्यमन्दिर वस्तुतः शिवमन्दिर ही हैं। फिर भी काशीस्थ गभस्तीश्वर लिङ्ग सूर्यरूप शिवका स्वरूप है।

२-चन्द्र—सोमनाथका मन्दिर।

३-यजमान—नेपालका पशुपतिनाथ मन्दिर।

४-क्षितिलिङ्ग—तमिलनाडुके शिवकाञ्चीमें स्थित आम्रकेश्वर।

५-जललिङ्ग—तमिलनाडुके त्रिचिरापल्लीमें जम्बुकेश्वर मन्दिर।

६-तेजोलिङ्ग—अरुणाचलपर्वतपर।

७-वायुलिङ्ग—आन्ध्रप्रदेशके अरकाट जिलेमें कालहस्तीश्वर वायुलिङ्ग है।

८-आकाशलिङ्ग—तमिलनाडुके चिदम्बरम्‌में स्थित।

शिवकी अष्टमूर्तियोंमें पहली 'रुद्र' नामक मूर्ति आँखोंमें प्रकाशरूप है, जिससे प्राणी देखता है। दूसरी 'भव' नामक मूर्ति अन्न-पान करके शरीरकी वृद्धि करती है। यह स्वधा कहलाती है। तीसरी 'शर्व' नामक मूर्ति अस्थिरूपसे आधारभूता है। यह आधारशक्ति ही गणेश कहलाती है। चौथी 'ईशानशक्ति' प्राणापान-वृत्तिसे प्राणियोंमें जीवनीशक्ति है। पाँचवीं 'पशुपति' मूर्ति उदरमें रहकर अशित-पीतको पचाती है, जिसे जठराग्नि कहा जाता है। छठी 'भीमामूर्ति' देहमें छिद्रोंका कारण है। सातवीं 'उग्र' नामक मूर्ति जीवात्माके ऐश्वर्यरूपमें रहती है। आठवीं 'महादेवमूर्ति' संकल्परूपसे प्राणियोंके मनमें रहती है। इस संकल्परूप चन्द्रमाके लिये **'नवो नवो भवति जायमानः'** कहा गया है अर्थात् संकल्पोंके नये-नये रूप बदलते हैं।

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंकी अवतरण-मीमांसा

(आचार्य डॉ० श्रीनरेन्द्रनाथजी ठाकुर, एम्०ए० (गोल्ड मैडलिस्ट), पी-एच्०डी० (संस्कृत))

अखिल विश्वब्रह्माण्डमें भूलोक, भूलोकमें भी जम्बू, प्लक्ष तथा क्रौञ्च आदि द्वीपोंमें जम्बूद्वीप; पुनः जम्बू-द्वीपान्तर्गत किम्पुरुष, कुरुमाल आदि वर्षोंमें भारतवर्ष श्रेष्ठ माना जाता है। भारतवर्षका माहात्म्य यहाँकी सभ्यता, संस्कृति और संस्कृतको लेकर है। यही वह भूमि है, जहाँ भगवान्‌के समस्त अवतार हुए। अंशावतार, कलावतार एवं पूर्णावतार इत्यादि अवतार धारण कर भगवान् अपने आर्त भक्तोंका भवसागरसे उद्धार करते हैं, कभी राम-कृष्णरूपसे तो कभी शिवरूपसे। वे भगवान् अनन्त गुणराशिसे युक्त अनन्तानन्त वैभवादिसे विलसित अनन्तस्वरूप हैं, इसलिये भगवती श्रुतिने भी 'नेति'-'नेति' शब्दोंके द्वारा अन्योंसे भगवत्तत्त्वकी पृथक्ता बतलायी है।

भगवान्‌का अवतरण आप्तकाम पुरुषोंको निःश्रेयस-प्रदानार्थ ही हुआ करता है। अण्ड-पिण्ड-सिद्धान्तानुसार जो अण्डमें है, वही पिण्डमें भी है अर्थात् सर्वज्ञ भगवान् विराट् पुरुषरूप होकर अनन्त ब्रह्माण्डोंके स्वामी बन जाते हैं तथा वे ही पुनः एक शिवलिङ्गमें भी समाहित हो जाते हैं।

'ज्योति' शब्द प्रकाशका वाचक है एवं 'लिङ्ग' शब्द चिह्नका।

'लीनं प्रच्छन्नस्वरूपं प्रकटयति यत् तत् लिङ्गम्।'

अर्थात् जो चिह्न परब्रह्म परमात्माके स्वरूपका अवबोधन करा दे, वह लिङ्ग है। ब्रह्मसूत्र—वेदान्तदर्शन (१।१।२४)-में **'ज्योतिश्चरणाभिधानात्॥'** सूत्रद्वारा 'ज्योति' शब्दको परब्रह्मका अभिव्यञ्जक माना गया है; क्योंकि छान्दोग्योपनिषद्‌में उस ज्योतिर्मय ब्रह्मके चार पाद बतलाये गये हैं।

न्यायशास्त्रने तो **'लिङ्गात् लिङ्गिनो ज्ञानम् अनुमानम्'** के द्वारा अनुमान प्रमाणके लिये लिङ्गका होना ही आवश्यक बतलाया है। यहाँ लिङ्ग हुआ चिह्न एवं लिङ्गी हुए परब्रह्म परमात्मा, जिसे तैत्तिरीयोपनिषद्‌में **'रसो वै सः'** इत्यादि महावाक्योंद्वारा सङ्केतित किया गया है। ध्यातव्य हो कि नैयायिकोंने अनुमान प्रमाणके द्वारा ही ईश्वरसिद्धि की है। इसके प्रमाण न्यायकुसुमाञ्जलिकार उदयनाचार्यप्रभृति विद्वान् हैं। लिङ्गपुराणमें तो **'लिङ्गे सर्वं प्रतिष्ठितम्'** कहकर चराचर जगत्‌की प्रतिष्ठा लिङ्गमें ही बतलायी है। तर्कसंग्रहादि ग्रन्थोंमें लिङ्गकी त्रिविधता कही गयी है—(१) अन्वयव्यतिरेकि, (२) केवलान्वयि तथा (३) केवलव्यतिरेकि।

व्याकरणके अनुसार लिङ्ग शब्दमें 'अच्' प्रत्ययके योगसे 'लिङ्गम्' शब्द बना है। 'द्वादश' शब्द बारह संख्याका वाचक है एवं 'ज्योतिः' शब्द सूर्यका। **'सूर्यो ज्योतिः स्वाहा'**—इस वचनसे ज्योतिका प्रादुर्भाव सूर्यसे माना जाता है और सूर्य द्वादश आदित्यके रूपमें शास्त्रविश्रुत हैं। अतः द्वादश आदित्यके रहनेके कारण उनकी ज्योति भी तदनुसार बारह ही हुई, इस कारण ज्योतिर्लिङ्ग भी बारह ही माने गये। इन द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंका प्रमाण शिवपुराण, पद्मपुराण, मत्स्यपुराणादिमें विस्तृतरूपमें है एवं प्रस्थानत्रयी-भाष्यकार आद्य जगद्गुरु भगवान् शङ्कराचार्यने अपने 'द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्तोत्रम्' में देश, दिशा एवं स्थानादिके प्रमाणोंद्वारा इसे प्रमाणित किया है।

श्रीशिवमहापुराणमें द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंका प्रमाण उपलब्ध होता है—

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारे परमेश्वरम्॥
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशङ्करम्।
वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे॥
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने।
सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशं तु शिवालये॥

(कोटिरुद्रसंहिता १।२१—२३)

अर्थात् सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीशैलमें मल्लिकार्जुन, उज्जैनमें महाकाल, ओङ्कारमें परमेश्वर, हिमवत्पृष्ठमें केदारनाथ,

डाकिनीमें भीमशङ्कर, वाराणसीमें विश्वनाथ, गौतमीतटपर त्र्यम्बकनाथ, चिताभूमिमें वैद्यनाथ, दारुकावनमें नागेश, सेतुबन्धमें रामेश्वर एवं शिवालयमें घुश्मेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग विराजमान हैं।

श्रीशिवमहापुराणकी ही शतरुद्रसंहिता (४२।५)-में इन बारह अवतारोंको परमात्मा शिवका 'अवतारद्वादशक' कहा गया है और इनके दर्शन तथा स्पर्शसे सब प्रकारके आनन्दप्राप्तिकी बात बतलायी गयी है—

अवतारद्वादशकमेतच्छम्भोः परमात्मनः।
सर्वानन्दकरं पुंसान्दर्शनात्स्पर्शनान्मुने॥

शिवपुराणकी कोटिरुद्रसंहिता (१।९-१०)-में सम्पूर्ण जगत्‌को ही लिङ्गभूत माना गया है—

सर्वं लिङ्गमयी भूमिः सर्वंलिङ्गमयं जगत्॥
लिङ्गमयानि तीर्थानि सर्वं लिङ्गे प्रतिष्ठितम्।

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंका विवरण

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंका परिचयात्मक विवरण संक्षेपमें इस प्रकार दिया जा रहा है—

१-सोमनाथ—आद्य जगद्गुरु शङ्कराचार्यने 'द्वादश-ज्योतिर्लिङ्गस्तोत्र' में सोमनाथ ज्योतिर्लिङ्गकी स्तुति इस प्रकार की है—

सौराष्ट्रदेशे विशदेऽतिरम्ये
ज्योतिर्मयं चन्द्रकलावतंसम्।
भक्तिप्रदानाय कृपावतीर्णं
तं सोमनाथं शरणं प्रपद्ये॥

अर्थात् जो अपनी भक्ति प्रदान करनेके लिये अत्यन्त रमणीय तथा निर्मल सौराष्ट्र प्रदेश (काठियावाड़)-में दयापूर्वक अवतीर्ण हुए हैं, चन्द्रमा जिनके मस्तकका आभूषण है, उन ज्योतिर्लिङ्गस्वरूप भगवान् सोमनाथकी शरणमें मैं जाता हूँ।

महात्मा प्रजापति दक्षने अपनी सत्ताईस कन्याओंको चन्द्रमाके लिये दान किया। उन पत्नियोंमें रोहिणी नामकी पत्नी चन्द्रमाको विशेष प्रिय थी। शेष कन्याओंने अपनी वेदना प्रजापति दक्षको सुनायी, किंतु शिवमायासे विमोहित चन्द्रने उनकी बातोंपर तनिक भी ध्यान न दिया। फलस्वरूप प्रजापति दक्षने उसे क्षयी होनेका शाप दे दिया। चन्द्रमाकी क्षीणतासे हाहाकार मच गया। सभी देवता ब्रह्माकी शरणमें गये। ब्रह्माजीने प्रभासक्षेत्रमें जाकर शिवाराधनाकी बात कही। चन्द्रदेव प्रभासक्षेत्रमें जाकर शिवार्चन करने लगे। भगवान् शङ्कर प्रसन्न हो गये तथा उन्होंने वर माँगनेको कहा। चन्द्रमाने अपना मनोभिलषित क्षयनाशक वर माँगा। भगवान् आशुतोषने चन्द्रमाको एक पक्षमें प्रतिदिन बढ़नेका वर दिया। पुनः चन्द्रमाने कहा कि प्रभो! आप गिरिजासहित यहाँ स्थित रहें। इस क्षेत्रकी महिमा



बढ़ानेके लिये तथा चन्द्रमाके यशके लिये भगवान् शिव वहाँ सोमेश्वर (सोमनाथ)-के नामसे विख्यात हुए। वर्तमानमें यह काठियावाड़ प्रदेशके अन्तर्गत प्रभासक्षेत्रमें विराजमान है।

२-मल्लिकार्जुन—भगवत्पाद शङ्कराचार्यने इनकी वन्दना इस प्रकार की है—

श्रीशैलशृङ्गे विबुधातिसङ्गे
तुलाद्रितुङ्गेऽपि मुदा वसन्तम्।
तमर्जुनं मल्लिकपूर्वमेकं
नमामि संसारसमुद्रसेतुम्॥

अर्थात् जो ऊँचाईके आदर्शभूत पर्वतोंसे भी बढ़कर ऊँचे श्रीशैलके शिखरपर, जहाँ देवताओंका अत्यन्त समागम होता रहता है, प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं तथा जो

संसारसागरसे पार करानेके लिये पुलके समान हैं, उन एकमात्र प्रभु मल्लिकार्जुनको मैं नमस्कार करता हूँ।

श्रीशिवमहापुराणमें ऐसा प्रसंग आया है कि पार्वतीपुत्र कुमार कार्तिकेय जब पृथ्वीकी परिक्रमा कर कैलासपर आये और नारदजीने गणेशके विवाहादिका वृत्तान्त उन्हें सुनाया, तो वे क्रुद्ध होकर क्रौञ्चपर्वतपर चले गये। भगवान् शिव और भगवती पार्वती स्नेहसहित कुमार कार्तिकेयके पास गये, किंतु उस स्थानमें अपने पुत्रके न मिलनेपर पुत्रस्नेहसे व्याकुल होकर उन्होंने वहाँ अपनी ज्योति स्थापित कर दी तथा वहाँसे अपने पुत्रको देखनेके लिये वे अन्य पर्वतोंपर जाने लगे, परंतु अमावास्याके दिन शिवजी तथा पूर्णिमाके दिन माता पार्वती वहाँ निश्चय ही जाती रहती हैं। इसी दिनसे मल्लिकार्जुनमें शिवजीका ज्योतिर्लिङ्ग प्रसिद्ध हुआ। सम्प्रति यह ज्योतिर्लिङ्ग मद्रास प्रान्तके कृष्णा जिलेमें कृष्णानदीके तटपर श्रीशैल (पर्वत)-पर है। इसे दक्षिणका कैलास भी कहते हैं।

३-महाकाल—श्रीशङ्कराचार्य महाराजने उक्त ज्योतिर्लिङ्गकी वन्दना करते हुए कहा है—

अवन्तिकायां विहितावतारं
मुक्तिप्रदानाय च सज्जनानाम्।
अकालमृत्योः परिरक्षणार्थं
वन्दे महाकालमहासुरेशम्॥

अर्थात् संतजनोंको मोक्ष देनेके लिये जिन्होंने अवन्तिपुरी (उज्जैन)-में अवतार धारण किया है, उन महाकाल नामसे विख्यात महादेवजीको मैं अकाल-मृत्युसे बचनेके लिये नमस्कार करता हूँ।

अवन्ति (अवन्ती-अवन्तिका) नामक शिवजीकी एक प्रिय नगरी है, जो बड़ी ही पवित्र और संसारको पवित्र करनेवाली है। उस नगरीमें एक वेदपाठी श्रेष्ठ ब्राह्मण निवास करता था। उसके चार पुत्र थे—देवप्रिय, प्रियमेधा, सुकृत और सुव्रत। उस समय रत्नमाल पर्वतपर दूषण नामक दैत्योंका एक महाबली राजा रहता था। वह वैदिक धर्मका विरोधी था। कालक्रमानुसार दैत्योंने उस नगरीको घेर लिया। ब्राह्मणोंने कोई अन्य उपाय न देखकर शिवजीकी शरण ली और उनका पार्थिव लिङ्ग बनाकर पूजन प्रारम्भ किया। इसी समय दूषण नामक दैत्य ससैन्य उनपर टूट पड़ा, किंतु उन ब्राह्मणोंने दैत्योंका वचन सुना ही नहीं; क्योंकि वे महादेवके ध्यानमें मग्न थे। ज्योंही वह दुष्टात्मा दूषण उन ब्राह्मणोंको मारने चला, त्योंही उस पार्थिव मूर्तिके स्थानमें एक भयानक शब्द करके गड्ढा हो गया और उसी गर्तसे विकटरूपधारी महाकाल नामक शिव प्रकट



हुए और उन्होंने अपने हुङ्कारमात्रसे सेनासहित दूषणको तत्काल भस्म कर दिया।

प्रकृत लिङ्ग मालवाप्रदेशमें शिप्रानदीके तटपर उज्जैन नगरमें विराजमान है, जो अवन्तिकापुरीके नामसे विख्यात है। यह राजा भोज, उदयन, विक्रमादित्य, भर्तृहरि एवं महाकवि कालिदासकी साधना-स्थली रही है।

४-ओङ्कारेश्वर—भगवान् शङ्कराचार्य कहते हैं—

कावेरिकानर्मदयोः पवित्रे
समागमे सज्जनतारणाय।
सदैव मान्धातृपुरे वसन्त-
मोङ्कारमीशं शिवमेकमीडे॥

अर्थात् जो सत्पुरुषोंको संसार-सागरसे पार उतारनेके लिये कावेरी और नर्मदाके पवित्र संगमके निकट मान्धाताके पुरमें सदा निवास करते हैं, उन अद्वितीय कल्याणमय भगवान् ओङ्कारेश्वरका मैं स्तवन करता हूँ।

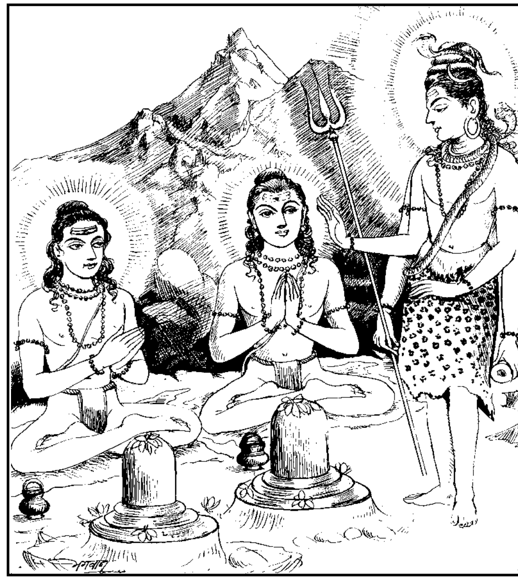
श्रीशिवमहापुराणमें ऐसा प्रसंग आया है कि किसी

समय देवर्षि नारदजीने गोकर्णतीर्थमें जाकर वहाँ उन गोकर्ण नामक शिवजीकी बड़ी पूजा की तथा पुनः विन्ध्याचलपर्वतपर उनकी आराधना की। तब विन्ध्यपर्वतको यह अहङ्कार हो गया कि मुझमें सब कुछ है तथा किसी भी प्रकारकी न्यूनता नहीं है। इससे विन्ध्यपर्वत नारदजीके समक्ष आकर खड़ा हो गया तथा उसने मनुष्यरूपमें अपनी अहंमन्यता प्रकट की, तब उसके ऐसे भावको देखकर नारदजीने कहा—तुम अवश्य ही सभी गुणोंके आकर हो, परंतु सुमेरुपर्वत सबसे ऊँचा है, यह सुनकर विन्ध्याचल दुःखी हुआ एवं बड़े प्रेमसे ॐकार नामक शिवकी पार्थिव मूर्ति बनाकर पूजा करने लगा। शिवजी प्रसन्न होकर प्रकट हुए और उससे वर माँगनेको



कहा। भगवान् शिवको प्रकट हुआ देखकर ऋषियों, मुनियों और देवताओंने उनसे वहीं निवास करनेकी प्रार्थना की। फलस्वरूप भगवान् शिव वहाँ ओङ्कारेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए। यह स्थान आजकल मालवाप्रान्तमें नर्मदानदीके तटपर स्थित है। यहाँ ओङ्कारेश्वर और अमलेश्वर (अमरेश्वर)-के दो पृथक्-पृथक् लिङ्ग हैं, परंतु ये एक ही लिङ्गके दो स्वरूप हैं।

५-केदारेश्वर—शिवपुराणके अनुसार धर्मपुत्र नर-नारायण जब बदरिकाश्रममें जाकर पार्थिव पूजन करने लगे तो उनसे प्रार्थित शिवजी वहाँ प्रकट हुए। कुछ समय पश्चात् एक दिन शिवजीने प्रसन्न होकर उनसे वर



माँगनेको कहा तो लोककल्याणार्थ नर-नारायणने उनसे प्रार्थना की कि हे देवेश! यदि आप हमसे प्रसन्न हैं तो स्वयं अपने रूपसे पूजाके निमित्त सर्वदा यहाँ स्थित रहें। तब उन दोनोंके ऐसा कहनेपर हिमाश्रित केदार नामक स्थानमें साक्षात् महेश्वर ज्योतिःस्वरूप हो स्वयं स्थित हुए। उनका वहाँ केदारेश्वर नाम पड़ा। वर्तमान समयमें श्रीकेदारनाथ हिमालयके केदार नामक शृङ्गपर स्थित हैं।

६-भीमशङ्कर—श्रीशिवमहापुराणमें ऐसी कथा है कि पूर्व समयमें भीम नामक एक बड़ा ही वीर राक्षस था। वह कुम्भकर्ण और कर्कटी नामक राक्षसीसे उत्पन्न हुआ था। वह श्रीहरि विष्णुका विरोधी था; क्योंकि उसके पिता कुम्भकर्णका वध श्रीरामने किया था। अतएव वह श्रीहरिको पीड़ा देनेके निमित्त उग्र तप करने लगा। ब्रह्माजीसे वर पाकर उसने समस्त पृथ्वीको अपने अधीन कर लिया। समस्त देवता शिवजीकी शरणमें गये एवं अपनी वेदना प्रकट की। उधर राक्षस भीमने कामरूप देशके राजा सुदक्षिणपर आक्रमण किया। कामरूपेश्वर सुदक्षिणका शिवमें पूर्ण विश्वास था। उन्होंने भगवान् सदाशिवकी शरण ली और पार्थिव लिङ्ग बनाकर उसका पूजन प्रारम्भ किया। उस राक्षस भीमने कामरूपेश्वरपर प्रहार करना चाहा, परंतु उसकी तलवार पार्थिव लिङ्गतक पहुँची भी न थी कि उस लिङ्गसे साक्षात्



शिव प्रकट हो गये और उन्होंने हुङ्कारमात्रसे राक्षस भीमका सेनासहित संहार कर दिया। वे वहाँ भीमशङ्कर नामक ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें प्रतिष्ठित हुए। सम्प्रति यह स्थान मुम्बईसे पूर्व और पूनासे उत्तर भीमानदीके किनारे सह्यपर्वतपर है। कुछ लोग इसे आसाममें बतलाते हैं। श्रीशङ्कराचार्यजीने इनकी स्तुति करते हुए कहा है—

यं डाकिनीशाकिनिकासमाजे
निषेव्यमाणं पिशिताशनैश्च।
सदैव भीमादिपदप्रसिद्धं
तं शङ्करं भक्तहितं नमामि॥

अर्थात् जो डाकिनी और शाकिनीवृन्दमें प्रेतोंद्वारा सदैव सेवित होते हैं, उन भक्तहितकारी भगवान् भीमशङ्करको मैं प्रणाम करता हूँ।

७-विश्वेश्वर—सभी देवताओंकी साधना-स्थली है काशी। आद्य भगवत्पाद श्रीशङ्कराचार्यजीने भगवान् विश्वेश्वरकी स्तुतिमें कहा है—

सानन्दमानन्दवने वसन्त-
मानन्दकन्दं हतपापवृन्दम्।
वाराणसीनाथमनाथनाथं
श्रीविश्वनाथं शरणं प्रपद्ये॥

अर्थात् जो स्वयं आनन्दकन्द हैं और आनन्दपूर्वक आनन्दवन (काशीक्षेत्र)-में वास करते हैं, जो पापसमूहका नाश करनेवाले हैं, उन अनाथोंके नाथ काशीपति श्रीविश्वनाथकी शरणमें मैं जाता हूँ।

भगवान् शिवने अपनी प्रेरणासे समस्त तेजोंके सारस्वरूप पाँच कोशका एक सुन्दर नगर निर्माण किया। जहाँपर भगवान् विष्णुने सृष्टि रचनेकी इच्छासे शिवजीका चिरकालतक ध्यान किया, किंतु शून्य छोड़ उन्हें कुछ भी भान न हुआ। इस अद्भुत दृश्यको देखकर उन्होंने अपने शरीरको जोरसे हिलाया तो उनके कर्णसे एक मणि गिरी, जिससे उस स्थानका नाम 'मणिकर्णिका' तीर्थ पड़ा। फिर मणिकर्णिकाके उस पञ्चक्रोश विस्तारवाले सम्पूर्ण मण्डलको शिवजीने अपने त्रिशूलपर धारण किया। उन्होंने इस पञ्चक्रोशीको ब्रह्माण्डमण्डलसे पृथक् रखा। यहींपर उन्होंने अपने मुक्तिदायक विश्वेश्वर नामक ज्योतिर्लिङ्गको स्वयं स्थापित किया है। सम्प्रति यह स्थान उत्तरप्रदेशमें वाराणसी (काशी)-में स्थित है।

८-त्र्यम्बकेश्वर—एक समय जब गौतमऋषिने अपने शिष्योंको जल लानेके लिये भेजा तब वे पात्र लेकर गर्तपर गये। उसी समय जल लेनेके लिये आयी हुई ऋषिपत्नियोंने उन शिष्योंको देखकर जल लेनेका विरोध किया और कहा कि पहले हमलोग भर लेंगी, तब तुम दूरसे भरना। तब उन शिष्योंने लौटकर सारा हाल ऋषिपत्नीसे कहा। ऋषिपत्नी शिष्योंको समझाकर स्वयं उनके साथ जल लेनेको गयीं और गौतमऋषिको दिया। ऋषि-पत्नियोंने क्रोधवशात् उपर्युक्त सम्पूर्ण वृत्तान्त असत्य रूपमें अपने-अपने पतियोंसे कहा। फलस्वरूप ऋषियोंने गणेशार्चन कर गौतमऋषिको आश्रमसे बहिष्कृत करनेका वर माँगा। भक्तपराधीन गणेशजीको उनकी बात माननी पड़ी। गौतमजी इस वृत्तान्तसे अज्ञात थे। गणेशजीने केदारतीर्थपर जौ-भक्षण करनेके लिये एक दुर्बल गौका रूप धारण किया। गौतमजीने एक तृणके स्तम्भसे उस गायका निवारण किया, जिससे वह गाय मृत्युको प्राप्त हुई। फलस्वरूप गोहत्याका आरोप लगाकर उन ऋषियोंने सपरिवार गौतममुनिको वहाँसे बहिष्कृत किया। गोहत्या-निवारणार्थ अन्य ऋषियोंने गङ्गाजीको लाकर स्नान करने एवं कोटि संख्यामें पार्थिव लिङ्ग बनाकर शिवार्चन करनेकी बात कही। उक्त क्रिया करनेपर शिवजी वहाँ प्रकट हुए, तब गौतमने पापनिवारणार्थ गङ्गासहित महादेवजीसे वहाँ निवास करनेका आग्रह किया। यह



सुनकर शिवजी तथा गङ्गाजी वहाँ स्थित हुए। गङ्गाजी 'गौतमी' नामसे तथा शिवजीका लिङ्ग 'त्र्यम्बक' नामसे विख्यात हुआ। सम्प्रति यह ज्योतिर्लिङ्ग महाराष्ट्र प्रान्तके नासिक जिलेमें ब्रह्मगिरिके निकट गोदावरीनदीके तटपर है। श्रीशङ्कराचार्यजीने त्र्यम्बकेश्वरकी स्तुति करते हुए कहा है—

सह्याद्रिशीर्षे विमले वसन्तं
गोदावरीतीरपवित्रदेशे ।
यद्दर्शनात्पातकमाशु नाशं
प्रयाति तं त्र्यम्बकमीशमीडे ॥

जो गोदावरीतटके पवित्र देशमें सह्यपर्वतके विमल शिखरपर वास करते हैं, जिनके दर्शनसे तुरंत ही पातक नष्ट हो जाता है, उन श्रीत्र्यम्बकेश्वरका मैं स्तवन करता हूँ।

९-वैद्यनाथ—हार्दपीठ वैद्यनाथधाम तो द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें सर्वश्रेष्ठ माना गया है। पद्मपुराणमें कहा गया है—

'हार्दपीठस्य सदृशो नास्ति ब्रह्माण्डमण्डले।'

आद्य जगद्गुरु शङ्कराचार्यजीने वैद्यनाथ ज्योतिर्लिङ्गकी स्तुति करते हुए कहा है—

पूर्वोत्तरे प्रज्वलिकानिधान
सदा वसन्तं गिरिजासमेतम्।
सुरासुराधितपादपद्मं
श्रीवैद्यनाथं तमहं नमामि॥

अर्थात् जो पूर्वोत्तर दिशामें चिताभूमि (वैद्यनाथधाम)-के भीतर सदा ही गिरिजाके साथ वास करते हैं, देवता और असुर जिनके चरणकमलोंकी आराधना करते हैं, उन श्रीवैद्यनाथको मैं प्रणाम करता हूँ।

ऐसा प्रसङ्ग आया है कि राक्षसाधिप रावणने कैलास-पर्वतपर जाकर शिवजीकी आराधना की और शीतकालमें आकण्ठ जलमें तथा ग्रीष्मकालमें पञ्चाग्निके बीच कठोर तप करना प्रारम्भ किया। रावणने शिवजीको प्रसन्न करनेके लिये अपने एक-एक कर नौ सिर काट डाले, जब एक सिर बचा रहा, तब शिवजी प्रसन्न हो गये। शिवजीको प्रसन्न हुआ जानकर रावणने उनसे यह प्रार्थना की कि हे प्रभो! मैं आपको अपनी नगरी लङ्कामें ले चलना चाहता हूँ। मैं आपकी शरणमें हूँ। भगवान् शिवने कहा—अच्छा, तुम्हारी यही इच्छा है तो तुम मेरे लिङ्गको परम भक्तिके साथ अपने साथ ले चलो, पर यह ध्यान रखना कि यदि तुम कहीं बीचमें इसे पृथ्वीपर रख दोगे तो यह वहीं स्थिर हो जायगा। तदनन्तर जब रावण ज्योतिर्लिङ्ग लेकर लङ्काके लिये चला तो वह प्रबल लघुशङ्काके वेगसे पीड़ित होने लगा। एक गोप बालकको महालिङ्ग देकर वह लघुशङ्का करने लगा, परंतु उस बालकने भी अधिक देरतक लिङ्गका भार न सह सकनेके कारण उसे पृथ्वीपर रख दिया और उसी समयसे वह लिङ्ग वैद्यनाथ ज्योतिर्लिङ्ग नामसे विख्यात हुआ। सम्प्रति यह महालिङ्ग झारखण्ड प्रान्तके संथाल परगनामें स्थित है, यहींपर भवानी सतीका हृदय भी गिरा है, अत: यह ५१ शक्तिपीठोंमें एक है। संसारमें किसी मन्दिरके ऊपरमें पञ्चशूल विराजमान नहीं है, लेकिन यहाँ यह विशेषता पायी जाती है। यहाँ ज्योतिका वाचक चन्द्रकान्तमणि आज भी विद्यमान है।

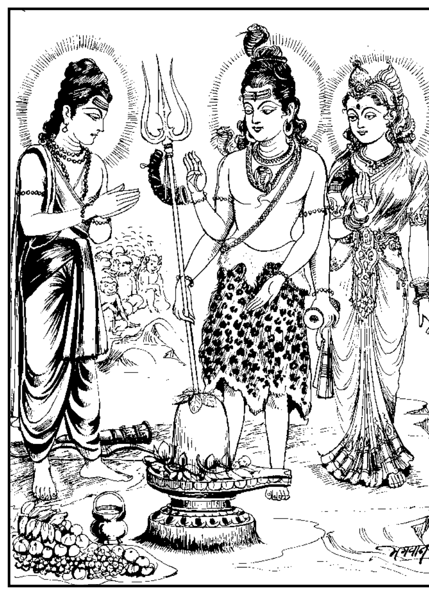
१०-नागेश—पश्चिम समुद्रतटपर स्थित एक वनमें दारुक नामका एक बलवान् राक्षस अपनी पत्नी दारुका तथा अन्य राक्षसोंके साथ रहता था। एक बार बहुत-सी नावें उधर आ निकलीं, जो मनुष्योंसे भरी थीं। राक्षसोंने उनमें बैठे हुए सब लोगोंको पकड़ लिया और बेड़ियोंसे बाँधकर कारागारमें डाल दिया। उनमें सुप्रिय नामसे प्रसिद्ध एक वैश्य था, जो उस दलका मुखिया था। वह बड़ा सदाचारी, भस्म-

रुद्राक्षधारी तथा भगवान् शिवका परम भक्त था। एक समय दारुक राक्षसके सेवकने उस वैश्यके आगे शिवजीका सुन्दर रूप देखा तो दौड़कर उसने सब चरित्र अपने स्वामीको सुनाया। वृत्तान्त सुनकर दारुक वैश्यसे समाचार पूछने लगा और कहने लगा कि सत्य-सत्य बतलाओ नहीं तो मैं तुझे मार डालूँगा। वैश्यने कहा—मैं कुछ नहीं जानता। इसपर क्रुद्ध होकर दारुकने उसे मारनेकी आज्ञा दी। वैश्य शिवजीका स्मरण कर उनके नामको रटने लगा, उससे प्रसन्न हो सदाशिव पाशुपत अस्त्रसे स्वयं राक्षसोंको मारने लगे। दारुककी सेना मारी गयी। इस प्रकार राक्षसोंको मारकर शिवजीने उस वनमें चारों वर्णोंको रहनेका अधिकार दिया और यह भी कहा कि यहाँ राक्षस न रहें। यह देखकर दारुका नामवाली राक्षसीने वंश-रक्षार्थ माँ भवानीकी वन्दना की, पुनः पार्वतीजीने शिवजीसे आग्रह किया तो शिवजीने भी सहमति प्रकट की। फिर उन्होंने शिवजीसे कहा—इस युगके



अन्ततक तामसिक सृष्टि रहेगी। दारुका राक्षसी मेरी शक्ति है। यह राक्षसोंमें वरिष्ठ होकर राज्य करेगी। इस प्रकार शिव-पार्वती परस्पर वार्तालाप करते हुए वहीं स्थित हो गये, भगवान्का वहाँ 'नागेश्वर' नाम पड़ा। वर्तमानमें यह स्थान बड़ौदा राज्यान्तर्गत गोमती द्वारकासे ईशानकोणमें बारह-तेरह मीलकी दूरीपर है। कोई-कोई निजाम हैदराबाद राज्यान्तर्गत औढ़ा ग्राममें स्थित लिङ्गको ही 'नागेश्वर' ज्योतिर्लिङ्ग मानते हैं। कुछ लोगोंके मतसे अल्मोड़ासे १७ मील उत्तर-पूर्वमें स्थित यागेश (जागेश्वर) शिवलिङ्ग ही नागेश ज्योतिर्लिङ्ग है।

११-रामेश्वर—त्रेतायुगमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सीताहरणके पश्चात् सीताकी खोज करनेके क्रममें सुग्रीव-हनुमानादिके सहयोगसे लङ्कापर चढ़ाई करनेके पूर्व वानरी सेना लेकर समुद्रके किनारे पहुँचे। उसी समय उन्हें प्यास लगी। उन्होंने अनुज लक्ष्मणसे जल माँगा। लक्ष्मणने वानरोंको जल लानेकी आज्ञा दी। वानर जल लेकर आये। श्रीरामने ज्यों ही जल पीना चाहा, त्यों ही उन्हें स्मरण हो आया कि मैंने अभीतक शिवार्चन नहीं किया है फिर उन्होंने पार्थिव लिङ्ग बनाकर षोडशोपचारविधिसे शिवपूजन किया। शिवजी प्रसन्न हुए एवं वर माँगनेको कहा। श्रीरामने



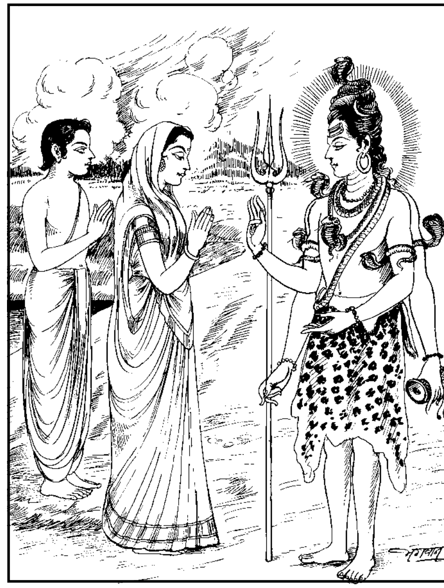
लोककल्याणार्थ शिवजीको इस स्थानपर निवास करनेके लिये कहा। तब वहाँ शिवजी 'रामेश्वर' नामसे विख्यात हुए। वर्तमान समयमें यह ज्योतिर्लिङ्ग तमिलनाडु (मद्रास) प्रान्तके रामनद जिलेमें है। श्रीशङ्कराचार्यजीने रामेश्वर ज्योतिर्लिङ्गकी स्तुतिमें कहा है—

सुताम्रपर्णीजलराशियोगे
निबध्य सेतुं विशिखैरसंख्यैः।
श्रीरामचन्द्रेण समर्पितं तं
रामेश्वराख्यं नियतं नमामि॥

अर्थात् जो भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा ताम्रपर्णी और सागरके संगममें अनेक बाणोंद्वारा पुल बाँधकर स्थापित किये गये हैं, उन श्रीरामेश्वरको मैं नियमसे प्रणाम करता हूँ।

१२-घुश्मेश्वर (घृष्णेश्वर)—दक्षिण दिशामें देव नामक पर्वत है। उसपर सुधर्मा नामक वेदज्ञ ब्राह्मण सपत्नीक निवास करते थे। दुर्भाग्यवश उनकी प्रथम पत्नी सुदेहासे उनको कोई पुत्र न हुआ। कालक्रमानुसार घुश्मासे विवाह कर उन्हें पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। सुदेहा दु:खित रहने लगी। कुछ समय बाद सुदेहाने पुत्रमारणरूप पैशाचिक कर्म किया, किंतु शिवभक्ता घुश्माने शोक रहनेपर भी नित्य पार्थिव पूजन नहीं त्यागा। पूजनके पश्चात् जब वह पार्थिव लिङ्गका विसर्जन करने तालाबपर गयी तो शिवकृपासे उसका पुत्र जीवित मिला। भगवान् शिवने घुश्माके इस भक्तिभावसे प्रसन्न होकर कहा—हे घुश्मे! वर माँगो। किंतु नतमस्तक, करबद्ध घुश्माने कहा—हे देवेश! सुदेहा मेरी बहन है, अत: आप उसकी रक्षा करें। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो आप यहाँ लोककल्याणार्थ सर्वदा निवास करें। इसपर वहाँ भगवान् शिव 'घुश्मेश्वर' के नामसे प्रख्यात हुए। सम्प्रति यह ज्योतिर्लिङ्ग दौलताबादसे बारह मील दूर बेरूल नामक ग्रामके पास है। श्रीशङ्कराचार्यजीने इनकी स्तुतिमें कहा है—

इलापुरे रम्यविशालकेऽस्मिन्
समुल्लसन्तं च जगद्वरेण्यम्।



वन्दे महोदारतरस्वभावं
घृष्णेश्वराख्यं शरणं प्रपद्ये॥

अर्थात् जो इलापुरके सुरम्य मन्दिरमें विराजमान होकर समस्त जगत्के आराधनीय हो रहे हैं, जिनका स्वभाव बड़ा ही उदार है, उन घृष्णेश्वर नामक ज्योतिर्मय भगवान् शिवकी शरणमें मैं जाता हूँ।

रुद्राष्टक

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं। विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं॥
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं। चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं॥
निराकारमोंकारमूलं तुरीयं। गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं॥
करालं महाकाल कालं कृपालं। गुणागार संसारपारं नतोऽहं॥
तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं। मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं॥
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा। लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा॥
चलत्कुण्डलं भ्रू सुनेत्रं विशालं। प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं॥
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं। प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि॥
प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं। अखंडं अजं भानुकोटिप्रकाशं॥
त्रय: शूल निर्मूलनं शूलपाणिं। भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं॥
कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी। सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी॥
चिदानंद संदोह मोहापहारी। प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी॥
न यावद् उमानाथ पादारविन्दं। भजंतीह लोके परे वा नराणां॥
न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं। प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं॥
न जानामि योगं जपं नैव पूजां। नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं॥
जरा जन्म दु:खौघ तातप्यमानं। प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो॥
रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये। ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भु: प्रसीदति॥

आदिशक्ति श्रीजगदम्बाके विविध लीलावतार

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

जो देवी सभी प्राणियोंमें शक्तिरूपसे स्थित हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है।

[यह सम्पूर्ण जगत् सच्चिदानन्दमयी आदिशक्ति पराम्बा भगवतीका ही लीला-विलास है। वे ही इसे अपनी लीलासे उद्भूत करती हैं, इसकी रक्षा करती हैं, पालन-पोषण करती हैं और अन्तमें पुनः लीलाका संवरण कर सब कुछ अपनेमें लीन कर लेती हैं। सृष्टि और तिरोधानका यह क्रम अनन्त काल से इसी प्रकार चलता आया है और आगे भी चलता रहेगा। पराम्बा श्रीजगदम्बा भक्तोंके कल्याणके लिये अनेक नाम-रूपोंमें अवतार धारण करती हैं और दुष्टोंसे जगत्की रक्षा करती हैं। उनका स्वयंका कहना है—'इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति। तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्॥' *भगवतीकी महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती आदि तीन अवतार-लीलाएँ तो अतिप्रसिद्ध ही हैं; साथ ही वे कभी सती बन जाती हैं और जीवके अहंकारका विनाश करती हैं। कभी वे पार्वती बनकर भगवान् शिवकी अर्धाङ्गिनी बनकर कृपाशक्तिका विस्तार करती हैं। एक बार घोर अकाल पड़ गया, सर्वत्र हाहाकार छा गया, तब भक्तोंका दुःख दूर करनेके लिये उन्होंने अपनी सौ आँखें बना लीं और वे 'शताक्षी' कहलायीं। उन आँखोंसे करुणाकी अजस्र धारा प्रवाहित होने लगी। एक बार उन्होंने शाककी वर्षा करके अकाल दूर किया और वे 'शाकम्भरी' कहलायीं। ऐसे ही अरुण नामक असुरसे छुटकारा दिलानेके लिये वे 'भ्रामरी' बन गयीं। देवताओंको अपने बलका बड़ा अभिमान था। उसी अभिमानको दूर करनेके लिये उन्होंने ज्योतिरूपमें अवतार धारण किया। 'रक्तदन्तिका' और 'भीमा' भी उन्हींके लीलाविग्रह हैं; काली, तारा आदि दस महाविद्याओंके रूपमें देवीका ही प्राकट्य हुआ है। नवदुर्गा, नवगौरी तथा मातृकाओंके रूपमें देवीने ही अवतार लिया है। उनकी अवतार-कथाएँ अत्यन्त मनोरम, करुणासे परिपूर्ण तथा श्रवण करनेसे कल्याण करनेवाली हैं। यहाँ संक्षेपमें भगवतीके कुछ लीला-चरित्र प्रस्तुत हैं—सम्पादक]*

(१) अद्भुत उपकर्त्री सती

(श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

आदिशक्ति 'सद्'-रूप, 'ज्ञान'-रूप और 'आनन्द'-रूप हैं। जैसे अन्धकार सूर्यपर कभी कोई प्रभाव नहीं डाल सकता, वैसे ही आदिशक्तिमें अणुमात्र भी अज्ञान सम्भव नहीं है, फिर भी दयामयी आदिशक्तिने जीवोंको भगवान् और उनके प्रेमकी ओर उन्मुख करनेके लिये सती-अवतारमें अज्ञताका अभिनय किया। उन्होंने वह लीला विश्वको 'श्रीरामचरितमानस' प्रदान करने और ब्रह्मकी प्रमुखता दिखलानेके लिये की है। इसीके लिये उन्होंने सती-अवतारमें लाञ्छन सहा, प्रताड़ना सही और शरीरको त्यागकर प्रियतमका असह्य बिछोह भी सहन किया। यह है माताकी बच्चोंके प्रति दयालुता, ममता और वत्सलता।

दक्षप्रजापति ब्रह्माके मानस पुत्र थे। वे पिताकी आज्ञासे सृष्टिके क्रमको बढ़ानेमें व्यस्त रहते थे। इसी बीच उन्हें पिताकी दूसरी आज्ञा मिली कि वे शक्तिके अवतारके लिये तप करें। दक्षने ब्रह्माकी इस आज्ञाको भी शिरोधार्य किया। वे कठिन तपमें संलग्न हो गये—कभी सूखा पत्ता चबा लेते, कभी जल पी लेते और कभी हवा पीकर ही रह जाते। प्रत्येक परिस्थितिमें जगदम्बाकी पूजा निरन्तर चलती रहती थी। तीन हजार दिव्य वर्ष बीतनेपर आदिशक्तिने दक्षको दर्शन दिया।



वे सिंहपर बैठी थीं और उनके शरीरकी कान्ति श्याम थी। उनके चार भुजाएँ थीं। उनका श्रीमुख अत्यन्त मनोरम था। वे आह्लादक प्रकाशसे प्रकाशित हो रही थीं। उस समय कण-कण आह्लादसे थिरक रहा था। अद्भुत छटा थी।

जगदम्बाका दर्शन पाकर दक्षने अपनेको धन्य माना और भलीभाँति प्रणाम कर उनकी स्तुति की। जगदम्बाने कहा—'दक्ष! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम जो चाहे माँग लो।' दक्षने कहा—'देवि! मेरे स्वामी शंकर हैं। वे रुद्ररूपसे अवतार ले चुके हैं। आप उनकी शक्ति हैं, अत: अवतार ग्रहण कर अपने रूप-लावण्यसे उन्हें मोहित करें।' आदिशक्तिने कहा—'मैं तुम्हारी पत्नीके गर्भसे पुत्रीके रूपमें अवतार लूँगी; किंतु एक शर्त है, जिसे तुम ध्यानमें रखना। वह यह है कि जब मेरे प्रति तुम्हारा आदर घट जायगा, तब मैं अपना शरीर त्याग दूँगी।' इतना कहकर वे अन्तर्धान हो गयीं।

जब आदिशक्ति दक्षप्रजापतिकी पत्नीके गर्भमें आयीं, तब उनके शरीरसे पुण्यमय आभा निकलने लगी और चित्तमें निरन्तर प्रसन्नता-ही-प्रसन्नता छायी रहती थी। वीरणीमें आदिशक्तिका आवास जानकर वहाँ ब्रह्मा और विष्णु आये। उनके साथ सम्पूर्ण देव और ऋषि-मुनि भी थे। सभीने प्रेमार्द्र-वाणीसे भगवती शक्तिकी स्तुति की और उन्हें प्रणाम किया। उन लोगोंने दक्ष और वीरणीकी भी भूरि-भूरि प्रशंसा की। जब गुणोंसे युक्त सुहावना समय आया, तब शक्तिने अपनेको प्रकट किया। उस समय दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं, शीतल-मन्द-सुगन्ध हवा बहने लगी, आकाश स्वच्छ हो गया और पुष्पवृष्टि होने लगी। सब जगह सुख-शान्ति छा गयी। दक्षने शक्तिका वही रूप देखा, जिसे वरदानके समय देखा था। उन्होंने हाथ जोड़कर देवीको प्रणाम किया और स्तुति की।



तब स्तुतिसे प्रसन्न हो भगवती शक्ति इस प्रकार बोलीं—'प्रजापति दक्ष! तुमने मेरे अवतारके लिये तप किया था, अत: मैं तुम्हारी पुत्रीके रूपमें अवतीर्ण हो गयी हूँ। अब तुम तपस्याके फलको ग्रहण करो।' ऐसा कहकर शक्ति नवजात शिशु बनकर रोने लगीं। शिशुका रोना सुनकर चारों ओर हर्ष छा गया। स्त्रियाँ दौड़ी आयीं। बच्चीका लुभावना रूप देखकर सब ठगी-सी रह गयीं। जय-जयकारकी ध्वनिसे सारा नगर गूँजने लगा। बाजे बजने लगे। कलकण्ठोंकी स्वर-लहरियाँ वातावरणमें तैरने लगीं। दक्षने कुलोचित वैदिक आचरण सम्पन्न किया। गौ, घोड़े, हाथी, सोना, वस्त्र आदिका दान दिया गया।

दक्षने कन्याका नाम 'सती' रखा। लोगोंने अपनी-अपनी रुचिके अनुसार उसके अलग-अलग नाम रखे। जो देखता, उसके मनमें अपनापन जाग उठता। वह शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी कलाकी तरह बढ़ती हुई सबके चित्तको आह्लादित करने लगी। जैसे-जैसे बच्ची बढ़ती गयी, वैसे-वैसे शिवके प्रति उसका अनुराग भी बढ़ता गया। सखियोंके बीच भी वह छिपाये न छिपा। उसके ओठोंपर शंकरके नाम थे, तो अन्तरमें उनकी करुण पुकार थी। शिवके प्रेममें डूबी हुई वह; कभी रोती तो कभी हँसती। सखियाँ उसपर श्रद्धा रखने लगीं। इतना प्यार करने लगीं कि वे अपने शरीरको भुलाकर सतीके शरीरको ही अपना शरीर मानने लगीं।

एक दिन ब्रह्माजी नारदके साथ प्रजापति दक्षके घर पधारे। उस समय सती विनम्र-भावसे पिताके पास ही खड़ी थीं। उनके उत्कट सौन्दर्यसे वहाँका वातावरण उद्भासित हो रहा था। वे तीनों लोकोंके सौन्दर्यका सार प्रतीत हो रही थीं। जब आदर-सत्कारके पश्चात् ब्रह्मा और नारद बैठ गये, तब उन्होंने सतीसे कहा कि 'तुम शंकर भगवान्‌को चाहती ही हो, अत: उन्हींको पति बनाओ। भगवान् शंकर भी तुम्हारे सिवा और किसीको कभी पत्नी नहीं बना सकते।'

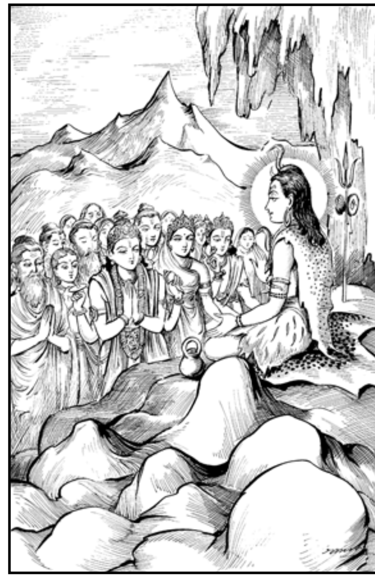
यह सुनकर सतीकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। दक्ष भी प्रसन्न हुए, परंतु उन्हें यह चिन्ता व्याप्त हो गयी कि शंकरको ढूँढ़ा कहाँ जाय, वे कहाँ मिल सकेंगे? मिलनेपर भी उन्हें विवाहके लिये राजी कर सकना कठिन था! वे इसी उधेड़-बुनमें पड़े रहते। इसी बीच एक दिन सतीने पितासे शंकरकी प्राप्तिके लिये तपस्याकी आज्ञा माँगी।

सतीका अनुराग अब मीठी वेदना बनकर उन्हें बेचैन करने लगा था। वे प्रतिक्षण शंकरका सांनिध्य चाहने लगी थीं। तपस्यासे मानसिक सांनिध्य तो मिल ही सकता था, साथ ही शारीरिक सांनिध्य भी सम्भव था। जिनके लिये तिल-तिलकर जला जा रहा था, वे औढरदानी कबतक उदासीन बने रह सकते थे?

माता-पिता स्वयं चिन्तित तो थे ही। कोई अन्य मार्ग न देखकर उन्होंने अपनी लाडली बेटीको तपस्याके कठोर मार्गपर चलनेकी आज्ञा दे दी। घरपर ही सारी सामग्री जुटा दी गयी। अब सती संसारसे दूर हो गयी थीं, केवल वे थीं और थीं उनकी सखियाँ। उन्होंने नन्दाव्रतका प्रारम्भ कर दिया। अब पूज्य था, पूजा थी और पुजारिन थी। सखियाँ तो पुजारिनकी ही अङ्ग थीं। वे अनुरागके बहावमें पूजाका क्रम सँभालती थीं। नन्दाव्रतके समाप्त होते-होते त्रिपुटी भी समाप्त हो गयी। अब न पूजा थी और न पुजारिन; बस, पूज्य-ही-पूज्य रह गया था। सती आराध्यके ध्यानमें सब कुछ भुला बैठी थीं। वे निष्कम्प दीपकी लौकी भाँति प्रदीप्त हो रही थीं। पल बीता, घड़ी बीती, दिन बीता, रात बीती, मास बीते, वर्ष बीते; किंतु सती निश्चल बैठी रहीं। काल उनके लिये सापेक्ष हो गया था।

यह पवित्र चर्चा तीनों लोकोंमें फैल चुकी थी। सभी देवता एवं ऋषि विष्णु और ब्रह्माको आगे कर इस अद्भुत कर्मको देखनेके लिये सतीके पास पहुँचे। देवताओं और ऋषियोंने हाथ जोड़कर सतीकी स्तुति की। विष्णु और ब्रह्माके हृदयमें प्रीति उमड़ आयी। सभी आश्चर्यचकित थे तथा सतीका सहयोग करना चाहते थे। वे सतीको माथा टेककर जैसे आये थे, वैसे लौट गये और भगवान् शंकरके पास पहुँचे। सतीने न तो उनका आना जाना और न जाना। वे वैसे ही निश्चेष्ट बैठी रहीं। उनके अङ्ग-अङ्गसे प्रेमका प्रभावक रस वैसे ही झर रहा था।

देवता और ऋषि जब शंकरके पास पहुँचे, तब उनके आगे लक्ष्मीके साथ विष्णु और सरस्वतीके साथ ब्रह्मा थे। वहाँ सामूहिक स्तुति की गयी। लक्ष्मी और सरस्वतीको



आगे देख शंकरने सबको यथोचित सम्मान दिया और आनेका कारण पूछा। विष्णुका निर्देश पाकर ब्रह्माने कहा—'आप, विष्णु और मैं वस्तुतः एक ही हैं। सदाशिवने कार्यके भेदसे हमें तीन रूपोंमें व्यक्त किया है। यदि कार्यके भेदोंको हम निष्पन्न न करेंगे तो हमारे रूपके भेद भी व्यर्थ हो जायँगे। अतः लोक-हितका एक ऐसा कार्य आ पड़ा है, जिसकी सिद्धिके लिये आप भी तदनुरूप कन्याके साथ विवाह कर लें। विष्णु भी सपत्नीक हैं और मैं भी। विश्वके हितके लिये आप भी सशक्तिक हो जायँ।'

ब्रह्माकी बात सुनकर भगवान् शिवके मुखपर मुसकराहट बिखर गयी और वे बोले—'तुम दोनों मेरे बहुत ही प्रिय हो, किंतु मेरे लिये विवाह उपयुक्त नहीं है; क्योंकि मैं निवृत्ति-मार्गपर चल रहा हूँ। इसीलिये मैंने अपवित्र और अमङ्गल वेष भी बना रखा है। ऐसी स्थितिमें विवाह कैसे उपयुक्त हो सकता है? फिर भी तुम्हारी बात तो रखनी ही पड़ेगी। इसके लिये मैं कुछ शर्तें रख रहा हूँ, जिससे मेरी आत्मारामता भी चलती रहे और वैवाहिक जीवनका भी उपभोग हो। पहली शर्त यह है कि कन्या मेरी ही तरह निवृत्तिमार्गकी पथिक हो, योगिनी हो, आत्माराम हो। विश्वके हितके लिये विवाहका उपयोग करनेवाली हो। दूसरी शर्त यह है कि उस कन्याका जब मुझपर या मेरे वचनपर अविश्वास हो जायगा; तब मैं उसे त्याग दूँगा।'

शर्तें सुनकर विष्णु और ब्रह्माको प्रसन्नता हुई; क्योंकि सती इन शर्तोंके अनुकूल थीं। वे अन्तरङ्गा शक्तिका अवतार थीं, बहिरङ्गा-जैसी शक्ति उनका स्पर्श भी नहीं कर सकती थी। सूर्यके सामने अन्धकार कभी नहीं आ सकता। तब ब्रह्माने बतलाया कि 'उनकी शर्तके अनुकूल कन्या उन्होंने खोज रखी है। परब्रह्मकी पराशक्ति उमाका सतीके रूपमें अवतार हो गया है और वे आपके साथ विवाह करनेके लिये घोर तप कर रही हैं। अब आवश्यकता यह है कि आप उन्हें वरदान दे आयें; क्योंकि तप पराकाष्ठापर पहुँच चुका है।'

शंकरसे आश्वासन पाकर सभी लोग प्रसन्नताके साथ अपने-अपने लोकमें पधारे। भगवान् शंकरने सतीको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। वे अपने इष्टदेवको सामने पाकर प्रेमसे विह्वल हो गयीं। सतीने अनुभव किया कि उनमें सैकड़ों चन्द्रमाओंसे बढ़कर आह्लादकता और करोड़ों कामदेवोंसे बढ़कर सुन्दरता है। भगवान्ने वर माँगनेको कहा, किंतु लज्जाने उन्हें बोलने न दिया। उनका मुख ऊपर उठ नहीं रहा था, किंतु भगवान् सतीकी बोली सुनना चाहते थे, अतः वे फिर बोले—'सती! मैं तुम्हारे व्रतसे प्रसन्न हूँ। अब तुम इच्छानुसार वर माँग लो।' भगवान् बार-बार अपने वचन दोहरा रहे थे। उन्हें सुन-सुनकर सतीमें प्रेम-विह्वलता अत्यधिक बढ़ती जा रही थी। उनका मुँह खुल नहीं रहा था। इधर सतीके वचन सुने बिना भगवान्को भी कल नहीं पड़ रही थी। वे बोले—'सती! कुछ तो बोलो।' तब सती यह सोचकर घबरा गयीं कि अब कुछ न बोलना, उनका अनादर करना है। पर लाजवश अभिलषित वर माँग न सकीं। वे इतना ही बोलीं—'प्रभो! ऐसा वर दीजिये, जो टल न सके।' वे बार-बार इसे ही दोहराती रहीं। इस शालीनतासे भगवान् और रीझ गये। उनकी विह्वलता अब भगवान्पर ही आरूढ़ होती जा रही थी। वे बोले—'सती! तुम मेरी भार्या बन जाओ।' भगवान्ने सतीका अन्तर्द्वन्द्व मिटा दिया था, अतः अभिलषित वर पाकर उनका हृदय आनन्दके उल्लाससे भर गया। तब वे बोलीं—'प्रभो! आपने महती अनुकम्पा की है, किंतु मेरे पिताजीसे कहकर शास्त्रीय विधिके अनुसार मेरा पाणिग्रहण करनेकी कृपा करें।' शिवने प्रेमभरी दृष्टिसे सतीको देखा और कहा—'प्रिये! ऐसा ही होगा।'

भगवान् शंकर जब आश्रममें लौटे, तब अपनेको अनमना पाया। वे सतीके प्रेम-पाशमें बँध चुके थे, अतः सतीका वियोग उन्हें पीड़ित कर रहा था, विवाह व्यवधान-सा प्रतीत होने लगा था। उन्होंने ब्रह्माका स्मरण किया। तत्क्षण सरस्वतीके साथ ब्रह्मा आ उपस्थित हुए। भगवान्ने कहा—'ऐसा प्रयत्न करो कि विवाह शीघ्रतासे सम्पन्न हो जाय।'

ब्रह्माने कहा—'सब काम पहलेसे ही तैयार है। दक्ष तो कन्यादानके लिये तैयार ही बैठे हैं, फिर भी आपकी ओरसे उन्हें सूचित कर देता हूँ।' इधर दक्ष सतीकी सफलता सुनकर आनन्द और चिन्ता दोनोंके झूलेमें झूल रहे थे। चिन्ता यह थी कि शंकरको ढूँढ़ा कहाँ जाय और कैसे उन्हें प्रसन्न किया जाय। इसी बीच ब्रह्मा दक्षके पास पहुँचे। डूबतेको सहारा मिल गया। ब्रह्माने बतलाया कि 'जिस तरह सती शंकरकी आराधना कर रही थीं, वैसे ही शंकर भी सतीकी आराधना करते रहे हैं। इसलिये शीघ्र ही विवाहका शुभ कार्य सम्पन्न कर लिया जाय।'

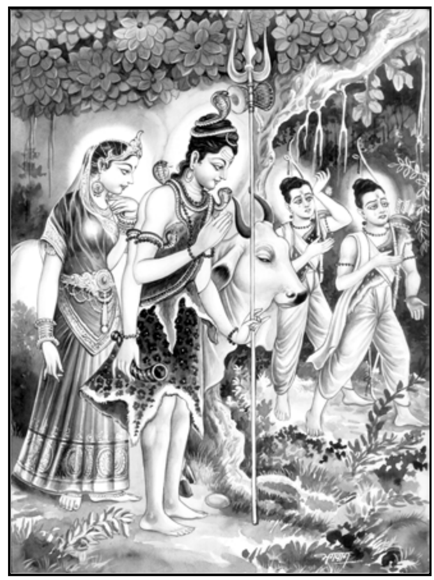
चैत्रमासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी रविवारको पूर्वा-फाल्गुनी नक्षत्रमें विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र एवं समस्त देवताओं तथा ऋषियोंके साथ भगवान् शंकरने विवाहके लिये यात्रा की। उस समय भगवान् शंकरकी इच्छासे वृषभ, व्याघ्र, सर्प आदि तरह-तरहके अलंकार बन गये। उनकी छटा निराली थी। देवताओं और प्रमथगणोंने रास्तेमें उत्सवोंका ताँता लगा दिया। प्रजापति दक्षने उत्साह और हर्षके साथ बारातकी आगवानी की। स्वयं ब्रह्माने विवाह कराया। जब दक्षने सतीका हाथ भगवान्के हाथमें दिया तो सारा वातावरण उत्फुल्ल हो उठा। नृत्यों और गीतोंकी अटूट परम्परा चल पड़ी। आनन्द-ही-आनन्द बरसने लगा। सारा विश्व मङ्गलका निकेतन बन गया।

विदाईके समय दक्षने विनय-विनम्र होकर भगवान्की स्तुति की। सतीके साथ शंकरकी शोभा देखकर लोग ठगेसे

रह गये। कैलास लौटकर भगवान् शंकरने बारातियोंको सम्मानके साथ बिदा किया। अबतक शक्ति अलग थी और शक्तिमान् भी। माता सतीका लोक-कल्याणके लिये ही अवतार हुआ था। दाम्पत्यजीवनका आदर्श प्रस्तुत कर उन्होंने ज्ञान-विज्ञानसे विश्वको आलोकित करना चाहा। एक दिन सती बोलीं—'अब मैं परमतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करना चाहती हूँ, अतः आप जिससे जीवका परम हित हो, वह बतलाइये।'

भगवान् शंकरने ज्ञान, विज्ञान, नवधा भक्ति, भक्तकी महिमा आदि विषयोंका प्रतिपादन किया। इस तरह सतीने तन्त्र, मन्त्र, योग आदि साधनोंको जीवोंके लिये सुलभ करा दिया; किंतु उनके अवतारका मुख्य उद्देश्य अभी पूरा नहीं हुआ था। उन दिनों सतीके पिता दक्ष तथा भृगु आदि महर्षि यागको ही प्रमुख स्थान देते थे। याग वैदिक कर्म है, अतः आवश्यक है। इस तरह ज्ञानकाण्ड भी वैदिक है, अतः वह भी आवश्यक है। प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग—दोनों वेदोक्त हैं। अधिकार-विशेषसे दोनों आवश्यक हैं। वर्णधर्ममें दोनोंकी उपयोगिता है। पर प्रवृत्तिमार्गको ही मार्ग मानना और निवृत्तिमार्गपर रोक लगाना बुरा है। दक्ष आदि एकदेशी विचारके हो गये थे। वे वेदके दूसरे अङ्गोंपर कुठाराघात कर रहे थे। नारदने उनके कुछ अधिकारी पुत्रोंको निवृत्तिमार्गपर लगा दिया था। दक्ष इस बातको सहन न कर सके और उन्होंने देवर्षिको शापतक दे डाला। सबसे बड़ी बात थी भगवत्प्रेमकी उपेक्षा। भगवान् प्रेमस्वरूप हैं और इसी प्रेमके लिये वे सृष्टिकी रचना करते हैं, सगुण बनते हैं, अवतार लेते हैं। इस तथ्यको समझानेके लिये सतीका अवतार हुआ था। आत्मदान देकर और दूसरा जन्म धारणकर उन्होंने यह प्रकाश हमें दिया। धन्य है उनकी दयालुता! वे इसके लिये इतना अज्ञ बन गयीं, उन्होंने जडताका इतने नीचे स्तरका अभिनय किया, जो कोई करुणामयी माँ ही कर सकती है।

शिवपुराणमें वह घटना इस प्रकार है। भगवान् शंकर सतीके साथ देशाटन कर रहे थे। विश्वके हितके लिये सतीके प्रश्न और शंकरभगवान्‌के द्वारा उनका उत्तर सतत चलता जा रहा था। दण्डकारण्य पहुँचनेपर एक नया दृश्य सामने आया। रावणद्वारा हरी गयी सीताके वियोगमें भगवान् राम शोकविह्वल हो गये थे। उनकी आँखोंसे आँसूकी अजस्र धाराएँ बह रही थीं। वे पेड़-पौधोंसे सीताका पता पूछ रहे थे। लक्ष्मण भी श्रीरामके दुःखमें साथ दे रहे थे। दोनों ही शोककी मूर्ति बने हुए थे। भगवान् शंकरने जब श्रीरामको देखा, तब उनके हृदयमें इतना आनन्द उमड़ा कि वह रोके रुक न रहा था। उनकी आँखोंमें प्रेमाश्रु भर आये थे और रोम-रोम पुलकित हो उठा था। चाल डगमगा रही थी। उन्होंने 'सच्चिदानन्दकी जय हो' कहकर श्रीरामको प्रणाम किया;



किंतु अनवसर जानकर जान-पहचान नहीं की और दूसरी ओर चल दिये। श्रीरामके दर्शनका आनन्द अब भी उमड़ता ही जा रहा था।

आदिशक्तिका स्वरूप ही 'ज्ञान' है, फिर इनमें अज्ञान कैसे आ सकता है? पर उन्होंने हम जीवोंपर दया कर हमारी-जैसी अज्ञताका अभिनय किया। उधर 'आनन्द'-रूप श्रीराम 'शोक' का अभिनय कर रहे थे तो इधर हमारी चरितनायिका 'ज्ञानरूपा' होकर 'अज्ञान' का अभिनय करने लगीं। वे ऐसी 'अज्ञ' बन गयीं, जैसे कोई निकृष्ट जीव हो। उन्होंने घोर संशयालु बनकर पूछा—'नाथ! आप तो सबके लिये प्रणम्य हैं, सबसे ऊँचे हैं, पूर्ण परब्रह्म हैं? फिर आपने इस मनुष्यको प्रणाम क्यों किया और इसे सच्चिदानन्द

कैसे कहा? सेव्य सेवकको प्रणाम करे, यह उचित नहीं है। इसी तरह किसी मनुष्यको 'सच्चिदानन्द' कहना अनुचित जान पड़ता है?'

भगवान् शंकरने कहा—'देवि! ये दोनों दशरथके पुत्र हैं। छोटेका नाम लक्ष्मण और श्याम रंगवाले भाईका नाम श्रीराम है। ये साक्षात् परब्रह्मके अवतार हैं। उपद्रव इनसे दूर रहते हैं। ये केवल लीला कर रहे हैं। हमलोगोंके कल्याणके लिये इनका अवतार हुआ है।'

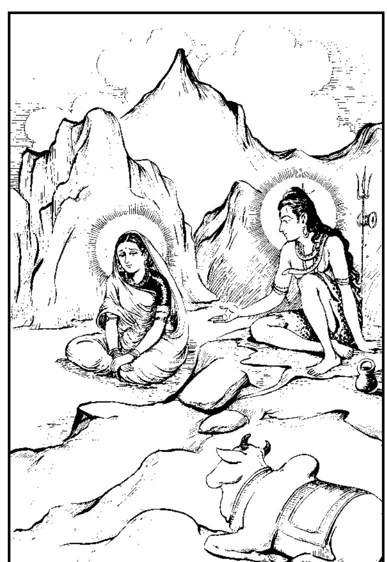
सती भगवान् शंकरके प्रत्येक वचनको ब्रह्मवाक्य मानती थीं, परंतु आज तो अभिनय करना था, अतः उन्होंने उनके कथनपर विश्वास नहीं किया। तब भगवान्‌को कहना पड़ा कि 'यदि विश्वास न होता हो तो जाकर परीक्षा कर लो।' सती सीताका रूप धारण कर श्रीरामके पास पहुँचीं। उन्हें देखते ही श्रीरामने प्रणाम किया और पूछा—'सतीजी!



इस समय शिवजी कहाँ हैं, आप अकेले इस वनमें कैसे घूम रही हैं? अपना रूप छोड़कर यह रूप क्यों धारण कर रखा है?' यह सुनते ही सतीजी पानी-पानी हो गयीं और बोलीं—'मैं आपकी प्रभुता देखना चाहती थी।' श्रीरामने सतीजीका बहुत सम्मान किया और उनकी आज्ञा लेकर वे पुनः अपने अभिनयमें लग गये। दोनों अभिनय ही तो कर रहे थे।

लौटते समय सती चिन्तित थीं और सोच रही थीं कि 'मैंने आज अपने स्वामीके वचनपर अविश्वास कैसे कर लिया?' वे अप्रसन्न-मनसे भगवान् शंकरके पास पहुँचीं। शोकने उन्हें व्याकुल बना दिया था। भगवान्‌ने पूछा—'सती! तुमने किस प्रकार परीक्षा ली थी?' सती मस्तक झुकाये उनके पास खड़ी हो गयीं। वे शोक और विषादसे भर गयी थीं। भगवान् शंकरने ध्यान लगाकर सारी बातें जान लीं। उन्हें दुःख तो हुआ; परंतु पूर्व-प्रतिज्ञाके अनुसार उन्होंने सतीका मनसे त्याग कर दिया; किंतु सतीको दुःख होगा, इसलिये त्यागवाली बात उन्हें बतलायी नहीं। उनका पहले-जैसा मीठा व्यवहार बना रहा। इतनेमें आकाशवाणी हुई—'परमेश्वर! तुम धन्य हो और तुम्हारी प्रतिज्ञा भी धन्य है!'

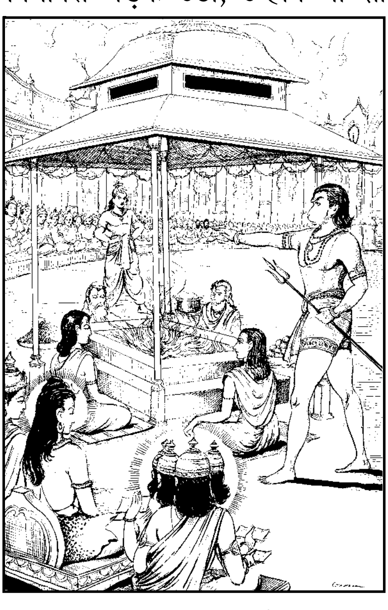
आकाशवाणी सुनकर सतीकी कान्ति मलिन हो गयी। उन्होंने पूछा—'मेरे स्वामी! आपने कौन-सी प्रतिज्ञा की है? बतलाइये।' भगवान् अप्रिय वचन कहकर सतीको दुःखित करना नहीं चाहते थे, अतः उन्होंने कहा—'देवि! इसे मत पूछो।' किंतु सतीने ध्यानसे सब बातें जान लीं। वे सिसकने और लम्बी-लम्बी साँसें खींचने लगीं। भगवान् शंकरने उन्हें ढाड़स बँधाया तथा विभिन्न कथाओंद्वारा उनका मनबहलाव किया। कैलास पहुँचकर भगवान् ध्याननिष्ठ हो गये। जब ध्यान टूटा, तब सतीको सामने प्रणाम करते पाया। भगवान्‌ने सतीको प्रेमसे आसन देकर सामने बैठाया और मनोरम कथाएँ



सुनायीं। उन्होंने इतना अच्छा व्यवहार किया कि सतीका सारा शोक दूर हो गया। वे पहलेकी तरह सुखी हो गयीं; पर शिवने अपनी प्रतिज्ञा न छोड़ी।

एक बार दक्ष सभी प्रजापतियोंके पति एवं समस्त ब्राह्मणोंके अधिपति बनाये गये थे। उन्हें बहुत बड़ा पद मिला था। वे तेजस्वी तो थे ही। सब थे, पर वे आत्मज्ञानी न थे। जो आत्माको ही न जानेगा, वह परमात्माको कैसे जान सकेगा? फलतः वे घोर अंहकारी बन गये थे। एक बार मुनियोंने प्रयागमें महान् यज्ञ किया था। इसमें ब्रह्माजी भी उपस्थित थे। भगवान् शिव भी यहाँ आ पहुँचे। उनके साथ सती भी थीं। ब्रह्मा आदिने उठकर उन्हें प्रणाम किया और उनकी स्तुति की। भगवान् शंकरका दर्शन पाकर सब लोगोंने अपनेको धन्य माना। वहाँ प्रजापतियोंके पति दक्ष भी आ पहुँचे। सबने उठकर उनका अभ्युत्थान किया। वे ब्रह्माको प्रणाम कर बैठ गये, किंतु शंकरको देखकर क्रूरतासे भर गये। अभिमानके कारण उनकी बुद्धि मारी गयी थी। अपनी कन्याके विवाहके अवसरपर उन्होंने भगवान् शंकरको प्रणाम किया था, स्तुति की थी, अपना प्रभु माना था, किंतु अहंकारवश वे इस बार पुरानी बातें भूल गये। उन्होंने भगवान् शंकरको बहुत ही बुरा-भला कहा और शापतक दे डाला कि 'आजसे तुम देवताओंके साथ भाग नहीं पाओगे।'

भृगु आदि कुछ महर्षि, जो ब्रह्माके स्थानपर कर्मकाण्डके निमित्त बैठाये गये थे, दक्षकी हाँ-में-हाँ मिलाकर भगवान् शंकरकी निन्दा करने लगे। इधर नन्दीका क्रोध अपने स्वामीके अपमानसे भड़क उठा; उन्होंने भी शाप देते हुए



कहा कि 'दक्ष! तुम्हारा सिर नष्ट हो जाय, कर्म भ्रष्ट हो जाय और तुम बकरेका मुख प्राप्त करो।' इस घटनाके बाद दक्ष शंकरके कट्टर द्रोही हो गये। वे शिवके विरुद्ध सदा रोषमें भरे रहते थे।

एक बार दक्षने यज्ञ किया। उसमें विश्वकर्माने अत्यन्त दीप्तिमान्, विशाल और बहुमूल्य भवन बनाया था। यह यज्ञ कनखलमें हुआ था। सभी देवता, ऋषि, मुनि वहाँ आये थे। सभी बुलाये गये थे; किंतु दक्षने भगवान् शंकरको नहीं बुलाया था। श्रीमद्भागवत-कल्पमें विष्णु और ब्रह्मा बुलानेपर भी नहीं गये थे; क्योंकि वे दोनों उसकी दुर्बुद्धिताका असहयोग कर रहे थे। महान् शिव-भक्त दधीचने जब देखा कि इस यज्ञमें भगवान् शंकर उपस्थित नहीं हैं, तब उन्होंने पूछा कि 'यहाँ भगवान् शंकर क्यों नहीं आये हैं? शास्त्रका कहना है कि सभी मङ्गलकार्य भगवान् शंकरकी कृपा-दृष्टिसे ही सम्पन्न होते हैं। जिनके स्वीकार करनेपर अमङ्गल भी मङ्गल हो जाता है, उनका पदार्पण इस यज्ञमें आवश्यक है। आदिशक्ति सती भी यहाँ नहीं दीखतीं। उन्हें भी साथ ही बुलाना चाहिये। यदि ये नहीं आये तो यज्ञ कैसे पूरा होगा?'

यह सुनकर दक्षने भगवान् शंकरके सम्बन्धमें कुत्सित शब्दोंका प्रयोग करते हुए कहा—'ब्रह्माके कहनेसे मैंने अपनी कन्या उसे दी। नहीं तो उस अकुलीन, माता-पितासे रहित, भूत-प्रेतोंके स्वामी, अभिमानी और कपालीको कौन पूछता? वह यज्ञ-कर्मके अयोग्य है। इसलिये उसे नहीं बुलाया और आगे भी नहीं बुलायेंगे। अतः दधीचजी! आप फिर कभी ऐसी बात मत कहियेगा। आपलोग इस यज्ञको सफल बनावें।'

दधीचने कहा—'दक्ष! शिवके बिना यह यज्ञ ही अयज्ञ हो गया। तुम चेत जाओ, नहीं तो इससे तुम्हारा विनाश हो जायगा।' ऐसा कहकर वे अकेले ही यज्ञशालासे बाहर निकल गये। भगवान् शंकरके तत्त्वको जाननेवाले अन्य लोग भी धीरे-धीरे यज्ञशालासे खिसक गये। दक्षने उनका उपहास किया और कहा कि 'अच्छा हुआ कि ये लोग चले गये। मैं इन बहिष्कृतोंको अपने यज्ञमें चाहता ही नहीं था।'

सती प्रिय सखियोंके साथ गन्धमादनपर्वतपर धारागृहमें

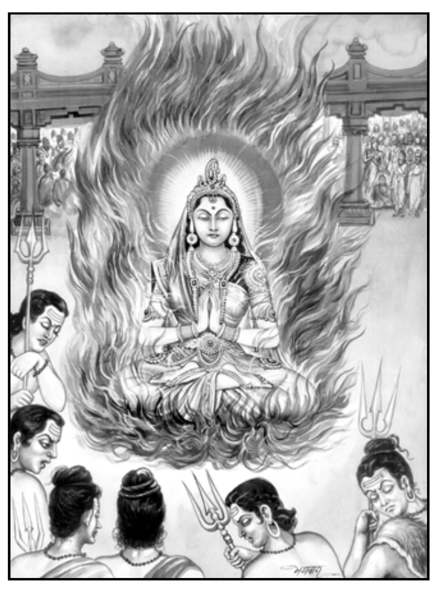
स्नान कर रही थीं। उन्होंने चन्द्रमाको रोहिणीके साथ कहीं जाते देखा। तब उन्होंने विजयासे पुछवाया कि वे लोग कहाँ जा रहे हैं? चन्द्रमाने विजयाको आदरके साथ बताया कि वे दक्षके यज्ञमें जा रहे हैं। सतीको विजयाके मुखसे अपने पिताके यहाँ होते हुए यज्ञका समाचार सुनकर बहुत विस्मय हुआ। वे सोचने लगीं कि अपने यहाँ आमन्त्रण क्यों नहीं आया? उन्होंने भगवान् शंकरसे सब समाचार कह सुनाया और प्रार्थना भी की कि हमें वहाँ चलना चाहिये; क्योंकि सम्बन्धियोंका धर्म है कि वे अपने सम्बन्धियोंसे मिलते-जुलते रहें। इससे परस्पर प्रेम बढ़ता है।

भगवान् शंकरने मधुर वाणीसे कहा—'देवि! तुम्हारे पिता मेरे द्रोही बन गये हैं। अत: वहाँ जानेसे सम्बन्ध और बिगड़ सकता है। उन्हींकी तरह जो अनात्मज्ञ ऋषि-मुनि हैं, वे तुम्हारे पिताके यज्ञमें गये हैं।' पिताकी दुष्टता सुनकर सतीको रोष हो आया। उन्होंने कहा—'जिनके जानेसे यज्ञ सफल होता है, उन्हीं आपको मेरे पिताने नहीं बुलाया है। मैं दुरात्मा पिता और ऋषियोंके मनोभावोंका पता लगाना चाहती हूँ। मुझे जानेकी आज्ञा दे दें।' भगवान्ने प्यारसे कहा—'देवि! यदि तुम्हारी रुचि हो ही गयी है तो जाओ, किंतु रानीकी तरह सज-धजकर जाना।' ऐसा कहकर भगवान्ने स्वयं सतीको आभूषण, छत्र, चामर आदि राजोचित वस्तुएँ प्रदान कीं और साठ हजार रुद्रगणोंको साथ कर दिया।

सती उस स्थानपर जा पहुँचीं, जहाँ प्रकाशयुक्त यज्ञ हो रहा था। वह यज्ञमण्डप आश्चर्यजनक वस्तुओं, देवताओं और ऋषियोंसे भरा हुआ था। माता एवं बहनोंने तो सतीका उचित आदर-सत्कार किया; किंतु दक्षने कुछ भी आदर नहीं किया, अपितु उपेक्षा की। दक्षके डरसे अन्य किसीने भी सतीका कोई सम्मान नहीं किया। सब लोगोंके द्वारा तिरस्कृत होनेसे वे विस्मित हुईं। फिर भी उन्होंने माता-पिताके चरणोंमें मस्तक झुकाया, किंतु वे हृदयसे दु:खी थीं; क्योंकि वहाँ भी देवताओंके भाग तो दीख पड़े, किंतु भगवान् शंकरका भाग नहीं दिखायी दिया। तब उन्हें रोष हो आया और वे पूछ बैठीं—'पिताजी! आपने यज्ञमें मङ्गलकारी भगवान् शिवको क्यों नहीं बुलाया? जो स्वयं यज्ञ, यज्ञके अङ्ग, यज्ञकी दक्षिणा और यजमानस्वरूप हैं, उनके बिना यज्ञकी सिद्धि कैसे होगी? क्या आपने भगवान् शिवको सामान्य देवता समझ रखा है?' इसके बाद उन्होंने यज्ञमें सम्मिलित देवताओं और ऋषियोंको फटकारा। वे सभी चुप रह गये।

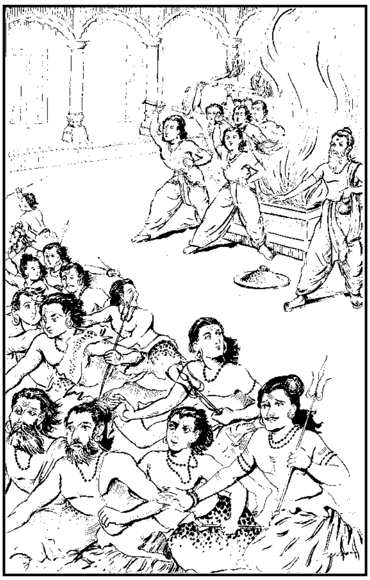
दक्षने कहा—'तुम यहाँ आयी ही क्यों? इस समय यहाँ तुम्हारा कोई काम नहीं है। तुम्हारे पति अमङ्गलस्वरूप हैं, वेदसे बहिष्कृत हैं। वे शास्त्रका अर्थ नहीं जानते, उद्दण्ड और दुरात्मा हैं। मैंने ब्रह्माके बहकावेमें आकर मूर्खतावश तुम्हारा विवाह उनके साथ कर दिया था।' सतीने कहा—'जो महादेवकी निन्दा करता या सुनता है, वे दोनों नरकमें जाते हैं। अत: पिताजी! अब मैं इस शरीरको त्याग दूँगी। जो शिव साक्षात् परमेश्वर हैं, उन्हें कर्मकाण्डी क्या जानेगा? ये स्वार्थी देवता और कर्मवादी मुनि शिवकी निन्दा सुनकर भी चुप हैं। इसका फल इन्हें भोगना पड़ेगा।'

तदनन्तर सती शान्त हो गयीं और प्राणवल्लभ पतिका स्मरण करने लगीं। उन्होंने उत्तरकी ओर भूमिपर बैठकर आचमन किया और वस्त्र ओढ़ लिया तथा पतिका चिन्तन करते हुए प्राणायामके द्वारा प्राण और अपानको एकमें मिलाकर नाभिचक्रमें स्थित किया, फिर बुद्धिके साथ हृदयमें स्थापित किया, पुन: कण्ठस्थित वायुको भृकुटियोंके बीच ले जाकर केवल पतिका स्मरण करते हुए चित्तको योगमार्गमें स्थित कर दिया। इस प्रकार



योगाग्निसे उनका शरीर जल गया। यह देखकर सब लोग

हाहाकार करने लगे। शिवके कुछ पार्षद तो इतने दु:खी हुऐ कि वे अपने ही ऊपर हथियार चलाकर मर मिटे। उनकी संख्या बीस हजार थी। वे सतीके दु:खसे अत्यन्त कातर हो गये थे। कुछ रुद्रगण शस्त्र उठाकर दक्षपर टूट पड़े। यह देखकर भृगुने रक्षोघ्न-मन्त्रसे दक्षिणाग्निमें आहुति दी। आहुति देते ही हजारोंकी संख्यामें महान् बलशाली ऋभुदेवता प्रकट हो गये। उन्होंने प्रमथगणोंको मार भगाया।



इसी बीच चेतावनीसे भरी हुई आकाशवाणी हुई—'दुर्बल ज्ञानवाले दक्ष! तुम्हें घमण्ड हो गया है, जिससे तुम्हारी बुद्धि मोहसे ढक गयी है। सती आदिशक्तिकी अवतार हैं। वे परात्पर शक्ति हैं; सृष्टि, स्थिति एवं लय करनेवाली परमेश्वरी हैं। ऐसी सती जिनकी धर्मपत्नी हैं, उन शंकरको तुमने यज्ञमें भाग नहीं दिया? तुम मूढ़ और कुविचारी हो। तुम्हारा गर्व दूर हो जायगा। जो तुम्हारी सहायता करेगा, वह भी नष्ट हो जायगा। सभी देवता, नाग और मुनि यज्ञमण्डपसे निकल जायँ; नहीं तो सबका विनाश हो जायगा।'

उधर भृगुके मन्त्रबलसे प्रताड़ित प्रमथगण भगवान् शिवके पास पहुँचे। उन्होंने सारी दुर्घटनाएँ कह सुनायीं। भगवान् शंकरने नारदका स्मरण किया, जिससे वे सत्य समाचार विस्तारपूर्वक सुना सकें। नारदसे सारी घटनाएँ सुनकर रुद्रने भयानक क्रोध प्रकट किया। उन्होंने एक जटा उखाड़कर उसे शिलापर पटक दिया। उसके दो टुकड़े हो गये। उस समय महाप्रलयके समान भीषण



शब्द हुआ। एक भागसे प्रलयाग्निके समान दहकते हुए वीरभद्र प्रकट हुए और दूसरे भागसे महाकाली प्रकट हुईं। रुद्रके नि:श्वाससे सौ प्रकारके ज्वर पैदा हुए। सबने भगवान् शिवको प्रणाम किया। वीरभद्रको भगवान्ने आज्ञा दी कि 'दक्षके यज्ञका विध्वंस कर दो। जो वहाँ ठहरे हुए हैं, उन्हें भी भस्म कर डालना। किसीकी स्तुति मत सुनना।'

वीरभद्र जब दक्षके यज्ञका विध्वंस करनेके लिये प्रस्थित हुए तब भगवान् शंकरने करोड़ों गणोंको उनके साथ कर दिया। वीरभद्रका रथ बहुत लम्बा-चौड़ा और ऊँचा था। उसे दस हजार सिंह खींच रहे थे। काली, कात्यायनी आदि शक्तियाँ भी उनके साथ थीं। वीरभद्र जब यज्ञमण्डपमें पहुँचे, तब अहंकारी देवता इन्द्रको आगे कर उनसे भिड़ गये। वीरभद्रने कुछ ही क्षणमें सब देवताओंको भगा दिया। यज्ञ मृगका रूप धारणकर भाग खड़ा हुआ। वीरभद्रने उसका सिर काट डाला। मणिभद्रने भृगुको पटककर छातीपर पैर रखकर उनकी दाढ़ी उखाड़ ली। चण्डने पूषाके दाँत उखाड़ लिये; क्योंकि शिवके अपमानके समय वे हँसे थे। दक्ष वेदीके भीतर जा छिपे थे। वीरभद्रने उनका सिर मरोड़कर तोड़ डाला और अग्निकुण्डमें डाल दिया। इस तरह दक्षका यज्ञ विध्वंस

कर वीरभद्र सेनाके साथ कैलास लौटे। ब्रह्माको जब पता चला कि दक्ष मार डाला गया, तब वे बहुत क्षुब्ध हुए। वे चाहते थे कि दक्ष जीवित हो जाय और उसका यज्ञ भी पूरा हो जाय। उस समय भगवान् विष्णुने राय दी कि सभी देवता भगवान् शंकरकी शरण ग्रहण करें। यदि वे प्रसन्न न होंगे तो प्रलय हो जायगा। देवताओंने शंकरकी स्तुति की और वे उनके चरणोंमें लेट गये। भगवान् शंकरने सभीको क्षमा प्रदान किया। इसके बाद तीनों देव दक्षकी यज्ञशालामें आये। वहाँ स्वाहा, स्वधा, पूषा, तुष्टि, धृति, ऋषि, पितर, गन्धर्व आदि पड़े हुए थे। स्वामीका आदेश पाकर वीरभद्र दक्षके मृत शरीरको वहाँ ले आये। यज्ञनिमित्तक बकरेका सिर लेकर भगवान् शंकरने दक्षके धड़पर जोड़ दिया और ज्यों ही उनकी ओर कृपादृष्टिसे देखा, त्यों ही वे जीवित हो गये। अब दक्षकी बुद्धि स्वस्थ हो गयी थी। उन्होंने शिवजीकी स्तुति की। उसके बाद इन्द्र आदि दिक्पालोंने भी स्तवन किया। इस प्रकार शिवजीकी कृपासे उनका यज्ञ पूर्ण हुआ।

~~o~~

(२) माता पार्वतीके अवतार-कार्य

[तारक-वध और मानस-प्रचार]

(१)

कर्मकाण्डका अबाधित महत्त्व है। इससे अभ्युदय तो होता है, किंतु यह ब्रह्मका स्थान ग्रहण नहीं कर सकता। प्रकृति ब्रह्मकी बहिरङ्गा शक्ति है। वह जब स्वयं ब्रह्मके सम्मुख नहीं जा सकती, तब अपने उपासकोंको ब्रह्मके सम्मुख कैसे पहुँचा सकती है? उन दिनों भृगु आदि ऋषि वेदके कर्मकाण्ड-भागसे सर्वात्मना प्रभावित होकर 'ब्रह्मवाद'को भूल बैठे थे। शिवपुराण-कल्पमें त्रिदेवोंमें भगवान् शंकर परमात्माके अवतार थे, उस पदपर कोई जीव न था। वे सगुण ब्रह्म थे। फिर भी उन दिनों अधिकांश लोग न तो उन्हें ब्रह्म और न उनके निस्त्रैगुण्य मार्गको सन्मार्ग ही समझ रहे थे। सतीने आत्मोत्सर्ग कर इस अन्धकारको हटाया। यह इनके प्रथम अवतारका एक प्रयोजन था। दूसरा प्रयोजन था—प्रेमरूप सगुण ब्रह्मसे प्रेम करना, जिसका सूत्रपात तो उन्होंने सती-अवतारमें किया; किंतु इसकी पूर्णता पार्वती-अवतारमें हुई। इसकी पूर्तिके लिये उन्हें फिर आना था।

विष्णु, ब्रह्मा और नारद आदि इसकी भूमिका तैयार करनेमें तत्पर थे। वे हिमालयके पास पहुँचे। सभी देवता और ऋषि उनके साथ थे। अपने द्वारपर समस्त देवों और ऋषियोंको आया देख हिमालयको महान् हर्ष हुआ। वे अपने भाग्यकी सराहना करते हुए उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम कर गद्गद वाणीसे बोले—'मैं आप लोगोंका सेवक हूँ, आज्ञा प्रदान करें, कौन-सी सेवा करूँ?'

देवोंकी ओरसे ब्रह्माने कहा—'महाभाग! महासती सतीके सम्बन्धमें तुम जानते ही हो। वे आदिशक्तिकी अवतार थीं। पितासे अनादृत होकर अपने धाम चली गयी हैं। यदि वे शक्ति तुम्हारे घर पुत्रीके रूपमें प्रकट हो जायँ, तो विश्वका कल्याण हो जाय।'

यह सुनकर हिमालयका हर्ष अत्यधिक बढ़ गया। वे बोले—'इससे बढ़कर सौभाग्यकी बात और क्या होगी? एतदर्थ जो कुछ करना हो, उसे मैं प्राणपणसे करूँगा।'

देवताओंने उन्हें तपस्याकी विधि बतला दी और ढाड़स दिया कि 'तुम तो तप करो ही, हमलोग भी मिलकर भगवतीसे प्रार्थना करेंगे कि वे तुम्हारे यहाँ पुत्रीके रूपमें अवतार लें।'

देवताओंने अपने वचनको पूर्ण किया। वे एकजुट होकर आदिशक्तिको पुकारने लगे। विष्णुकी पुकार थी, ब्रह्माकी पुकार थी और नारद आदि संतोंकी पुकार थी, इसलिये शक्तिको प्रकट होना ही पड़ा। उनका श्रीविग्रह करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशित हो रहा था। उस प्रकाशमें आह्लादकता थी। उनके रूप-लावण्यकी कोई तुलना नहीं थी। अद्भुत ममतामयी झाँकी थी। सब संतृप्त हो उठे।

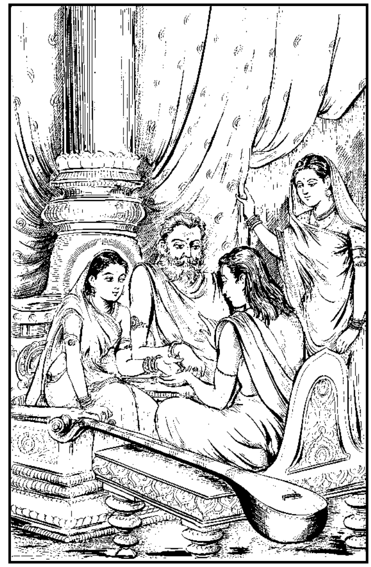
प्रणाम और स्तुतिके बाद देवताओंने कहा—'आपने सतीका अवतार लेकर विश्वका कल्याण किया था। अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार दक्षसे अनादृत होकर आप अदृश्य हो गयीं। हमलोग पुनः आपका अवतार चाहते हैं; क्योंकि एक तो भगवान् शंकर आपके वियोगसे व्यथित रहते हैं, दूसरे विश्वका कल्याण अवरुद्ध हो गया है। आप माँ हैं, बालकोंपर कृपा करें।'

शक्तिने कहा—'मैं अपने बालकोंके हितार्थ अवश्य अवतार लूँगी। मैं यह भी जानती हूँ कि जबसे मैंने शरीरका त्याग किया है, तबसे भगवान् शंकर मेरी स्मृतिमें निमग्न रहते हैं। दिगम्बरतक बन गये हैं। हिमालय मेरे लिये तपस्या कर रहे हैं, मैं उन्हींके यहाँ अवतार लूँगी। आपलोग निश्चिन्त रहें।'

(२)

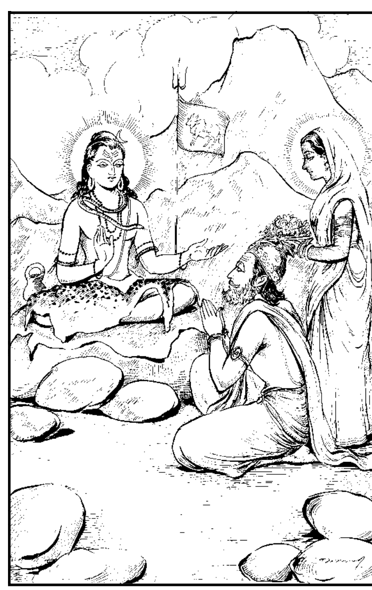
समय आनेपर आदिशक्तिने अपना वचन पूरा किया, वे मेनाके गर्भमें आ गयीं। जबसे वे गर्भमें आयीं, तबसे मेना दिव्य तेजसे घिरी रहने लगीं। सभी देवता मेनाके यहाँ उपस्थित हुए। बड़े उत्साहके साथ उन्होंने शक्तिकी स्तुति करके उन्हें प्रणाम किया। नवाँ महीना बीतनेपर शक्तिका प्राकट्य हुआ। उस समय उनका अपना ही स्वरूप था। सभी देवताओंने प्रत्यक्ष दर्शन किया। वे हर्षोत्फुल्ल होकर स्तुति करने लगे। माता मेनाको भी प्रत्यक्ष दर्शन हुए। वे आनन्दसे विह्वल हो उठीं। तत्पश्चात् शक्तिने शिशुका रूप धारण कर लिया। मेनाने जब शिशुको गोदमें लिया, तब उससे प्रसृत किरणोंसे वे खिल उठीं। जिस तरह शुक्लपक्षमें चन्द्रमाकी कला और उसकी चाँदनी दिन-दिन बढ़ती जाती है, उसी तरह पार्वती बढ़ रही थीं और उनका सौन्दर्य भी स्फुट हो रहा था। पार्वतीने जब पढ़ना-लिखना प्रारम्भ किया, तब सभी विद्याएँ उन्हें अपने-आप स्मरण हो आयीं।

एक दिन देवर्षि नारद हिमालयके घर आये। पार्वती पिताके पास ही बैठी थीं। नारदने भविष्यवाणी की—'यह कन्या अपने प्रेमसे शिवके आधे अङ्गकी स्वामिनी बन जायगी।' देवर्षि नारदके इस वचनने



हिमालयको बहुत कुछ निश्चिन्त कर दिया। उन्होंने दूसरा वर खोजना ही छोड़ दिया। बालिका वयस्क हो चुकी थी। इसी बीच भगवान् शंकर हिमालयके गङ्गोत्तरी तीर्थमें तपस्या करने लगे थे। सतीसे वियुक्त होनेपर वे सब विषयोंका परित्याग कर निरन्तर ब्रह्मानन्दमें लीन हो लम्बी-लम्बी समाधि लगाये रहते। प्रमथगण चारों ओर बैठकर पहरा देते थे। उनमेंसे भी कुछ समाधि लगाते, शेष पहरा देते।

हिमालयको जब पता चला कि भगवान् शंकर गङ्गोत्तरीमें आये हैं, तब अवसर देखकर पुत्रीके साथ



बहुमूल्य पूजाकी सामग्री लेकर वे वहाँ जा पहुँचे और

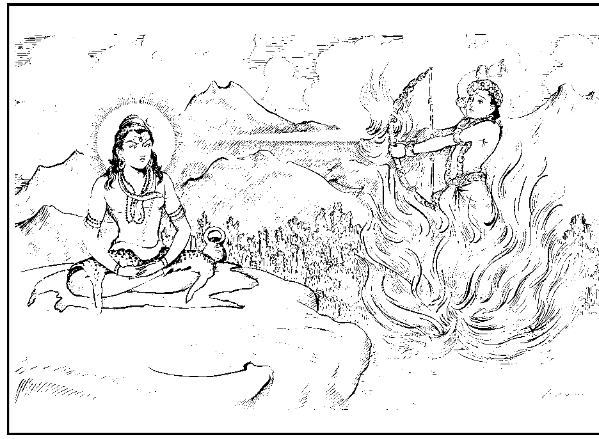
विधि-विधानसे उनकी पूजा की तथा पुत्रीको आदेश दिया कि सखियोंके साथ निरन्तर भगवान्‌की सेवामें उपस्थित रहो। पार्वती फूल चुनकर कुश और जल लाकर, वेदीको अच्छी तरह धो-पोंछकर तत्परतासे भगवान्‌की सेवा करने लगीं।

इधर तारकासुरसे त्रस्त देवताओंको पता था कि उसका संहार भगवान् शंकरके वीर्यसे उत्पन्न पुत्रसे ही सम्भव है। अत: वे पहलेसे ही इस प्रयत्नमें लगे थे कि शंकरका विवाह शीघ्र-से-शीघ्र हो जाय। पार्वतीको सेवा करते देख उन्हें अपने प्रयत्नकी सफलतापर विश्वास हो



गया। देवताओंने कामदेवको समझाया कि तुम ऐसा उपाय करो कि शंकरके मनमें पार्वतीके प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाय।

कामदेव इस कार्यमें तत्परतासे जुट गया। वह वसन्तके साथ भगवान्‌के स्थानपर आ धमका। अनवसर ही वसन्त पूरे वैभवके साथ वहाँ शोभित होने लगा। इधर कामदेवने पूरी शक्ति लगाकर अपनी माया फैला रखी थी। अवसर पाते ही उसने भगवान् शंकरपर अपने पञ्चकुसुम-बाण चला दिये। भगवान्‌के मनमें पार्वतीके प्रति आकर्षण होने लगा। वे झट समझ गये कि यहाँ कोई विघ्न करनेवाला आ गया है। इधर-उधर दृष्टि दौड़ानेपर उन्हें कामदेव दीख पड़ा। उसका वह अमोघ बाण मोघ हो गया। उसकी दुश्चेष्टासे भगवान्‌को रोष हो



आया और उनके तीसरे नेत्रसे निकली लपटसे कामदेव तुरंत जलकर भस्म हो गया। कामपत्नी रति मूर्च्छित हो गयी। देवता हाहाकार करने लगे। वे भगवान्‌की स्तुति करते हुए बोले—'कामने तारकासुरके वधके लिये और समस्त देवताओंके कष्ट मिटानेके लिये ही यह कार्य किया है, क्षुद्रबुद्धिसे नहीं; अत: इसे क्षमा कर दें। रति भी संज्ञाशून्य हो रही है, उसे सान्त्वना दें।'

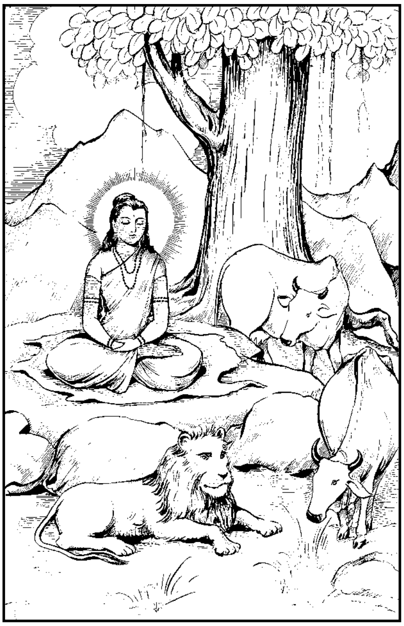
भगवान् शंकर तो आशुतोष ठहरे। उन्होंने रतिको यह कहकर शम्बरासुरके नगरमें भेज दिया कि वहाँ कामदेव 'प्रद्युम्न' बनकर उससे सदेह मिलेगा। पार्वती हतप्रभ हो गयीं। एक तो यह भयानक घटना उनके सामने घटी थी, दूसरे देखते-देखते उनके प्रियतम अदृश्य हो गये थे। वे विवश हो रोती हुई घर लौटीं। प्रियतमके विरहसे वे बहुत ही व्याकुल हो उठी थीं। उन्हें कहीं न तो सुख मिल रहा था, न शान्ति। हृदयमें हाहाकार उठ रहा था। समझानेपर समझ न पाती थीं। वे अपने रूप, जन्म और कर्मको कोसतीं। भगवान् शंकरकी प्रत्येक चेष्टा उन्हें स्मरण हो आती और उनके हृदयको मथ देती। वे बार-बार मूर्च्छित हो जाया करतीं।

(३)

इस विषम परिस्थितिमें आशाकी किरण बनकर देवर्षि नारद उनके निकट पधारे और समझाने लगे—'तुमने शंकरकी सेवा तो अवश्य की; किंतु इसमें त्रुटियाँ रह गयीं। तुम्हें गर्व न करना था। उसे नष्ट कर भगवान्‌ने तुमपर दया ही दिखलायी है। प्रेममें गर्व कैसा? अब तुम

तपस्या करो। सब ठीक हो जायगा। मैं उसका प्रकार बतला देता हूँ।'

गङ्गोत्तरीके शृङ्गितीर्थमें पार्वतीने घोर तपस्या प्रारम्भ कर दी। पहला वर्ष तो उन्होंने फलाहारपर बिताया, फिर वे केवल पत्ता चबाकर रहने लगीं। इसके बाद उन्होंने पत्ता खाना भी छोड़ दिया। वे निरन्तर शिवका चिन्तन करती



रहतीं। इस प्रकार तीन हजार वर्ष बीत गये। पार्वतीकी तपस्या मुनियोंके लिये भी दुष्कर थी। हिमालय और मैना अत्यन्त उद्विग्न हो गये। सभी पर्वत इकट्ठे हुए और पार्वतीको तपस्यासे विरत करने लगे। पार्वतीने बड़ी ही नम्रतासे उन्हें लौटाया। वे अपनी तपस्याको उग्र-से-उग्रतर और उग्रतर-से-उग्रतम बनाती चली गयीं। फलतः उस तपस्यासे सारा विश्व संतप्त हो उठा। सभी प्राणी बेचैन हो गये। तब विष्णु और ब्रह्मा अन्य देवों एवं ऋषियोंके साथ भगवान् शंकरके पास पहुँचे, किंतु वे समाधिमें लीन थे। तब नन्दिकेश्वरकी सहायता ली गयी। उन्होंने प्रभुसे बहुत धीरे-धीरे विश्वको संतापसे बचानेकी प्रार्थना की। प्रभुकी समाधि टूटी। भगवान्‌ने देवोंसे पूछा—'आपलोग कैसे आये हैं?' देवोंके बहुत अनुनय-विनय करनेपर भगवान् शंकर विवाहके लिये तैयार हुए।

तदनन्तर परीक्षाओंका दौर चल पड़ा। सप्तर्षियोंको पार्वतीकी परीक्षाके लिये भेजा गया। तत्पश्चात् स्वयं भगवान् शंकरने जटिल ब्रह्मचारी बनकर उनकी कठोर परीक्षा ली। पार्वतीकी परीक्षा हो जानेके बाद उनके माता-पिताकी परीक्षा वैष्णव ब्राह्मणके वेषमें ली गयी। पार्वती तो परीक्षामें उत्तीर्ण होती गयीं, किंतु माता और पितापर उस परीक्षाने गहरा असर डाला। विवाहमें भयानक विघ्न उपस्थित हुआ था। सप्तर्षियोंके प्रभावसे वह विघ्न टल गया।

(४)

मङ्गलाचार आरम्भ हो गया। विश्वकर्माने दिव्य मण्डप और देवताओंको ठहरानेके लिये दिव्य अद्भुत भवनोंका निर्माण किया। मङ्गलपत्रिका पाकर भगवान् शंकरने देवर्षि नारदका स्मरण किया। देवर्षिने देवताओंको आमन्त्रित किया। समग्र ऐश्वर्यके साथ देवता आ उपस्थित हुए। ऋषि-मुनि, नाग, यक्ष, गन्धर्व सभी सजधज कर आये। शुभ मुहूर्तमें मङ्गलाचार एवं ग्रहपूजनके साथ बारातका प्रस्थान हुआ। विश्वका कल्याण करनेवाले बाबा विश्वनाथका वह विवाह धूमधामसे सम्पन्न हुआ। आज भी प्रत्येक हिन्दू प्रतिवर्ष इस विवाहके उपलक्ष्यमें व्रत रहते हैं और उत्सव मनाते हैं।

बहुत दिनोंके बाद शिव और शिवाका मिलन हुआ। पार्वतीसे छः मुखवाले कार्तिकेयजीका जन्म हुआ। कृत्तिका नामकी छः स्त्रियोंके द्वारा पाले जानेसे उनकी संतुष्टिके लिये उन्होंने छः मुख धारण किये और अपना नाम 'कार्तिकेय' (कृत्तिकाके पुत्र) रखा। इन्होंने देवताओंद्वारा अवध्य तारकासुरका उद्धार किया। पार्वतीके दूसरे पुत्र गणेश हैं। उबटन लगानेसे जो मैल गिरा, उसे हाथमें लेकर पार्वतीने एक बालककी प्रतिमा बनायी। बालक बड़ा सुन्दर बना था। देवीने उसमें प्राणका संचार कर दिया। वही प्रथम पूजनीय 'गणेश' हुए। पराम्बाने कार्तिकेयके द्वारा देवताओंके संकट दूर किये तथा गणाधीशके पदपर गणेशको नियुक्त कर दिया।

(५)

पार्वतीजीके अवतारका मुख्य प्रयोजन अभी पूरा नहीं हुआ था। सती-जन्ममें आत्मदान कर इन्होंने भगवान् शंकरसे 'श्रीरामचरितमानस' का निर्माण करा लिया था। 'लोमश' आदि विशिष्ट लोगोंको परम्परया वह प्राप्त भी हो

चुका था। अभी उसका व्यापक प्रचार न हो पाया था। अब उसे सबको सुलभ कराना शेष था; क्योंकि अवतारवादका रहस्य उनके दो जन्मोंके अवतार और प्रश्नोत्तरद्वारा इसी ग्रन्थसे स्पष्ट होता है।

अत: सती-जन्मवाला अज्ञताका अभिनय पार्वतीने भी प्रारम्भ कर दिया। वे अवसर पाकर बोलीं—'नाथ! कल्प-वृक्षकी छायामें जो रहता है, वह दरिद्र नहीं रह जाता। आप ज्ञानके कल्पवृक्ष हैं और आपकी छायामें मैं रहती हूँ। मैं ज्ञानकी दरिद्रा हूँ। गरीबी मुझे सता रही है। उसे दूर कर दीजिये। मैं पृथ्वीपर माथा टेककर आपको प्रणाम कर रही हूँ और हाथ जोड़कर विनती कर रही हूँ। पहले जन्मसे ही मैं आर्त हूँ और उस भ्रमसे आज भी आर्त हूँ। नाथ! मेरी इस आर्तिको दूर कीजिये। मैं आपकी दासी हूँ, मेरी अज्ञतापर क्रोध न कीजियेगा।'

'आपने बतलाया था कि दशरथनन्दन श्रीराम 'ब्रह्म' हैं। मैंने परीक्षा कर उन्हें ब्रह्म ही पाया; किंतु कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिनसे बुद्धिको संतोष नहीं होता। जैसे—

(क) ब्रह्मको अज (अजन्मा) कहा जाता है; किंतु दशरथनन्दन श्रीरामका तो पितासे जन्म हुआ था, फिर वे 'अज' कैसे हुए?

(ख) ब्रह्मको 'ज्ञानरूप' कहा जाता है; किंतु दशरथनन्दन श्रीरामको यह भी ज्ञान नहीं था कि पेड़-पौधे उनके प्रश्नका उत्तर दे सकेंगे या नहीं?

(ग) ब्रह्मको निराकार कहा जाता है, किंतु दशरथनन्दन श्रीराम हाड़-मांस-चामके बने हुए स्पष्ट दिखलायी देते थे।

(घ) ब्रह्म 'अमर' होता है, किंतु दशरथनन्दन श्रीराम तब पृथ्वीपर थे; किंतु आज तो नहीं हैं?

(ङ) ब्रह्म 'व्यापक' माना जाता है; किंतु वे प्राय: एक जगह ही रहते थे; आँखसे ओझल होते ही फिर न दिखलायी पड़े तो उन्हें व्यापक कैसे कहा जाय? यदि व्यापक होते तो दशरथको उनके वियोगमें मरना नहीं चाहिये था?

भगवतीने 'अज्ञता'का ऐसा सच्चा अभिनय किया कि लाख हाथ जोड़नेपर भी भगवान् शंकरको इनकी अज्ञतापर तरस आ ही गया। उन्होंने मीठी फटकार सुना ही दी—

एक बात नहिं मोहि सोहानी। जदपि मोह बस कहेहु भवानी॥
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना॥
कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाषंडी हरि पद बिमुख जानहिं झूठ न साच॥

(रा०च०मा० १।११४।७-८; ११४)

इन्हीं प्रश्नोंका उत्तर 'श्रीरामचरितमानस' है, जिन्हें बड़ी तपस्यासे भगवतीने प्राप्त किया। (ला०बि०मि०)

(३) महाकालीका अवतार

स्वारोचिष मन्वन्तरके समयकी बात है। चैत्रवंशमें सुरथ नामके एक वीर राजा हुए थे, जो विरथके पुत्र थे। वे दानी, धार्मिक और सत्यवादी थे। पिताकी मृत्युके बाद राज्यके शासनकी बागडोर उनके हाथोंमें आयी। वे योग्यतापूर्वक प्रजाका पालन और राज्यका संचालन करने लगे। एक बार नौ राजाओंने पूरी तैयारीके साथ सुरथकी राजधानी कोलापुरीको चारों ओरसे घेर लिया। राजाने बड़ी वीरतासे शत्रुका सामना किया; किंतु उनकी संख्या न्यून होनेपर भी संयोगवश इन्हें पराजित होना पड़ा। शत्रुओंने सुरथके राज्यको अपने अधिकारमें लेकर उन्हें कोलापुरीसे निकाल दिया। राजा अपने दूसरे नगरमें शत्रुओंको खदेड़नेके लिये सेनाका संगठन करने लगे; किंतु इनके मन्त्री आदिने इनके साथ विश्वासघात किया। वे क्षुद्र स्वार्थकी पूर्तिके लिये शत्रुओंसे जा मिले। शत्रुओंने यहाँ भी आक्रमण कर राजाको भगा दिया। विवश होकर सुरथको वनकी शरण लेनी पड़ी। वनमें उन्होंने मेधा मुनिका आश्रम देखा। मुनिके तपके प्रभावसे वहाँके हिंसक जीव अपनी हिंसा-वृत्तिको छोड़कर परस्पर भाईचारेके भावसे रहते थे। मुनिके सुशासित शिष्य आश्रमकी शोभामें चार चाँद लगा रहे थे। राजा सुरथको वह आश्रम बहुत अच्छा जान पड़ा; अत: वे उस आश्रममें चले गये। मुनिवर मेधाने मीठे वचन, आसन, जल और भोजनसे

राजाका सुन्दर आतिथ्य किया। वे वहाँ कुछ दिन रह गये।

एक दिन वे अपने दौर्भाग्यपर दुःखी हो चिन्ता कर रहे थे। उस समय वे मोहसे आविष्ट होकर बहुत दुःखी हो रहे थे। ठीक उसी समय उनके पास समाधि नामक एक वैश्य पहुँचा, जो बहुत उदास था। राजाने उससे पूछा—'भाई! तुम कौन हो? बहुत ही दुःखी दिखायी देते हो। अपने दुःखका कारण तो बताओ।' वैश्यने कहा—



'राजन्! मैं धनाढ्य-कुलमें उत्पन्न समाधि नामका वैश्य हूँ। अपने ही पुत्रों और स्त्री आदिने धनके लोभसे मुझे घरसे निकाल दिया है। विवश होकर मैं यहाँ चला आया हूँ; किंतु यहाँ आनेपर भी पुत्र आदिका स्नेह मुझे पीड़ित कर रहा है। सोचता हूँ कि वे किस तरह रहते होंगे? इच्छा होती है कि कोई कह देता कि वे सब सकुशल हैं। उनका कुशल समाचार न पानेसे मुझे रुलाई आ रही है।'

राजाने पूछा—'जिन लोगोंने शत्रुताका व्यवहार किया, धन छीन लिया और घरसे बाहर निकाल दिया, उनके प्रति तुम्हारा इतना स्नेह क्यों हो रहा है?' वैश्यने उत्तर दिया—'आपके इस प्रश्नका उत्तर मेरे पास नहीं है। आपका कहना यथार्थ है कि जो मेरे प्रति शत्रुता कर रहे हैं, उनके प्रति मुझे स्नेह नहीं करना चाहिये। उनकी आसक्ति त्यागकर भगवान्‌की ओर लगना चाहिये; किंतु उलटे मेरा चित्त उधर ही लगा हुआ है, इसका क्या कारण है, यह मैं नहीं जानता। साथ ही यह भी जाननेकी इच्छा है कि उधरसे मेरा मन किस प्रकार हट जाय, इसके लिये क्या करूँ?'

इस प्रश्नका उत्तर न राजाके पास था और न वैश्यके पास। अतः दोनों मुनिके समीप उपस्थित हुए। दोनोंकी



समस्या एक ही थी। दोनों स्वजनोंद्वारा उपेक्षित थे, फिर भी दोनों उन्हींकी ममतासे दुःख पा रहे थे। मुनिने कहा—'भगवान् विष्णुकी योगनिद्रारूपी जो महामाया हैं, उन्हींके द्वारा यह सारा संसार मोहित हो रहा है। वे ज्ञानियोंके चित्तको भी बलपूर्वक खींचकर मोहमें डाल दिया करती हैं; किंतु विद्यारूपसे वे ही मुक्ति भी प्रदान करती हैं। उनकी शरणमें जानेसे ही मोहसे छुटकारा मिल सकता है।' राजाने पूछा—'ये महामाया कौन हैं? उनका आविर्भाव कैसे हुआ? उनके चरित कौन-कौन हैं?'

मुनि बोले—'प्रलयका समय था। एकार्णवके जलमें सब कुछ डूबा हुआ था। शेषशय्यापर भगवान् विष्णु योगनिद्राका आश्रय लेकर शयन कर रहे थे। उस समय उनके कानोंके मैलसे मधु और कैटभ नामके दो असुर उत्पन्न हुए। वे दोनों ब्रह्माजीको मारनेके लिये तैयार हो गये। ब्रह्माजीने देखा कि भगवान् तो सो रहे हैं, मुझे बचावे

कौन? वे झट उस शक्तिकी स्तुति करने लगे, जो विष्णुभगवान्‌को सुला रही थी। उन्होंने माता शक्तिसे विष्णुभगवान्‌को जगाने और असुरोंको मोहित करनेके लिये प्रार्थना की। ब्रह्माजीकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर महामाया प्रकट हो गयीं। ये ही महामाया महाकाली नामसे प्रसिद्ध हैं। ये भगवान् विष्णुकी योगनिद्रा हैं। ये तमोगुणकी अधिष्ठात्री देवी हैं। इनका आविर्भाव भगवान् विष्णुके नेत्र, मुख, नासिका, बाहु, हृदय और वक्षःस्थलसे हुआ था। योगनिद्रासे मुक्त होते ही भगवान् विष्णु शय्यासे उठ बैठे। उनकी दृष्टि दोनों असुरोंपर पड़ी। वे दोनों ब्रह्माजीको खानेके लिये तैयार थे। भगवान् विष्णुने उन्हें रोका। फिर तो उनके साथ पाँच हजार वर्षतक युद्ध होता रहा; किंतु वे हारते नहीं दीखते थे। तब महामायाने उन्हें मोहित कर दिया। उनकी बुद्धि बदल गयी। वे सोचने लगे कि 'हम दोनों मिलकर जी-जानसे लड़ रहे हैं और यह अकेला है, फिर भी हार नहीं रहा है।' इस तरह उन दोनोंकी बुद्धिमें प्रतिस्पर्धाके बदले विष्णुके प्रति 'श्रद्धा' उत्पन्न हो गयी। तब उन्होंने विष्णुसे कहा—'हम दोनों तुम्हारे पराक्रमसे प्रसन्न हैं। अब तुम उचित वर माँग लो।' भगवान् विष्णुने कहा—'यदि तुम वर देना चाहते हो तो यह वर दो कि तुम दोनों मेरे हाथों मारे जाओ।' दैत्योंको अब अपनी भूल मालूम पड़ी; किंतु उन्होंने चालाकीसे काम लिया। उन्होंने देखा कि यहाँ कहीं स्थल तो है नहीं। सब जगह पानी-ही-पानी है। अतः कहा—'तुम हमें ऐसी जगहपर मारो, जहाँ जल न हो।' उन्होंने सोचा था कि यहाँ कहीं पृथ्वी है ही नहीं, ये मारेंगे कैसे? तबतक इन्हें हम दोनों ही दबोच लेंगे। भगवती महामाया शक्ति तो 'श्रद्धा'के साथ-साथ 'बुद्धि' रूपमें भी स्थित हैं। वे भगवान् विष्णुकी बुद्धिमें स्थित हो गयीं, जिससे उन्होंने उन्हें अपनी विशाल जाँघोंपर पटककर उनके मस्तक काट गिराये। जाँघें तो जल



नहीं थीं। इस तरह ब्रह्माजीकी स्तुतिसे संतुष्ट हुई महाकाली, जो तमोगुणकी अधिष्ठात्री देवी योगनिद्रारूपा हैं, प्रकट हुई थीं। (ला०बि०मि०)

(४) महालक्ष्मीका अवतार

महामुनि मेधाने राजा सुरथसे कहा—'राजन्! आदिशक्ति निर्विकार और निराकार हैं, फिर भी अपने दुःखी पुत्रोंका दुःख दूर करनेके लिये अवतार लिया करती हैं। उनके भक्तजन उनकी लीलाओंका गान करते रहते हैं।'

प्राचीनकालमें महिष नामक एक महापराक्रमी असुर उत्पन्न हुआ था, जो रम्भ नामक असुरका पुत्र था। वह दैत्योंका सम्राट् था। उसने युद्धमें सभी देवताओंको हराकर इन्द्रके सिंहासनपर अधिकार कर लिया। वह वहींसे तीनों लोकोंपर शासन करने लगा। पराजित देवता ब्रह्माकी शरणमें गये। ब्रह्माजी उन सभीको साथ लेकर वहाँ गये, जहाँ विष्णु और शंकर उपस्थित थे। उन्होंने महिषके अत्याचारोंको कह सुनाया, जिसे सुनकर विष्णु और शंकर दैत्योंपर अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। क्रोधमें भरे विष्णुके मुखसे महान् तेज उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार शंकर, ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवोंके शरीरोंसे भी तेज प्रकट हुआ। वह सब तेज मिलकर एकीभूत हो गया। उससे सारी दिशाएँ प्रकाशित हो उठीं। अन्तमें वह एक नारीके रूपमें परिणत हो गया।

वह नारी साक्षात् महिषमर्दिनी थीं। देवताओंने प्रसन्न होकर



उनकी स्तुति की और उन्हें आभूषण तथा अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये। इसके बाद देवीने अट्टहासपूर्वक गर्जना की। इस गर्जनासे सम्पूर्ण आकाश प्रतिध्वनित हो उठा, तीनों लोकोंमें हलचल मच गयी, पृथ्वी काँप उठी और समुद्र उछलने लगे। देवताओंने देवीके जयकारका नारा लगाते हुए गद्गद वाणीसे उनकी स्तुति की।

उस अद्भुत शब्दको सुनकर दैत्योंने अपने-अपने हथियार उठा लिये। महिषासुर सभी दैत्योंको साथ लेकर उस शब्दको लक्ष्य करके दौड़ा। वहाँ पहुँचकर दैत्योंने देवीको इस रूपमें देखा कि उनके चरणोंके भारसे पृथ्वी दब रही है और उनके प्रकाशसे तीनों लोक प्रकाशित हो रहे हैं। फिर तो दैत्योंने युद्ध छेड़ दिया। महिषासुरका सेनापति चिक्षुर देवीपर टूट पड़ा। उधर चतुरङ्गिणी सेना लेकर चामर भी चढ़ आया। उदग्र, महाहनु, बाष्कल और असिलोमा—ये सभी रथी सैनिकोंके अग्रणी थे। इनमें असिलोमाका प्रत्येक रोम तलवारके समान तीखा था। ये सभी युद्धस्थलमें आकर लोहा लेने लगे। इस तरह हाथीसवार और घुड़सवार सैनिक भी देवीपर चारों ओरसे अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। देवीने खेल-खेलमें ही सभी अस्त्र-शस्त्रोंको काट गिराया। उस समय देवीके नि:श्वास गण बनकर दैत्योंपर चढ़ धाये। तदनन्तर देवीने त्रिशूल, गदा और शक्तिकी वर्षा कर बहुत-से महादैत्योंका संहार कर डाला। दैत्योंकी सेनामें हाथी, घोड़े और असुरोंके शरीरसे इतना रक्त गिरा कि कई कुण्ड बन गये। जैसे आग तिनकेके ढेरको जला देती है, वैसे ही देवीने थोड़ी ही देरमें सारी दैत्य-सेनाका सफाया कर दिया। देवगण हर्षित होकर पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे।

अपनी सेनाका विनाश देखकर सेनापति चिक्षुर क्रोधसे तिलमिला उठा। फिर तो वह देवीपर बाणोंकी वर्षा करने लगा। देवीने अपने बाणोंसे उसके बाणोंको काटकर उसके रथके घोड़ों और सारथियोंको भी मार गिराया। साथ ही उसके धनुष और ध्वजाको भी काट दिया। चिक्षुरने तलवारसे देवीपर प्रहार किया; किंतु देवीके पास पहुँचते ही उस तलवारके टुकड़े-टुकड़े हो गये। चिक्षुरको अपने शूलपर बड़ा गर्व था। उसने उसे देवीपर चला दिया। वह आकाशमें प्रज्वलित हो उठा; किंतु देवीने अपने शूलके प्रहारसे उसके सैकड़ों टुकड़े



कर दिये और चिक्षुरको भी यमलोकका पथिक बना दिया। देवीके शस्त्रप्रहारसे चामर और उदग्र भी धराशायी हो गये।

अब महिषासुर भैंसेका रूप धारण कर देवीके श्वाससे उत्पन्न हुए गणोंको त्रास देने लगा। तत्पश्चात् वह सिंहपर भी झपटा। यह देखकर देवीका क्रोध बढ़ गया।



महिषासुर उग्रसे उग्रतर होता जा रहा था। वह खुरोंसे पृथ्वीको खोद रहा था और सींगोंसे पहाड़ोंको उखाड़–उखाड़कर देवीकी ओर फेंक रहा था, साथ–ही–साथ गरज भी रहा था। उसके वेगसे पृथ्वीमें दरारें पड़ने लगीं और सींगोंके झटकेसे बादलोंके टुकड़े–टुकड़े हो गये। उसने बड़े वेगसे देवीपर आक्रमण किया। देवीने उसे पाशसे बाँध लिया। बँध जानेपर उसने भैंसेका रूप त्याग कर सिंहका रूप धारण कर लिया। जब परमेश्वरीने उसका मस्तक काटना चाहा, तब वह तलवार लिये हुए पुरुषके रूपमें दौड़ा। देवीने बाण–वृष्टि कर पाशसे उसे बाँध लिया। तब वह हाथीका रूप धारण कर भगवतीके सिंहको पकड़कर खींचने लगा। भगवतीने उसकी सूँड़ काट डाली। तब उस दैत्यने पुनः भैंसेका रूप धारण कर लिया। उसे पहलेकी तरह पैंतरेबाजी करते देख सारा जगत् त्रस्त हो गया। देवी देवताओंको भयभीत देखकर उछलीं और उस महिषासुरपर चढ़ गयीं तथा उसे पैरसे दबाकर उसके कण्ठपर शूलसे आघात किया। महिषासुर पुनः दूसरा रूप धारण कर आधा निकला ही था कि देवीने उसका आगे निकलना रोक दिया। जब वह उस दशामें भी पैंतरे बदलने लगा, तब देवीने उसका मस्तक तलवारसे काट गिराया। बची सेना सिरपर पैर रखकर भाग खड़ी हुई।

इस प्रकार देवताओंको संताप देनेवाला महिषासुर नष्ट हो गया। देवगण स्तुति करने लगे। गन्धर्व जयगान गाने लगे। अप्सराएँ प्रसन्नतासे नाचने लगीं। सबने चन्दन, अक्षत, दिव्य पुष्प और धूप आदिसे प्रेमपूर्वक देवीकी पूजा की। तदनन्तर देवताओंको वरदान देकर जगदम्बा अन्तर्धान हो गयीं। (ला०बि०मि०)

(५) महासरस्वतीका अवतार



महामुनि मेधाने राजा सुरथ और समाधि वैश्यको महासरस्वतीका चरित्र इस प्रकार सुनाया—

प्राचीनकालमें शुम्भ और निशुम्भ नामक दो परम पराक्रमी दैत्य उत्पन्न हुए थे। तीनों लोकोंमें उनका भय व्याप्त हो गया था। उनके अत्याचारोंसे प्रजा त्राहि–त्राहि कर रही थी। उन दोनों भाइयोंने इन्द्रके राज्यको तो हथिया ही लिया था, यज्ञ–भागका भी अपहरण कर लिया था; सूर्य, चन्द्र, कुबेर, यम और वरुणके अधिकार भी छीन लिये थे तथा देवताओंको अपमानित कर स्वर्गसे निकाल दिया था। तब देवताओंने भगवतीकी शरण ली। हिमालयपर जाकर उन्होंने रुँधे कण्ठसे भगवतीकी स्तुति की। उनकी स्तुतिसे पार्वतीदेवी प्रसन्न हो गयीं और बोलीं—‘आपलोग किसकी

स्तुति कर रहे हैं?' इसी बीच उनके शरीरसे सुन्दर कुमारी प्रकट हो गयीं। वे बोलीं—'माँ! ये लोग मेरी ही प्रार्थना कर रहे हैं। ये शुम्भ और निशुम्भ दैत्योंसे अतिशय प्रताड़ित और अपमानित हैं, अतः अपनी रक्षा चाह रहे हैं।'

पार्वतीके शरीरकोशसे वे कुमारी निकली थीं, इसलिये उनका नाम कौशिकी पड़ गया। ये ही शुम्भ और निशुम्भका नाश करनेवाली महासरस्वती हैं। इन्हींके अन्य नाम उग्रतारा और महेन्द्रतारा भी हैं। माता पार्वतीके शरीरसे उत्पन्न होनेके कारण उनका नाम मातङ्गी भी है। उन्होंने समग्र देवताओंसे प्यारभरे शब्दोंमें कहा—'तुमलोग निर्भय हो जाओ। मैं स्वतन्त्र हूँ। अतः किसीका सहारा लिये बिना ही तुम लोगोंका कार्य कर दूँगी। तुमलोग अब निश्चिन्त हो जाओ।' इतना कहकर देवी अन्तर्धान हो गयीं।

एक दिन शुम्भ और निशुम्भके विश्वस्त सेवक चण्ड और मुण्डने कुमारी देवीको देखा। इतनी सुन्दरता उन्होंने इसके पहले कभी नहीं देखी थी। वे मोहित और आनन्दके कारण चेतनाहीन हो गये। चेतना आनेपर उन्होंने शुम्भ और निशुम्भसे कहा—'महाराज! हम दोनोंने एक कुमारीको देखा है। वह सिंहपर सवारी करती है और अकेले रहती है। उसमें इतना अधिक सौन्दर्य है, जो आजतक कहीं नहीं देखा गया; वह तो नारीरत्न ही है।'

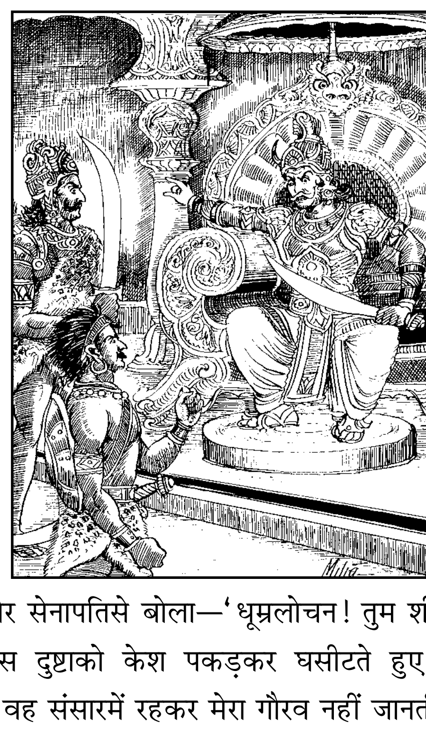
यह सुनकर शुम्भने सुग्रीव नामक असुरको दूत बनाकर देवीके पास भेजा। वह कुशल संदेशवाहक था। देवीके पास पहुँचकर उसने कहा—'देवि! शुम्भासुरका नाम विश्वमें विख्यात है। उन्हें कौन नहीं जानता? सम्पूर्ण विश्व आज उनके चरणोंमें है। उन्होंने जो संदेश भेजा है, उसे आप सुननेका कष्ट करें। उन्होंने कहा है—'मैं जानता हूँ कि तुम नारियोंमें रत्न हो और मैं रत्नोंकी खोजमें रहता हूँ। इसलिये तुम मुझे या मेरे भाईको अपना पति बना लो।'

देवी बोलीं—दूत! तुम्हारा कथन सत्य है, किंतु विवाहके सम्बन्धमें मेरी एक प्रतिज्ञा है। पहले उसे तुम सुन लो—'युद्धमें जो मुझे जीत ले, जो मेरे अभिमानको चूर कर दे, उसीको मैं पति बनाऊँगी।' तुम मेरी इस प्रतिज्ञाको उन्हें सुना दो। फिर इस विषयमें वे जैसा उचित समझें, करें। अच्छा तो यह होगा कि वे स्वयं यहाँ पधारें और मुझे जीतकर मेरा पाणिग्रहण कर लें।

सुग्रीवने कहा—'देवि! मालूम पड़ता है, तुम्हारा गर्व तुम्हारी बुद्धिपर आरूढ़ हो गया है। भला, जिससे इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता हार गये; दानव, मानव, नाग हार गये; उससे तुम सुकुमारी अकेले कैसे लड़ सकोगी? जरा बुद्धिपर बल देकर सोचो। मैं तुम्हारे हितकी बात कह रहा हूँ। तुम मेरे साथ चली चलो। अपना अपमान मत कराओ।'

देवीने कहा—'दूत! तुमने अपनी समझसे मेरे हितकी बात कही है; परंतु इस बातपर भी तो विचार करो कि प्रतिज्ञा कैसे तोड़ी जाय? यद्यपि यह प्रतिज्ञा मैंने बिना सोचे-समझे की है, तथापि दूत! प्रतिज्ञा प्रतिज्ञा होती है। अतः तुम लौट जाओ और आदरपूर्वक मेरा संदेश उन्हें सुना दो।'

असुर सुग्रीव देवीकी वक्तृत्व-शक्तिसे अत्यन्त विस्मयमें पड़ गया। फिर भी उसे 'छोटे मुँह बड़ी बात' समझकर अमर्ष हो आया और लौटकर उसने दैत्यराजसे सब बातें कह सुनायीं। दैत्यराज तो अमर्षका पुतला था ही। वह देवीका संदेश सुनकर एँड़ीसे चोटीतक क्रोधके मारे काँप



उठा और सेनापतिसे बोला—'धूम्रलोचन! तुम शीघ्र जाओ और उस दुष्टाको केश पकड़कर घसीटते हुए यहाँ ले आओ। वह संसारमें रहकर मेरा गौरव नहीं जानती। इसका यही दण्ड है। मालूम पड़ता है, वह कुछ देवताओंपर भरोसा कर बैठी है, अतः उसको मार-पीटकर घसीट

लाओ।' धूम्रलोचन साठ हजार सेनाके साथ वहाँ पहुँचा और सुकुमार अङ्गोंवाली उस कुमारीको देखकर उसके बचपनेसे चिढ़कर बोला—'अरी! शुम्भके पास प्रसन्न मनसे चली चल, नहीं तो मैं झोंटा पकड़कर घसीटकर ले जाऊँगा, फिर आगे क्षमा न करूँगा।' देवी बोलीं—'सेनापति! तुम बलवान् हो, तुम्हारे पास सेना भी है। यदि तुम बलपूर्वक ले जाओगे, तो मैं क्या कर सकती हूँ।'

धूम्रलोचन आग-बबूला होकर झपटा, किंतु देवीके हुंकारते ही वह जलकर भस्म हो गया। सेनाका सफाया



सिंहने कर डाला। यह समाचार पाकर दैत्यराजकी क्रोधाग्नि भभक उठी। उसने चण्ड और मुण्डको देवीको लानेके लिये भेजा। वहाँ पहुँचकर उन दैत्योंने देवीको मुसकराती हुई पाया। फिर तो चारों ओरसे आक्रमण कर दिया गया। यह देखकर भयंकर क्रोधके कारण भगवतीका रंग काला हो गया और उनकी भृकुटीसे महाकाली प्रकट हो गयीं। वे चीतेके चर्मकी साड़ी और नरमुण्डोंकी माला पहने थीं। उनका शरीर हड्डियोंका ढाँचामात्र था। इस तरह वे बहुत ही भयानक दीख रही थीं। उन्हें देखकर दैत्योंके रोंगटे खड़े हो गये। वे दैत्योंपर टूट पड़ीं। दैत्य-सेनामें भगदड़ मच गयी। वे घोड़ा-हाथीसहित योद्धाओंको मुखमें डालने लगीं, सभी अस्त्र-शस्त्रोंको चबाने लगीं तथा तलवारकी एक चोटसे सेनाकी पंक्तियोंका सफाया करने लगीं। इस प्रकार क्षणभरमें सारी सेना समाप्त हो गयी। उसके बाद उन्होंने चण्डको तलवारके एक ही आघातसे काट गिराया। मुण्ड भी उनके



रोषका शिकार हुआ। शेष सेना भयसे भाग खड़ी हुई। तत्पश्चात् महाकाली चण्ड और मुण्डके कटे मस्तकको हाथमें लेकर भगवतीके पास आयीं और विकट अट्टहास करती हुई बोलीं—'चण्ड-मुण्डको तो मैंने मार गिराया, अब शुम्भ-निशुम्भका वध तुम करोगी।' भगवतीने कहा—'तुमने चण्ड और मुण्डका संहार किया है, अतः तुम्हारा नाम 'चामुण्डा' भी होगा।'

चण्ड और मुण्डके मारे जानेपर शुम्भके क्रोधका ठिकाना न रहा। उसने उदायुध नामक छिआसी सेनापतियों, कम्बु नामवाले दैत्योंके चौरासी सेनापतियों, कोटिवीर्य कुलके पचास और धौम्रकुलके सौ सेनापतियोंको अपनी-अपनी सैनिक-टुकड़ियोंके साथ भेजा। कालक, दौर्हृद, मौर्य और कालकेय भी भेजे गये। असंख्य सेनाओंद्वारा देवी चारों ओरसे घेर ली गयीं। तब देवीने माहेश्वरी, वैष्णवी, कार्तिकेयी, ऐन्द्री आदि शक्तियोंको अपने-अपने विशेष अस्त्र-शस्त्रोंके साथ प्रकट कर सेनाके संहारमें लगा दिया। थोड़ी ही देरमें सेनाका सफाया हो गया। शेष दैत्य प्राण लेकर भाग खड़े हुए। तब अद्भुत पराक्रमी रक्तबीज युद्धके लिये आया, उसमें यह विशेषता थी कि उसके शरीरसे रक्तकी जितनी बूँदें गिरतीं, उतने नये रक्तबीज उत्पन्न हो जाते थे। वह अपनेको अजेय समझता था, अतः बड़े गर्वके साथ आकर युद्ध करने लगा। ऐन्द्रीके वज्र-प्रहार और वैष्णवीके चक्र-प्रहारसे उसके शरीरसे बहुत

अधिक मात्रामें रक्त पृथ्वीपर गिरा, जिससे सारा जगत् रक्तबीजोंसे भर गया। वे सब-के-सब मातृगणोंसे जूझ रहे थे। जितने मारे जाते थे, उससे कई गुने बढ़ रहे थे। यह दृश्य देखकर देवतालोग घबरा गये। देवताओंको घबराया देखकर देवीने कालीसे कहा—'चामुण्डे! तुम गिरते हुए इनके रक्तकणोंको चाटती जाओ और रक्तबीजोंको उदरस्थ करती जाओ।' चामुण्डाने थोड़ी ही देरमें रक्तबीजोंको समाप्त कर दिया। अन्तमें देवीने रक्तबीजको मारा और चामुण्डाने उसके सारे रक्तको पृथ्वीपर गिरनेसे पहले ही मुखमें डाल लिया।



कालीके मुँहमें भी बहुत-से रक्तबीज उत्पन्न हुए; परंतु माँ सबको चबा गयीं। इस तरह उस दुष्टकी सारी क्रियाएँ व्यर्थ सिद्ध हुईं और वह मारा गया। इधर मातृगणोंका उद्धत नृत्य होने लगा।

निशुम्भ यह दृश्य देखकर क्रोधसे तिलमिला उठा। मातृगणोंसे युद्ध करते हुए उसने देवीको अपना लक्ष्य बनाया। शुम्भने भी निशुम्भका साथ दिया। दोनों मिलकर देवीपर चढ़ आये। निशुम्भने तीक्ष्ण तलवारसे देवीके वाहन सिंहके मस्तकपर प्रहार किया। देवीने क्षुरप्रसे उसकी तलवार और ढालको काट दिया। इसके बाद निशुम्भने शूल, गदा और शक्ति नामक हथियार चलाये; किंतु देवीने सबको काट गिराया। अन्तमें निशुम्भ फरसा लेकर दौड़ा। देवीने बाणोंसे मारकर उसे धराशायी कर दिया।

भाईको गिरते देख शुम्भ क्रोधसे विह्वल हो गया। उसने अपने आठों हाथोंमें आठ दिव्यास्त्र लेकर देवीपर आक्रमण किया। देवीने शङ्ख और घंटा बजाये। इनके शब्दने दैत्योंके तेजको हर लिया। सिंहकी दहाड़ भी दैत्योंको दहला रही थी। उधर महाकालीने आकाशमें उछलकर पृथ्वीपर दोनों हाथोंसे चोट की। इससे इतना भयानक शब्द हुआ कि दैत्य थर्रा उठे। शिवदूतीने घोर अट्टहास करके उस शब्दको और भी भयावना बना दिया।

शुम्भ इन कार्यकलापोंसे और क्षुब्ध हो उठा। उसने पूरी शक्ति लगाकर देवीपर शक्तिसे प्रहार किया। देवीने उसे उल्कासे शान्त कर दिया। पुनः देवीके चलाये बाणोंको शुम्भने और शुम्भके चलाये बाणोंको देवीने टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तदुपरान्त देवीने एक प्रचण्ड शूलसे शुम्भपर आघात किया, जिससे वह मूर्छित होकर गिर पड़ा।

इस बीच निशुम्भ होशमें आ चुका था। उसने दस हजार हाथ उत्पन्न कर उनसे एक साथ दस हजार चक्र चलाये। उस समय देवी चक्रोंसे ढक-सी गयीं। क्षणमात्रमें ही उन्होंने सभी चक्रोंको बाणोंसे काटकर धूलमें मिला दिया। इसी तरह उसकी गदाएँ और तलवारें भी काट डाली गयीं। अब निशुम्भने शूल लेकर देवीपर धावा किया। देवीने झट अपने शूलसे उसे बींध दिया और वह पछाड़ खाकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। शीघ्र ही उसकी छातीसे दूसरा महाकाय दैत्य 'खड़ी रह, खड़ी रह' कहते हुए निकला। देवी ठहाका मारकर हँस पड़ीं और तलवारके एक ही वारसे उसके दो टुकड़े कर दिये।



निशुम्भके मरनेसे शुम्भको महान् दु:ख हुआ; क्योंकि वह उसका प्राणसे बढ़कर प्यारा भाई था। तत्पश्चात् वह अत्यन्त कुपित होकर बोला—'तू घमण्ड मत कर। तेरा अपना कोई बल नहीं है। तूने तो दूसरोंका सहारा ले रखा है।' जगदम्बाने कहा—'मैं तो एक ही हूँ। मुझसे भिन्न दूसरी कौन है? ये जो और दिखायी दे रही हैं, वे मेरी ही भिन्न-भिन्न शक्तियाँ हैं। देखो, मैं अपनी शक्तियोंको समेट रही हूँ।' इसके



बाद सब शक्तियाँ भगवतीमें लीन हो गयीं। उस समय केवल देवी ही रह गयीं। तदनन्तर पुन: दोनोंमें युद्ध प्रारम्भ हो गया।

शुम्भने बहुत-से अस्त्र-शस्त्र चलाये; किंतु उन्हें खेल-खेलमें ही देवीने नष्ट कर दिया। देवीके द्वारा छोड़े गये अस्त्रोंको शुम्भने भी काट डाला। फिर शुम्भने बाणोंकी झड़ी लगा दी। देवीने उन्हें काटकर उसके धनुषको भी काट दिया। तब वह शक्ति लेकर दौड़ा। भगवतीने उसकी शक्तिको भी नष्ट कर दिया। पुन: वह ढाल और तलवार लेकर दौड़ा। देवीने बाणोंसे उन दोनोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये और उसके घोड़े और रथको भी ध्वस्त कर दिया। अब उसने मुद्गर लेकर धावा किया। देवीने झट मुद्गरको काटकर चूर-चूर कर दिया। तब शुम्भने झपटकर देवीकी छातीमें मुक्का मारा। बदलेमें देवीने उसे ऐसा थपेड़ा जमाया कि वह भूतलपर जा गिरा। थोड़ी देर बाद वह फिर झपट्टा मारकर देवीको आकाशमें उठा ले गया। फिर तो दोनों निराधार आकाशमें ही लड़ने लगे। अन्तमें देवीने शुम्भको पकड़कर चारों ओर घुमाकर बड़े वेगसे पृथ्वीपर पटक दिया। वह पुन: उठकर देवीको मारने दौड़ा। तबतक देवीने शूलसे ऐसा वार किया कि उसके आघातसे उसके प्राणपखेरू उड़ गये। उसके मरते ही चारों ओर प्रसन्नता छा



गयी। पहले जो उत्पातसूचक उल्कापात आदि हो रहे थे, वे सब शान्त हो गये। देवगण हर्षित होकर पुष्प-वृष्टि करने लगे, गन्धर्व बाजे बजाने लगे और अप्सराएँ नाचने लगीं।

मेधामुनिने राजा सुरथ और समाधि वैश्यको शक्तिके अवतारके ये तीन चरित सुनाये तथा अन्तमें बतलाया कि वे देवी नित्य, अज, अमर और व्यापक हैं, फिर भी अवतार लेकर विश्वका त्राण करती रहती हैं। वे ही सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करती हैं तथा विश्वको मोहित भी करती हैं; किंतु पूजा करनेपर धन, पुत्र, बुद्धि देती हैं और मोहको दूर करती हैं। तुम दोनों उन्हींकी शरणमें जाओ।

तब दोनोंने मुनिको प्रणाम किया और वे तपस्याके लिये तत्पर हो गये। एक नदीके तटपर जाकर दोनों महानुभावोंने भगवतीके दर्शनार्थ तपस्या प्रारम्भ कर दी। साथ ही मिट्टीकी मूर्ति बनाकर वे षोडशोपचार पूजा भी करने लगे। वे पहले भोजनकी मात्रा कम करते गये। फिर निराहार रहकर ही आराधना करने लगे। तीन वर्षोंके बाद भगवतीने दर्शन दिया और उन्हें मुँहमाँगा वरदान प्रदान किया। उसके प्रभावसे सुरथने अपना राज्य प्राप्त किया और मरणोपरान्त यही सावर्णि मनु हुए। वैश्य महोदयको ज्ञान प्राप्त हुआ, जिससे उनकी मुक्ति हो गयी। (ला०बि०मि०)

(६) ज्योति-अवतार

एक बार देवताओं और दैत्योंमें युद्ध छिड़ गया। इस युद्धमें देवता विजयी हुए। देवताओंके हृदयमें अहंकार उत्पन्न हो गया। प्रत्येक कहता कि 'यह विजय मेरे कारण हुई है। यदि मैं न होता तो विजय नहीं हो सकती थी।' माता बड़ी दयालु हैं। वे समझ गयीं कि यह अहंकार देवताओंको देवता न रहने देगा। इसी अहंकारके कारण असुर असुर कहलाते हैं और वही अहंकार इनमें जड़ जमा रहा है। इसके कारण विश्वको फिर कष्टका सामना करना पड़ेगा। इसलिये वे एक तेज:पुञ्जके रूपमें उनके सामने प्रकट हो गयीं। वैसा तेज आजतक किसीने देखा न था। सबका हक्का-बक्का बंद हो गया। वे रुँधे गलेसे एक-दूसरेसे पूछने लगे—'यह क्या है?' देवराज इन्द्रकी भी बुद्धि भ्रममें पड़ गयी थी।

इन्द्रने वायुको भेजा कि तुम जाकर उस तेज:पुञ्जका पता लगाओ। वायुदेवता भी तो घमण्डसे भरे हुए थे। वे तेज:पुञ्जके पास गये। तेजने पूछा—'तुम कौन हो?' वायुने अभिमानके साथ कहा—'मैं वायुदेवता हूँ, प्राणस्वरूप हूँ। सम्पूर्ण जगत्का संचालन करता हूँ?' तेजने वायुदेवताके सामने एक तिनका रख दिया और कहा कि 'यदि तुम सब कुछ संचालन कर सकते हो तो इस तिनकेको चलाओ।' वायुदेवताने अपनी सारी शक्ति लगा दी; किंतु तिनका टस-से-मस न हुआ। वे लजाकर इन्द्रके पास लौट आये और कहने लगे कि 'यह कोई अद्भुत शक्ति है, इसके सामने तो मैं एक तिनका भी न उड़ा सका?' फिर अग्नि भेजे गये। वे भी उस तिनकेको जला न सके और पराजित होकर लौट आये। तब इन्द्र स्वयं उस तेजके पास पहुँचे। इन्द्रके पहुँचते ही वह तेज लुप्त हो गया। यह देखकर इन्द्र अत्यन्त लज्जित हो गये। उनका गर्व गल गया। फिर वे इसी तथ्यका ध्यान करने लगे और उस शक्तिकी शरणमें गये, तब महाशक्तिने अपना स्वरूप अभिव्यक्त किया। वे अद्भुत सुन्दरी थीं, लाल साड़ी पहने थीं। उनके अङ्ग-अङ्गसे नवयौवन फूट रहा था। करोड़ों चन्द्रमाओंसे बढ़कर उनमें आह्लादकता थी। करोड़ों कामदेव उनके सौन्दर्यपर निछावर हो रहे थे। श्रुतियाँ उनकी सेवा कर रही थीं।

देवी बोलीं—'वत्स! मैं ही परब्रह्म हूँ, मैं ही परम ज्योति हूँ, मैं ही प्रणवरूपिणी हूँ, मैं ही युगलरूपिणी हूँ। मेरी ही कृपा और शक्तिसे तुमलोगोंने असुरोंपर विजय पायी है। मेरी शक्तिसे ही वायुदेवता बहा करते हैं और अग्निदेव जलाया करते हैं। तुमलोग अहंकार छोड़कर सत्यको ग्रहण करो।' इस प्रकार देवता असुर होनेसे बच गये। उन्हें अपनी भूल मालूम हो गयी। तब उन्होंने प्रार्थना की कि 'माँ! क्षमा करें, प्रसन्न हो जायँ और ऐसी कृपा करें; जिससे हममें अहंकार न आवे। आपके प्रति हमारा प्रेम बना रहे।' (ला०बि०मि०)

तव च का किल न स्तुतिरम्बिके! सकलशब्दमयी किल ते तनुः।
निखिलमूर्तिषु मे भवदन्वयो मनसिजासु बहिःप्रसरासु च॥
इति विचिन्त्य शिवे! शमिताशिवे! जगति जातमयत्नवशादिदम्।
स्तुतिजपार्चनचिन्तनवर्जिता न खलु काचन कालकलास्ति मे॥

'हे जगदम्बिके! संसारमें कौन-सा वाङ्मय ऐसा है, जो तुम्हारी स्तुति नहीं है; क्योंकि तुम्हारा शरीर तो सकलशब्दमय है। हे देवि! अब मेरे मनमें संकल्पविकल्पात्मक रूपसे उदित होनेवाली एवं संसारमें दृश्यरूपसे सामने आनेवाली सम्पूर्ण आकृतियोंमें आपके स्वरूपका दर्शन होने लगा है। हे समस्त अमङ्गलध्वंसकारिणि कल्याणस्वरूपे शिवे! इस बातको सोचकर अब बिना किसी प्रयत्नके ही सम्पूर्ण चराचर जगत्में मेरी यह स्थिति हो गयी है कि मेरे समयका क्षुद्रतम अंश भी तुम्हारी स्तुति, जप, पूजा अथवा ध्यानसे रहित नहीं है। अर्थात् मेरे सम्पूर्ण जागतिक आचार-व्यवहार तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न रूपोंके प्रति यथोचित रूपसे व्यवहृत होनेके कारण तुम्हारी पूजाके रूपमें परिणत हो गये हैं।' **[आचार्य अभिनवगुप्त]**

(७) शताक्षी, शाकम्भरी और दुर्गा-अवतारकी कथा

प्राचीन समयकी बात है, दुर्गम नामका एक महान् दैत्य था। उसकी आकृति बड़ी ही भयंकर थी। उसका जन्म हिरण्याक्षके वंशमें हुआ था तथा उसके पिताका नाम रुरु था। ब्रह्माजीके वरदानसे दुर्गम महाबली हो गया था। अपनी तपस्यासे ब्रह्माजीको प्रसन्नकर उसने चारों वेदोंको अपने हाथमें कर लिया और भूमण्डलपर अनेक उत्पात शुरू कर दिये। वेदोंके अदृश्य हो जानेपर सारी धार्मिक क्रियाएँ नष्ट हो गयीं, सभी यज्ञ-यागादि बंद हो गये तथा देवताओंको यज्ञभाग मिलना बंद हो गया। मन्त्र-शक्तिके अभावमें ब्राह्मण भी अपने पथसे च्युत हो गये। नियम, धर्म, जप, तप, सन्ध्या, पूजन तथा देवकार्य एवं पितृकार्य—सभी कुछ लुप्त-से हो गये। धर्म-मर्यादाएँ विच्छृंखलित हो गयीं। न कहीं दान होता था, न यज्ञ होता था। इसका परिणाम यह हुआ कि पृथ्वीपर सौ वर्षोंतकके लिये वर्षा बंद हो गयी। तीनों लोकोंमें हाहाकार मच गया। सब लोग दु:खी हो गये। सबको भूख-प्यासका महान् कष्ट सताने लगा। कुआँ, बावली, सरोवर, सरिताएँ और समुद्र भी जलसे रहित हो गये। समस्त वृक्ष और लताएँ भी सूख गयीं। प्राणी भूख-प्याससे बेचैन होकर मृत्युको प्राप्त होने लगे।

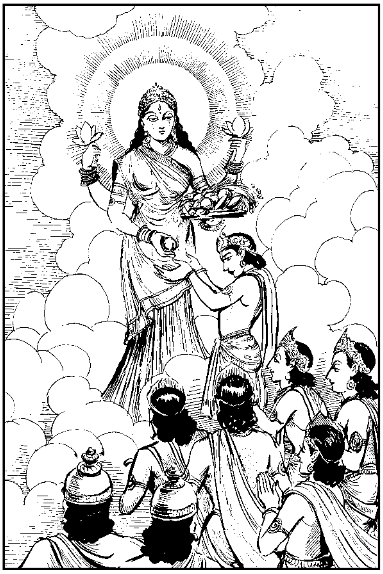
देवताओं तथा भूमण्डलके प्राणियोंकी ऐसी दशा देखकर दुर्गम बहुत खुश था, परंतु इतनेपर भी उसे चैन न था। उसने अमरावतीपर अपना अधिकार जमा लिया। देवता उसके भयसे भाग खड़े हुए, पर जायँ कहाँ, सब ओर तो दुर्गमका उत्पात मचा हुआ था। तब उन्हें शक्तिभूता सनातनी भगवती महेश्वरीका स्मरण आया—**'क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति।'** वे सभी हिमालयपर्वतपर स्थित महेश्वरी योगमायाकी शरणमें पहुँचे। ब्राह्मण लोग भी जगत्-कल्याणार्थ देवीकी उपासना तथा प्रार्थना करनेके लिये उनकी शरणमें आ गये।

देवता कहने लगे—'महामाये! अपनी सारी प्रजाकी रक्षा करो, रक्षा करो। माँ! जैसे आपने शुम्भ, निशुम्भ, धूम्राक्ष, चण्ड-मुण्ड, मधु-कैटभ तथा महिषासुरका वधकर संसारकी रक्षा की है—देवताओंका कल्याण किया है, उसी प्रकार जगदम्बिके! इस दुर्गम नामक दुष्ट दैत्यसे हम सबकी रक्षा करो। माँ! घोर अकाल पड़ गया है, हम आपकी शरणमें हैं। हे देवि! आप कोई लीला दिखायें, नहीं तो यह सारा ब्रह्माण्ड विनष्ट हो जायगा। महेशानि! आप शरणागतोंकी रक्षा करनेवाली हैं, भक्तवत्सला हैं, समस्त जगत्की माता हैं। माँ! आपमें अपार करुणा है, आपके एक ही कृपा-कटाक्षसे प्रलय हो जाता है, आपके पुत्र महान् कष्ट पा रहे हैं; फिर हे मातेश्वरि! आज आप क्यों विलम्ब कर रही हैं, हमें दर्शन दें।' ऐसी ही प्रार्थना ब्राह्मणोंने भी की।

अपने पुत्रोंकी यह हालत माँसे देखी न गयी। भला; पुत्र कष्टमें हो तो माँको कैसे सहन हो सकता है, फिर देवी तो जगन्माता हैं, माताओंकी भी माता हैं। उनके कारुण्यकी क्या सीमा? करुणासे उनका हृदय भर आया। वे तत्क्षण ही वहाँ प्रकट हो गयीं। उस समय त्रिलोकीकी ऐसी व्याकुलताभरी स्थिति देखकर कृपामयी माँकी आँखोंसे आँसू छलछला आये। भला दो आँखोंसे हृदयका दु:ख कैसे प्रकट होता, माँने सैकड़ों नेत्र बना लिये, इसीलिये आप शताक्षी (शत-अक्षी) कहलायीं। नीली-नीली कमल-जैसी दिव्य आँखोंमें माँकी ममता आँसू बनकर उमड़ आयी। इसी रूपमें माताने सबको अपने दर्शन कराये। उनका मुखारविन्द अत्यन्त ही मनोरम था, वे अपने चारों हाथोंमें कमल-पुष्प तथा नाना प्रकारके फल-मूल लिये हुई थीं। करुणार्द्रहृदया भगवती भुवनेश्वरी प्रजाका कष्ट देखकर लगातार नौ दिन और नौ रात रोती रहीं। उन्होंने अपने सैकड़ों नेत्रोंसे अश्रुजलकी सहस्रों धाराएँ प्रवाहित कीं।

देवी शताक्षीके सैकड़ों नेत्रोंसे जो अश्रुजलकी सहस्रों धाराएँ प्रवाहित हुईं, उनसे नौ दिनोंतक त्रिलोकीमें महान् वृष्टि होती रही। इस अथाह जलसे पृथ्वीकी सारी जलन मिट गयी। सभी प्राणी तृप्त हो गये। सरिताओं और समुद्रोंमें अगाध जल भर गया। सम्पूर्ण औषधियाँ भी तृप्त हो गयीं। उस समय भगवतीने अनेक प्रकारके शाक तथा

स्वादिष्ट फल देवताओं तथा अन्य सभीको अपने हाथसे बाँटे तथा खानेके लिये दिये और भाँति-भाँतिके अन्न सामने उपस्थित कर दिये। उन्होंने गौओंके लिये सुन्दर हरी-हरी घास और दूसरे प्राणियोंके लिये उनके योग्य भोजन दिया।



अपने शरीरसे उत्पन्न हुए शाकों (भोज्य-सामग्रियों)-द्वारा उस समय देवीने समस्त लोकोंका भरण-पोषण किया, इसलिये देवीका 'शाकम्भरी' यह नाम विख्यात हुआ।

देवी शाकम्भरीकी कृपासे देवता, ब्राह्मण और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड संतुष्ट हो गया। सबकी भूख-प्यास मिट गयी, उन सभीको अपनी माताके दर्शन हो गये। जीवलोक हर्षमें भर गया।

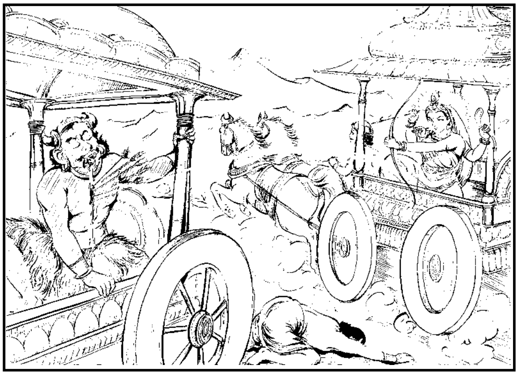
उस समय देवीने पूछा—'देवताओ! अब तुम्हारा कौन-सा कार्य मैं सिद्ध करूँ।' सभी देवता समवेत स्वरमें बोले—'देवि! आपने सब लोगोंको संतुष्ट कर दिया है। अब कृपा करके दुर्गमासुरके द्वारा अपहृत वेद लाकर हमें दे दीजिये।'

देवीने 'तथास्तु' कहकर कहा—'देवताओ! आपलोग अपने-अपने स्थानको जायँ, मैं शीघ्र ही उस दुर्गम दैत्यका वधकर वेदोंको ले आऊँगी।'

यह सुनकर देवता बड़े प्रसन्न हुए और वे देवीको प्रणामकर अपने-अपने स्थानोंको चले गये। सब ओरसे जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी। तीनों लोकोंमें महान् कोलाहल मच गया। इधर अपने दूतोंसे दुर्गम दैत्यने सारी स्थितिको समझ लिया। उसके विपक्षी देवता फिर सुखी हो गये हैं, यह देखकर उस दैत्यने सेना लेकर न केवल स्वर्गलोकको बल्कि पृथ्वीलोक तथा अन्तरिक्षलोकको भी घेर लिया। एक बार पुनः देवता संकटमें पड़ गये। उन्होंने पुनः मातासे रक्षाकी गुहार लगायी। माँ तो सब देख ही रही थीं, वे इसी अवसरकी प्रतीक्षामें थीं।

शीघ्र ही भगवतीने अपने दिव्य तेजोमण्डलसे तीनों लोकोंको व्याप्तकर एक घेरा बना डाला और देवता, मनुष्य आदि उस घेरेमें सुरक्षित हो गये। स्वयं देवी घेरेसे बाहर आकर दुर्गमके सामने खड़ी हो गयीं। दुर्गम भी अपनी सेनाके साथ युद्धके लिये संनद्ध था। क्षणभरमें ही लड़ाई ठन गयी। दोनों ओरसे दिव्य बाणोंकी वर्षा होने लगी। इसी बीच देवीके श्रीविग्रहसे काली, तारा, छिन्नमस्ता, श्रीविद्या, भुवनेश्वरी, भैरवी, वगला, धूम्रा, त्रिपुरसुन्दरी तथा मातङ्गी नामवाली दस महाविद्याएँ उत्पन्न हुईं, जो अस्त्र-शस्त्र लिये हुई थीं। तत्पश्चात् दिव्य मूर्तिवाली असंख्य मातृकाएँ उत्पन्न हुईं। उन सबने अपने मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट धारण कर रखा था तथा वे दिव्य आयुधोंसे सुसज्जित थीं। उन मातृगणोंके साथ दैत्योंका भयंकर युद्ध हुआ। मातृकाओंने दुर्गम दैत्यकी सेनाको तहस-नहस कर दिया। दस दिन यह युद्ध चलता रहा। दैत्य-सेनाका विनाश देखकर ग्यारहवें दिन स्वयं दुर्गम सामने आ डटा। वह लाल रंगकी माला और लाल वस्त्र धारण किये हुए था। एक विशाल रथमें बैठकर वह महाबली दैत्य क्रोधके वशीभूत हो देवीपर बाणोंकी बौछार करने लगा। इधर देवी भी रथपर आरूढ़ हो गयीं। उन्होंने भी बाणोंका कौशल दिखाना प्रारम्भ किया। युद्ध तो भयंकर हुआ, किंतु भगवती कालरात्रिके सामने दुर्गम कबतक टिका रहता? देवीने एक ही साथ पंद्रह बाण छोड़े। चार बाणोंसे रथके चारों घोड़े गिर पड़े। एक बाणने सारथीका प्राण ले लिया। दो बाणोंने दुर्गमके दोनों नेत्रोंको तथा दो बाणोंने उसकी भुजाओंको बींध डाला।

एक बाणने रथकी ध्वजाको काट डाला। शेष पाँच तीक्ष्ण बाण दुर्गमकी छातीमें जाकर घुस गये। रुधिर वमन करता हुआ वह दैत्य परमेश्वरीके सामने ही अपने



प्राणोंसे हाथ धो बैठा। उसके शरीरसे एक दिव्य तेज निकला जो भगवतीके शरीरमें प्रविष्ट हो गया। देवीके हाथसे उसका उद्धार हो गया। देवी भुवनेश्वरीने दुर्गम दैत्यका वध किया था, इसीलिये वे 'दुर्गा' इस नामसे प्रसिद्ध हो गयीं।

उन्होंने वेदोंको पुनः देवताओं तथा ब्राह्मणोंको समर्पित कर दिया। उस दैत्यके मर जानेपर त्रिलोकीका संकट दूर हो गया। सब ओर प्रसन्नता छा गयी।

(८) देवी रक्तदन्तिकाकी लीला-कथा

देवी भुवनेश्वरीने विविध प्रकारकी अवतार-लीलाओंके द्वारा दुष्ट दैत्योंका वध करके संसारको विनाशसे बचाया। वे देवी आर्तजनोंका कष्ट दूर करनेवाली हैं। शुम्भ आदि महान् दैत्योंसे त्राण पानेके बाद देवता लोग भगवती कात्यायनीकी स्तुति करते हुए कहने लगे—हे देवि! तुम्हीं इस जगत्‌का एकमात्र आधार हो। सम्पूर्ण विद्याएँ तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। तुमने ही इस विश्वको व्याप्त कर रखा है। नारायणि! तुम सब प्रकारका मङ्गल प्रदान करनेवाली मङ्गलमयी हो, कल्याणदायिनी शिवा हो। सब पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाली, शरणागतवत्सला, तीन नेत्रोंवाली एवं गौरी हो, तुम्हें नमस्कार है—

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११।१०)

हे जगन्मातः! हे अम्बिके! तुम अपने रूपको अनेक भागोंमें विभक्त कर नाना प्रकारके लीला-रूप धारण करती हो, वैसा क्या अन्य कोई कर सकता है?

रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्तिं कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११।३०)

इसलिये हे परमेश्वरि! आप सबके लिये वरदान देनेवाली होओ—

'लोकानां वरदा भव॥'

(श्रीदुर्गासप्तशती ११।३५)

स्तुतिसे प्रसन्न होकर देवीने अनेक लीला-रूपोंमें आविर्भूत होकर दुष्टोंसे त्राण दिलानेका वर देवताओंको प्रदान किया। उस समय देवीने अपने रक्तदन्तिका नामक लीला-अवतारके विषयमें बताया—

अत्यन्त भयंकर-रूपसे पृथ्वीपर अवतार लेकर मैं वैप्रचित्त नामवाले दानवोंका वध करूँगी। उन भयंकर महादैत्योंको भक्षण करते समय मेरे दाँत दाडिम (अनार)-के फूलकी भाँति लाल हो जायँगे, तब स्वर्गमें देवता और मर्त्यलोकमें मनुष्य सदा मेरी स्तुति करते हुए मुझे 'रक्तदन्तिका' कहेंगे—

स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम्॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११।४५)

देवी रक्तदन्तिकाका स्वरूप यद्यपि बहुत भयंकर है, किंतु वह केवल दुष्टोंके लिये ही है। भक्तोंके लिये तो उनका सौम्य, शान्त एवं मनोरम लीला-रूप ही प्रकट होता है। वे सब प्रकारके भयोंको दूर करनेवाली हैं। वे लाल रंगके वस्त्र धारण करती हैं। उनके शरीरका रंग भी लाल ही है और अङ्गोंके समस्त आभूषण भी लाल रंगके हैं। उनके अस्त्र-शस्त्र, नेत्र, सिरके बाल, तीखे नख और दाँत—सभी रक्तवर्णके हैं। इसीलिये उन्हें रक्ताम्बरा, रक्तवर्णा, रक्तकेशा, रक्तायुधा, रक्तनेत्रा, रक्तदशना तथा रक्तदन्तिका आदि नामोंसे कहा जाता है।

(९) देवी भीमाका आख्यान

देवी भगवतीने हिमालयपर रहनेवाले मुनियोंकी रक्षा करनेके लिये अपना 'भीम' नामक लीला-रूप धारण किया और राक्षसोंका वध किया। उस समय मुनियोंने भक्तिपूर्वक बड़े ही विनम्र-भावसे देवीकी स्तुति की। 'भीम'-रूप धारण करनेके कारण देवीका वह लीला-विग्रह 'भीमा' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ। अपने लीला-रूपके विषयमें देवीने देवताओंसे कहा—

पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले॥
रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात्।
तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः॥
भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति।

(श्रीदुर्गासप्तशती ११।५०—५२)

भीमादेवीका वर्ण नीला है। उनकी दाढ़ें और दाँत चमकते रहते हैं। उनके नेत्र बड़े-बड़े हैं। वे अपने हाथोंमें चन्द्रहास नामक खड्ग, डमरु, मस्तक और पानपात्र धारण करती हैं, वे ही एकवीरा, कालरात्रि तथा कामदा भी कहलाती हैं।

(१०) भगवती भ्रामरीदेवीकी लीला-कथा

पूर्व समयकी बात है, अरुण नामका एक पराक्रमी दैत्य था। देवताओंसे द्वेष रखनेवाला वह दानव पातालमें रहता था। उसके मनमें देवताओंको जीतनेकी इच्छा उत्पन्न हो गयी, अतः वह हिमालयपर जाकर ब्रह्माको प्रसन्न करनेके लिये कठोर तप करने लगा। कठिन नियमोंका पालन करते हुए उसे हजारों वर्ष व्यतीत हो गये। तपस्याके प्रभावसे उसके शरीरसे प्रचण्ड अग्निकी ज्वालाएँ निकलने लगीं, जिससे देवलोकके देवता भी घबरा उठे। वे समझ ही न सके कि यह अकस्मात् क्या हो गया! सभी देवता ब्रह्माजीके पास गये और सारा वृत्तान्त उन्हें निवेदित किया। देवताओंकी बात सुनकर ब्रह्माजी गायत्री देवीको साथ ले हंसपर बैठे और उस स्थानपर गये जहाँ दानव अरुण तपमें स्थित था। उसकी गायत्री-उपासना बड़ी तीव्र थी। उसकी तपस्यासे प्रसन्न हो ब्रह्माजीने वर माँगनेके लिये कहा। देवी गायत्री तथा ब्रह्माजीका आकाशमण्डलमें दर्शन करके दानव अरुण अत्यन्त प्रसन्न हो गया। वह वहीं भूमिपर गिरकर दण्डवत् प्रणाम करने लगा—

उसने अनेक प्रकारसे स्तुति की और अमर होनेका वर माँगा। परंतु ब्रह्माजीने कहा—'वत्स! संसारमें जन्म लेनेवाला अवश्य मृत्युको प्राप्त होगा, अतः तुम कोई दूसरा वर माँगो।' तब अरुण बोला—'प्रभो! यदि ऐसी बात है तो मुझे यह वर देनेकी कृपा करें कि—'मैं न युद्धमें मरूँ, न किसी अस्त्र-शस्त्रसे मरूँ, न किसी भी स्त्री या पुरुषसे ही मेरी मृत्यु हो और दो पैर तथा चार पैरोंवाला कोई भी प्राणी मुझे न मार सके। साथ ही मुझे ऐसा बल दीजिये कि मैं देवताओंपर विजय प्राप्त कर सकूँ।'

'तथास्तु' कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये और इधर अरुण दानव विलक्षण वर प्राप्तकर उन्मत्त हो गया। उसने पातालसे सभी दानवोंको बुलाकर विशाल सेना तैयार कर ली और स्वर्गलोकपर चढ़ाई कर दी। वरके प्रभावसे देवता पराजित हो गये। देवलोकपर दानव अरुणका अधिकार हो गया। वह अपनी मायासे अनेक प्रकारके रूप बना लेता था। उसने तपस्याके प्रभावसे इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, यम, अग्नि आदि देवताओंका पृथक्-पृथक् रूप बना लिया और सबपर शासन करने लगा।

देवता भागकर अशरणशरण आशुतोष भगवान् शंकरकी शरणमें गये और अपना कष्ट उन्हें निवेदित किया। उस समय भगवान् शंकर बड़े विचारमें पड़ गये। वे सोचने लगे कि ब्रह्माजीके द्वारा प्राप्त विचित्र वरदानसे यह दानव अजेय-सा हो गया है, यह न तो युद्धमें मर सकता है न किसी अस्त्र-शस्त्रसे, न तो इसे कोई दो पैरवाला मार सकता है न कोई चार पैरवाला, यह न स्त्रीसे मर सकता है और न किसी पुरुषसे। वे बड़ी चिन्तामें पड़ गये और उसके वधका उपाय सोचने लगे।

उसी समय आकाशवाणी हुई—'देवताओ! तुम लोग भगवती भुवनेश्वरीकी उपासना करो, वे ही तुम लोगोंका कार्य करनेमें समर्थ हैं। यदि दानवराज अरुण नित्यकी गायत्री-उपासना तथा गायत्री-जपसे विरत हो जाय तो शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो जायगी।'

आकाशवाणी सुनकर सभी देवता आश्वस्त हो गये। उन्होंने देवगुरु बृहस्पतिजीको अरुणके पास भेजा ताकि वे उसकी बुद्धिको मोहित कर सकें। बृहस्पतिजीके जानेके बाद देवता भगवती भुवनेश्वरीकी आराधना करने लगे।

इधर भगवती भुवनेश्वरीकी प्रेरणा तथा बृहस्पतिजीके उद्योगसे अरुणने गायत्री-जप करना छोड़ दिया। गायत्री-जपके परित्याग करते ही उसका शरीर निस्तेज हो गया। अपना कार्य सफल हुआ जान बृहस्पति अमरावती लौट आये और इन्द्रादि देवताओंको सारा समाचार बताया। पुनः सभी देवता देवीकी स्तुति करने लगे।

उनकी आराधनासे आदिशक्ति जगन्माता प्रसन्न हो गयीं और विलक्षण लीला-विग्रह धारणकर देवताओंके समक्ष प्रकट हो गयीं। उनके श्रीविग्रहसे करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाश फैल रहा था। असंख्य कामदेवोंसे भी सुन्दर उनका सौन्दर्य था। उन्होंने रमणीय वस्त्राभूषणोंको धारण कर रखा था और वे नाना प्रकारके भ्रमरोंसे युक्त पुष्पोंकी मालासे शोभायमान थीं। वे चारों ओरसे असंख्य भ्रमरोंसे घिरी हुई थीं। भ्रमर 'ह्रीं' इस शब्दको गुनगुना रहे थे। उनकी मुट्ठी भ्रमरोंसे भरी हुई थी।

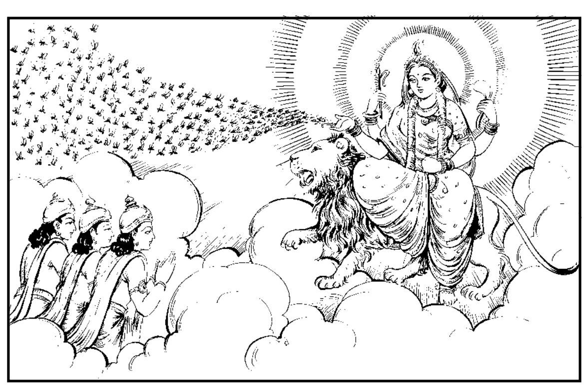
उन देवीका दर्शनकर देवता पुनः स्तुति करते हुए कहने लगे—सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाली भगवती महाविद्ये! आपको नमस्कार है। भगवती दुर्गे! आप ज्योतिःस्वरूपिणी एवं भक्तिसे प्राप्य हैं, आपको हमारा नमस्कार है। हे नीलसरस्वती देवि! उग्रतारा, त्रिपुरसुन्दरी, पीताम्बरा, भैरवी, मातंगी, शाकम्भरी, शिवा, गायत्री, सरस्वती तथा स्वाहा-स्वधा—ये सब आपके ही नाम हैं। हे दयास्वरूपिणी देवि! आपने शुम्भ-निशुम्भका दलन किया है, रक्तबीज और वृत्रासुर तथा धूम्रलोचन आदि राक्षसोंको मारकर संसारको विनाशसे बचाया है। हे दयामूर्ते! धर्ममूर्ते! आपको हमारा नमस्कार है। हे देवि! भ्रमरोंसे वेष्टित होनेके कारण आपने 'भ्रामरी' नामसे यह लीला-विग्रह धारण किया है, हे भ्रामरीदेवि! आपके इस लीलारूपको हम नित्य प्रणाम करते हैं—

भ्रमरैर्वेष्टिता यस्माद् भ्रामरी या ततः स्मृता॥
तस्यै देव्यै नमो नित्यं नित्यमेव नमो नमः॥

(श्रीमद्देवीभागवत १०।१३।९९)

इस प्रकार बार-बार प्रणाम करते हुए देवताओंने ब्रह्माजीके वरसे अजेय बने हुए अरुण दैत्यसे प्राप्त पीड़ासे छुटकारा दिलानेकी भ्रामरीदेवीसे प्रार्थना की।

करुणामयी माँ भ्रामरीदेवी बोलीं—'देवताओ! आप सभी निर्भय हो जायँ। ब्रह्माजीके वरदानकी रक्षा करनेके लिये मैंने यह भ्रामरी-रूप धारण किया है। अरुण दानवने वर माँगा है कि मैं न तो दो पैरवालोंसे मरूँ और न चार पैरवालोंसे, मेरा यह भ्रमररूप छः पैरोंवाला है, इसीलिये भ्रमर षट्पद भी कहलाता है। उसने वर माँगा है कि मैं न युद्धमें मरूँ और न किसी अस्त्र-शस्त्रसे। इसीलिये मेरा यह भ्रमररूप उससे न तो युद्ध करेगा और न अस्त्र-शस्त्रका प्रयोग करेगा। साथ ही उसने मनुष्य, देवता आदि किसीसे भी न मरनेका वर माँगा है, मेरा यह भ्रमररूप न तो मनुष्य है और न देवता ही। देवगणो! इसीलिये मैंने यह भ्रामरी-रूप धारण किया है। अब आप लोग मेरी लीला देखिये।' ऐसा कहकर भ्रामरीदेवीने अपने हस्तगत भ्रमरोंको तथा अपने चारों ओर स्थित भ्रमरोंको भी प्रेरित किया, असंख्य भ्रमर 'ह्रीं-ह्रीं' करते उस दिशामें चल पड़े जहाँ अरुण दानव स्थित था।

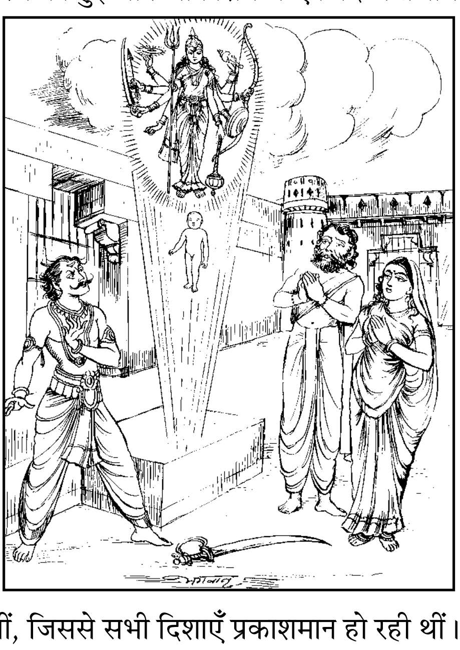


उन भ्रमरोंसे त्रैलोक्य व्याप्त हो गया। आकाश, पर्वत-

शृंग, वृक्ष, वन जहाँ-तहाँ भ्रमर-ही-भ्रमर दृष्टिगोचर होने लगे। भ्रमरोंके कारण सूर्य छिप गया। चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार छा गया। यह भ्रामरीदेवीकी विचित्र लीला थी। बड़े ही वेगसे उड़नेवाले उन भ्रमरोंने दैत्योंकी छाती छेद डाली। वे दैत्योंके शरीरमें चिपक गये और उन्हें काटने लगे। तीव्र वेदनासे दैत्य छटपटाने लगे। किसी भी अस्त्र-शस्त्रसे भ्रमरोंका निवारण करना सम्भव नहीं था। अरुण दैत्यने बहुत प्रयत्न किया, किंतु वह भी असमर्थ ही रहा। थोड़े ही समयमें जो दैत्य जहाँ था, वहीं भ्रमरोंके काटनेसे मरकर गिर पड़ा। अरुण दानवका भी यही हाल रहा। उसके सभी अस्त्र-शस्त्र विफल रहे। देवीने भ्रामरी-रूप धारणकर ऐसी लीला दिखायी कि ब्रह्माजीके वरदानकी भी रक्षा हो गयी और अरुण दैत्य तथा उसकी समूची दानवी सेनाका संहार भी हो गया।

(११) देवी नन्दा (विन्ध्यवासिनी)-की लीला-कथा

श्रीमद्भागवतमें वर्णित है कि कंसके भयसे त्रस्त वसुदेवजी भगवान् श्रीकृष्णको लेकर नन्दगोपके घरमें गये। वहाँ बालकको यशोदाके समीप सुलाकर देवी यशोदाकी कोखसे आविर्भूत कन्याको लेकर मथुरामें चले आये और पूर्व-प्रतिज्ञानुसार कंसको सौंप दिया। उस समय क्रूर कंस उस कन्याको जब मारनेके लिये उद्यत हुआ, तब वह दिव्य कन्या उसके हाथसे छूटकर आकाशमें विराट्रूपमें स्थित हो गयी। विराट्रूपा उन देवी योगमायाने दिव्य वस्त्रालंकारोंको धारण कर रखा था। उनके आभूषण रत्नोंसे जटित थे। उनकी आठ भुजाएँ थीं, जिनमें वे धनुष, बाण, त्रिशूल, ढाल, तलवार, शंख, चक्र तथा गदा धारण की हुई थीं। आकाशमें वे एक दिव्य तेजोमण्डलसे



व्याप्त थीं, जिससे सभी दिशाएँ प्रकाशमान हो रही थीं। समस्त देवता, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर एवं ऋषि-महर्षि उनकी स्तुति करते हुए उनपर पुष्पवृष्टि कर रहे थे। उनका वह विराट्रूप वसुदेव-देवकीके लिये तो अत्यन्त सौम्य तथा वरद था, किंतु कंसको वे साक्षात् कालरूपा ही दिखलायी पड़ रही थीं।

उन योगमायाने आकाशवाणीमें कहा—'अरे मूर्ख कंस! तू मुझे क्या मारेगा? तुझे मारनेवाला तो दूसरी जगह पैदा हो गया है, अपना भला चाहता है तो भगवान्की शरण ले और अब निर्दोष बालकोंकी हत्या न किया कर।' यह कहकर वे देवी अन्तर्धान हो गयीं और विन्ध्यपर्वतपर जाकर स्थित हो गयीं।

भगवती नन्दा अथवा विन्ध्यवासिनीदेवी भक्तोंका सब प्रकारसे कल्याण करनेवाली हैं, इन्हें 'कृष्णानुजा' भी कहा गया है। वस्तुतः ये भगवान्की साक्षात् योगमाया हैं। सम्पूर्ण योगैश्वर्योंसे सम्पन्न हैं। इनकी करुणाकी कोई सीमा नहीं है। इनका वाहन सिंह समग्र धर्मका ही विग्रह-रूप है।

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायिका राजराजेश्वरी भगवती विन्ध्यवासिनीका स्थान विन्ध्यपर्वतपर है। यह देवीका जाग्रत् शक्तिपीठ है। यहाँ देवी अपने समग्र रूपसे प्रतिष्ठित हैं और महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वतीके त्रिकोणके रूपमें पूजित होती हैं। इनकी भक्तिपूर्वक स्तुति और पूजा करनेवालोंके अधीन तीनों लोक हो जाते हैं, ऐसी कृपामयी देवी नन्दाको बार-बार नमन है—

नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा।
स्तुता सा पूजिता भक्त्या वशीकुर्याज्जगत्त्रयम्॥

(श्रीदुर्गामूर्तिरहस्य १)

(१२) भगवती सरस्वतीकी अवतार-कथा

पूर्वकालमें भगवान् नारायणकी तीन पत्नियाँ थीं—लक्ष्मी, गङ्गा और सरस्वती। तीनों ही बड़े प्रेमसे रहतीं और अनन्यभावसे भगवान्का पूजन किया करती थीं। एक दिन भगवान्की ही इच्छासे ऐसी घटना हो गयी, जिससे लक्ष्मी, गंगा और सरस्वतीको भगवान्के चरणोंसे कुछ कालके लिये दूर हट जाना पड़ा। भगवान् जब अन्त:पुरमें पधारे, उस समय तीनों देवियाँ एक ही स्थानपर बैठी हुई परस्पर प्रेमालाप कर रही थीं, भगवान्को आया देखकर तीनों उनके स्वागतके लिये खड़ी हो गयीं। उस समय गङ्गाने विशेष प्रेमपूर्ण दृष्टिसे भगवान्की ओर देखा। भगवान्ने भी उनकी दृष्टिका उत्तर वैसी ही स्नेहपूर्ण दृष्टिमें हँसकर दिया, फिर वे किसी आवश्यकतावश अन्त:पुरसे बाहर निकल गये। तब देवी सरस्वतीने गंगाके उस बर्तावको अनुचित बताकर उनके प्रति आक्षेप किया। गंगाने भी कठोर शब्दोंमें उनका प्रतिवाद किया। उनका विवाद बढ़ता देख लक्ष्मीजीने दोनोंको शान्त करनेकी चेष्टा की। सरस्वतीने लक्ष्मीके इस बर्तावको गंगाजीके प्रति पक्षपात माना और उन्हें शाप दे दिया, 'तुम वृक्ष और नदीके रूपमें परिणत हो जाओगी।' यह देख गंगाने भी सरस्वतीको शाप दिया, 'तुम भी नदी हो जाओगी।' यही शाप सरस्वतीकी ओरसे गंगाको भी मिला। इतनेहीमें भगवान् पुन: अन्त:पुरमें लौट आये। अब देवियाँ प्रकृतिस्थ हो चुकी थीं। उन्हें अपनी भूल मालूम हुई तथा भगवान्के चरणोंसे विलग होनेके भयसे दुखी होकर रोने लगीं।

इस प्रकार उनका सब हाल सुनकर भगवान्को खेद हुआ। उनकी आकुलता देखकर वे दयासे द्रवीभूत हो उठे। उन्होंने कहा—'तुम सब लोग एक अंशसे ही नदी होओगी, अन्य अंशोंसे तुम्हारा निवास मेरे ही पास रहेगा। सरस्वती एक अंशसे नदी होंगी। एक अंशसे इन्हें ब्रह्माजीकी सेवामें रहना पड़ेगा तथा शेष अंशोंसे ये मेरे ही पास निवास करेंगी। कलियुगके पाँच हजार वर्ष बीतनेके बाद तुम सबके शापका उद्धार हो जायगा। इसके अनुसार सरस्वती भारतभूमिमें अंशत: अवतीर्ण होकर 'भारती' कहलायीं। उसी शरीरसे ब्रह्माजीकी प्रियतमा पत्नी होनेके कारण उनकी 'ब्राह्मी' नामसे प्रसिद्धि हुई। किसी-किसी कल्पमें सरस्वती ब्रह्माजीकी कन्याके रूपमें अवतीर्ण होती हैं और आजीवन कुमारीव्रतका पालन करती हुई उनकी सेवामें रहती हैं।

एक बार ब्रह्माजीने यह विचार किया कि इस पृथ्वीपर सभी देवताओंके तीर्थ हैं, केवल मेरा ही तीर्थ नहीं है। ऐसा सोचकर उन्होंने अपने नामसे एक तीर्थ स्थापित करनेका निश्चय किया और इसी उद्देश्यसे एक रत्नमयी शिला पृथ्वीपर गिरायी। वह शिला चमत्कारपुरके समीप गिरी, अत: ब्रह्माजीने उसी क्षेत्रमें अपना तीर्थ स्थापित किया। एकार्णवमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णुकी नाभिसे जो कमल निकला, जिससे ब्रह्माजीका प्राकट्य हुआ, वह स्थान भी वही माना गया है। वही पुष्करतीर्थके नामसे विख्यात हुआ। पुराणोंमें उसकी बड़ी महिमा गायी गयी है। तीर्थ स्थापित होनेके बाद ब्रह्माजीने वहाँ पवित्र जलसे पूर्ण एक सरोवर बनानेका विचार किया। इसके लिये उन्होंने सरस्वतीदेवीका स्मरण किया। सरस्वतीदेवी नदीरूपमें परिणत होकर भी पापीजनोंके स्पर्शके भयसे छिपी-छिपी पातालमें बहती थीं। ब्रह्माजीके स्मरण करनेपर वे भूतल और पूर्वोक्त शिलाको भी भेदकर वहाँ प्रकट हुईं। उन्हें देखकर ब्रह्माजीने कहा—'तुम सदा यहाँ मेरे समीप ही रहो, मैं प्रतिदिन तुम्हारे जलमें तर्पण करूँगा।'



ब्रह्माजीका यह आदेश सुनकर सरस्वतीको बड़ा

भय हुआ । वे हाथ जोड़कर बोलीं—'भगवन्! मैं जन-सम्पर्कके भयसे पातालमें रहती हूँ। कभी प्रकट नहीं होती, किंतु आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन करना भी मेरी शक्तिके बाहर है; अतः आप इस विषयपर भलीभाँति सोच-विचारकर जो उचित हो, वैसी व्यवस्था कीजिये।' तब ब्रह्माजीने सरस्वतीके निवासके लिये वहाँ एक विशाल सरोवर खुदवाया। सरस्वतीने उसी सरोवरमें आश्रय लिया। तत्पश्चात् ब्रह्माजीने बड़े-बड़े भयानक सर्पोंको बुलाकर कहा—'तुम लोग सावधानीके साथ सब ओरसे इस सरोवरकी रक्षा करते रहना; जिससे कोई भी सरस्वतीके शरीरका स्पर्श न कर सके।'

एक बार भगवान् विष्णुने सरस्वतीको यह आदेश दिया कि 'तुम बडवानलको अपने प्रवाहमें ले जाकर समुद्रमें छोड़ दो।' सरस्वतीने इसके लिये ब्रह्माजीकी भी अनुमति चाही। लोकहितका विचार करके ब्रह्माजीने भी उन्हें उस कार्यके लिये सम्मति दे दी। तब सरस्वतीने कहा—'भगवन्! यदि मैं भूतलपर नदीरूपमें प्रकट होती हूँ, तो पापीजनोंके सम्पर्कका भय है और यदि पातालमार्गसे इस अग्निको ले जाती हूँ तो स्वयं अपने शरीरके जलनेका डर है।' ब्रह्माजीने कहा—'तुम्हें जैसे सुगमता हो, उसी प्रकार कर लो। यदि पापियोंके सम्पर्कसे बचना चाहो तो पातालके ही मार्गसे जाओ; भूतलपर प्रकट न होना, साथ ही जहाँ तुम्हें बडवानलका ताप असह्य हो जाय, वहाँ पृथ्वीपर नदीरूपमें प्रकट भी हो जाना। इससे तुम्हें शरीरपर उसके तापका प्रभाव नहीं पड़ेगा।'

ब्रह्माजीका यह उत्तर पाकर सरस्वती अपनी सखियों—गायत्री, सावित्री और यमुना आदिसे मिलकर हिमालयपर्वतपर चली गयीं और वहाँसे नदीरूप होकर धरतीपर प्रवाहित हुईं। उनकी जलराशिमें कच्छप और ग्राह आदि जल-जन्तु भी प्रकट हो गये। बडवानलको लेकर वे सागरकी ओर प्रस्थित हुईं। जाते समय वे धरतीको भेदकर पाताल मार्गसे ही यात्रा करने लगीं। जब वे अग्निके तापसे संतप्त हो जातीं तो कहीं-कहीं भूतलपर प्रकट भी हो जाया करती थीं। इस प्रकार जाते-जाते वे प्रभासक्षेत्रमें पहुँचीं। वहाँ चार तपस्वी मुनि कठोर तपस्यामें लगे थे। इन्होंने पृथक्-पृथक् अपने-अपने आश्रमके पास सरस्वतीको बुलाया। इसी समय समुद्रने भी प्रकट होकर सरस्वतीका आवाहन किया। सरस्वतीको समुद्रतक तो जाना ही था, ऋषियोंकी अवहेलना करनेसे भी शापका भय था; अतः उन्होंने अपनी पाँच धाराएँ कर लीं। एकसे तो वे सीधे समुद्रकी ओर चलीं और चारसे पूर्वोक्त चारों ऋषियोंको स्नानकी सुविधा देती गयीं। इस प्रकार वे 'पञ्चस्रोता' सरस्वतीके नामसे प्रसिद्ध हुईं और मार्गके अन्य विघ्नोंको दूर करती हुई अन्तमें समुद्रसे जा मिलीं।

एक समयकी बात है, ब्रह्माजीने सरस्वतीसे कहा—'तुम किसी योग्य पुरुषके मुखमें कवित्वशक्ति होकर निवास करो।' ब्रह्माजीकी आज्ञा मानकर सरस्वती योग्य पात्रकी खोजमें बाहर निकलीं। उन्होंने ऊपरके सत्यादि लोकोंमें भ्रमण करके देवताओंमें पता लगाया तथा नीचेके सातों पातालोंमें घूमकर वहाँके निवासियोंमें खोज की; किंतु कहीं भी उनको सुयोग्य पात्र नहीं मिला। इसी अनुसंधानमें पूरा एक सत्ययुग बीत गया। तदनन्तर त्रेतायुगके आरम्भमें सरस्वतीदेवी भारतवर्षमें भ्रमण करने लगीं। घूमते-घूमते वे तमसानदीके तीरपर पहुँचीं। वहाँ महातपस्वी महर्षि वाल्मीकि अपने शिष्योंके साथ रहते थे। वाल्मीकि उस समय अपने आश्रमके इधर-उधर घूम रहे थे। इतनेमें ही उनकी दृष्टि एक क्रौञ्च पक्षीपर पड़ी, जो तत्काल ही एक व्याधके बाणसे घायल हो पंख फड़फड़ाता हुआ गिरा था। पक्षीका सारा शरीर लहूलुहान हो गया था। वह पीड़ासे तड़प रहा था और उसकी पत्नी क्रौञ्ची उसके पास ही गिरकर बड़े आर्तस्वरमें 'चें-चें' कर रही थी। पक्षीके उस जोड़ेकी यह दयनीय दशा देखकर दयालु महर्षि अपनी सहज करुणासे द्रवीभूत हो उठे। उनके मुखसे तुरन्त ही एक श्लोक निकल पड़ा; जो इस प्रकार है—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

यह श्लोक सरस्वतीकी ही कृपाका प्रसाद था। उन्होंने महर्षिको देखते ही उनकी असाधारण योग्यता और प्रतिभाका परिचय पा लिया था; उन्हींके मुखमें

उन्होंने सर्वप्रथम प्रवेश किया। कवित्वशक्तिमयी सरस्वतीकी प्रेरणासे ही उनके मुखकी वह वाणी, जो उन्होंने क्रौञ्चीकी सान्त्वनाके लिये कही थी, छन्दोमयी बन गयी। उनके हृदयका शोक ही श्लोक बनकर निकला था—'**शोकः श्लोकत्वमागतः।**' सरस्वतीके कृपापात्र होकर महर्षि वाल्मीकि ही 'आदिकवि' के नामसे संसारमें विख्यात हुए।

इस तरह सरस्वतीदेवी अनेक प्रकारकी लीलाओंसे जगत्का कल्याण करती हैं। बुद्धि, ज्ञान और विद्यारूपसे सारा जगत् इनकी कृपा-लीलाका अनुभव करता है। ये मूलतः भगवान् नारायणकी पत्नी हैं तथा अंशतः नदी और ब्राह्मीरूपमें रहती हैं। ये ही गौरीके शरीरसे प्रकट होकर 'कौशिकी' नामसे प्रसिद्ध हुईं और शुम्भ-निशुम्भ आदिका वध करके इन्होंने संसारमें सुख-शान्तिकी स्थापना की। तन्त्र और पुराण आदिमें इनकी महिमाका विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

~~o~~

(१३) जगज्जननी लक्ष्मीका अवतरण

पद्मालयां पद्मकरां पद्मपत्रनिभेक्षणाम्।
वन्दे पद्ममुखीं देवीं पद्मनाभप्रियामहम्॥

देवीकी जितनी शक्तियाँ मानी गयी हैं, उन सबका मूल महालक्ष्मी ही हैं। ये ही सर्वोत्कृष्ट पराशक्ति हैं। ये ही समस्त विकृतियोंकी प्रधान प्रकृति हैं। सारा विश्वप्रपञ्च महालक्ष्मीसे ही प्रकट हुआ है। चिन्मयी लक्ष्मी समस्त पतिव्रताओंकी शिरोमणि हैं। एक बार उन्होंने भृगुकी पुत्रीरूपमें अवतार लिया था; इसलिये इन्हें 'भार्गवी' कहते हैं। समुद्र-मन्थनके समय ये ही क्षीरसागरसे प्रकट हुई थीं, इसलिये इनका नाम 'क्षीरोदतनया' अथवा 'क्षीरसागर-कन्या' हुआ। भगवान् जब-जब अवतार लेते हैं, तब-तब उनके साथ लक्ष्मीदेवी भी अवतीर्ण हो उनकी सेवा करती और उनकी प्रत्येक लीलामें योग देती हैं। इनके आविर्भावकी कथा इस प्रकार है—

महर्षि भृगुकी पत्नी ख्यातिके गर्भसे एक त्रिलोकसुन्दरी भुवनमोहिनी कन्या उत्पन्न हुई। वह समस्त शुभ लक्षणोंसे सुशोभित थी; इसलिये उसका नाम लक्ष्मी रखा गया। अथवा साक्षात् लक्ष्मी ही उस कन्याके रूपमें अवतीर्ण हुई थीं, इसलिये वह लक्ष्मी कहलायी, धीरे-धीरे बड़ी होनेपर लक्ष्मीने भगवान् नारायणके गुण और प्रभावका वर्णन सुना। इससे उनका हृदय भगवान्में अनुरक्त हो गया। वे उन्हें पतिरूपमें प्राप्त करनेकी इच्छासे समुद्रके तटपर जाकर घोर तपस्या करने लगीं। तपस्या करते-करते एक हजार वर्ष बीत गये। तब इन्द्र भगवान् विष्णुका रूप धारण करके लक्ष्मीदेवीके समीप आये और वर माँगनेको कहा। लक्ष्मीने कहा—'आप अपने विश्वरूपका मुझे दर्शन कराइये।' इन्द्र इसके लिये असमर्थ थे, अतः लज्जित होकर वहाँसे लौट गये। इसके बाद और कई देवता पधारे, परंतु विश्वरूप दिखानेकी शक्ति न होनेके कारण उनकी भी कलई खुल गयी।

यह समाचार पाकर साक्षात् भगवान् नारायण वहाँ देवीको दर्शन देने और उन्हें कृतार्थ करनेके लिये आये। भगवान्ने देवीसे कहा—'वर माँगो।' यह आदेश सुनकर देवीने भगवान्का गौरव बढ़ानेके लिये ही कहा—'देवदेव! यदि आप साक्षात् भगवान् नारायण हैं तो अपने विश्वरूपका दर्शन देकर मेरा संदेह दूर कर दीजिये।' भगवान्ने विश्वरूपका दर्शन कराया और लक्ष्मीजीकी इच्छाके अनुसार उन्हें पत्नीरूपमें ग्रहण किया। इसके बाद वे बोले—'देवि! ब्रह्मचर्य ही सब धर्मोंका मूल तथा सर्वोत्तम तपस्या है। तुमने ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक इस स्थानपर कठोर तपस्या की है, इसलिये मैं यहाँ 'मूलश्रीपति' के नामसे विख्यात होकर रहूँगा तथा तुम भी ब्रह्मचर्यरूपिणी 'मूलश्री' के नामसे यहाँ प्रसिद्धि प्राप्त करोगी।'

लक्ष्मीजीके प्रकट होनेका दूसरा इतिहास इस प्रकार है—एक बार भगवान् शंकरके अंशभूत महर्षि दुर्वासा भूतलपर विचर रहे थे। घूमते-घूमते वे एक मनोहर वनमें गये। वहाँ एक विद्याधर-सुन्दरी हाथमें पारिजात-पुष्पोंकी

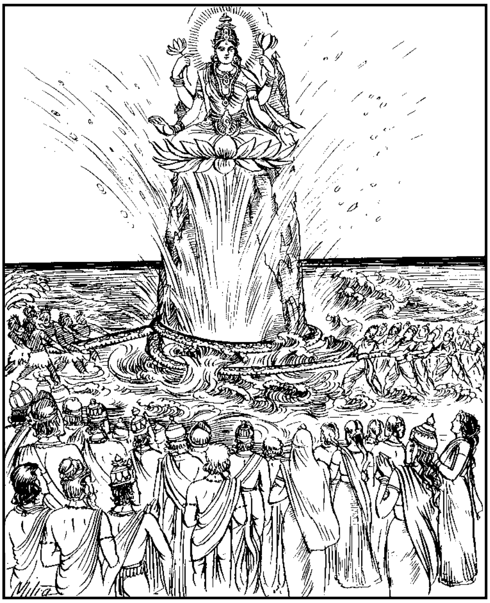
माला लिये खड़ी थी, वह माला दिव्य पुष्पोंकी बनी थी। उसकी दिव्य गन्धसे समस्त वन-प्रान्त सुवासित हो रहा था। दुर्वासाने विद्याधरीसे वह मनोहर माला माँगी। विद्याधरीने उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम करके वह माला दे दी। माला लेकर उन्मत्त वेषधारी मुनिने अपने मस्तकपर डाल ली और पुनः पृथ्वीपर भ्रमण करने लगे।

इसी समय मुनिको देवराज इन्द्र दिखायी दिये, जो मतवाले ऐरावतपर चढ़कर आ रहे थे। उनके साथ बहुत-से देवता भी थे। मुनिने अपने मस्तकपर पड़ी माला उतारकर हाथमें ले ली। उसके ऊपर भौंरे गुंजार कर रहे थे। जब देवराज समीप आये तो दुर्वासाने पागलोंकी तरह वह माला उनके ऊपर फेंक दी। देवराजने उसे लेकर ऐरावतके मस्तकपर डाल दिया। ऐरावतने उसकी तीव्र गन्धसे आकर्षित हो सूँड़से माला उतार ली और सूँघकर पृथ्वीपर फेंक दी। यह देख दुर्वासा क्रोधसे जल उठे और देवराज इन्द्रसे इस प्रकार बोले—'अरे इन्द्र! ऐश्वर्यके घमण्डसे तुम्हारा हृदय दूषित हो गया है। तुमपर जडता छा रही है, तभी तो मेरी दी हुई मालाका तुमने आदर नहीं किया है। वह माला नहीं, लक्ष्मीका धाम थी। माला लेकर तुमने प्रणामतक नहीं किया। इसलिये तुम्हारे अधिकारमें स्थित तीनों लोकोंकी लक्ष्मी शीघ्र ही अदृश्य हो जायगी।' यह शाप सुनकर देवराज इन्द्र घबरा गये और तुरंत ही ऐरावतसे उतरकर मुनिके चरणोंमें पड़ गये। उन्होंने दुर्वासाको प्रसन्न करनेकी लाख चेष्टाएँ कीं, किंतु वे महर्षि टस-से-मस न हुए। उलटे इन्द्रको फटकारकर वहाँसे चल दिये। इन्द्र भी ऐरावतपर सवार हो अमरावतीको लौट गये। तब तीनों लोकोंकी लक्ष्मी नष्ट हो गयी।

इस प्रकार त्रिलोकीके श्रीहीन एवं सत्त्वरहित हो जानेपर दानवोंने देवताओंपर चढ़ाई कर दी। देवताओंमें अब उत्साह कहाँ रह गया था? सबने हार मान ली। फिर सभी देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजीने उन्हें भगवान् विष्णुकी शरणमें जानेकी सलाह दी तथा सबके साथ वे स्वयं भी क्षीरसागरके उत्तर तटपर गये। वहाँ पहुँचकर ब्रह्मा आदि देवताओंने बड़ी भक्तिसे भगवान् विष्णुका स्तवन किया। भगवान् प्रसन्न होकर देवताओंके सम्मुख प्रकट हुए। उनका अनुपम तेजस्वी मङ्गलमय विग्रह देखकर देवताओंने पुनः स्तवन किया, तत्पश्चात् भगवान्ने उन्हें क्षीरसागरको मथनेकी सलाह दी और कहा—'इससे अमृत प्रकट होगा। उसके पान करनेसे तुम सब लोग अजर-अमर हो जाओगे; किंतु यह कार्य है बहुत दुष्कर, अतः तुम्हें दैत्योंको भी अपना साथी बना लेना चाहिये। मैं तो तुम्हारी सहायता करूँगा ही।'

भगवान्की आज्ञा पाकर देवगण दैत्योंसे सन्धि करके अमृत-प्राप्तिके लिये यत्न करने लगे। वे भाँति-भाँतिकी ओषधियाँ लाये और उन्हें क्षीरसागरमें छोड़ दिया; फिर मन्दराचलको मथानी और वासुकिको नेती (रस्सी) बनाकर बड़े वेगसे समुद्रमन्थनका कार्य आरम्भ किया। भगवान्ने वासुकिकी पूँछकी ओर देवताओंको और मुखकी ओर दैत्योंको लगाया। मन्थन करते समय वासुकिकी निःश्वासाग्निसे झुलसकर सभी दैत्य निस्तेज हो गये और उसी निःश्वासवायुसे विक्षिप्त होकर बादल वासुकिकी पूँछकी ओर बरसते थे; जिससे देवताओंकी शक्ति बढ़ती गयी। भक्तवत्सल भगवान् विष्णु स्वयं कच्छपरूप धारण कर क्षीरसागरमें घूमते हुए मन्दराचलके आधार बने हुए थे। वे ही एक रूपसे देवताओंमें और एक रूपसे दैत्योंमें मिलकर नागराजको खींचनेमें भी सहायता देते थे तथा एक अन्य विशाल रूपसे, जो देवताओं और दैत्योंको दिखायी नहीं देता था, उन्होंने मन्दराचलको ऊपरसे दबा रखा था। इसके साथ ही वे नागराज वासुकिमें भी बलका संचार करते थे और देवताओंकी भी शक्ति बढ़ा रहे थे।

इस प्रकार मन्थन करनेपर क्षीरसागरसे क्रमशः कामधेनु, वारुणीदेवी, कल्पवृक्ष और अप्सराएँ प्रकट हुईं। इसके बाद चन्द्रमा निकले, जिन्हें महादेवजीने मस्तकपर धारण किया। फिर विष प्रकट हुआ, जिसे नागोंने चाट लिया। तदनन्तर अमृतका कलश हाथमें लिये धन्वन्तरिका प्रादुर्भाव हुआ। इससे देवताओं और दानवोंको भी बड़ी प्रसन्नता हुई। सबके अन्तमें क्षीरसमुद्रसे भगवती लक्ष्मीदेवी प्रकट हुईं। वे खिले हुए



कमलके आसनपर विराजमान थीं। उनके श्रीअङ्गोंकी दिव्य कान्ति सब ओर प्रकाशित हो रही थी। उनके हाथमें कमल शोभा पा रहा था। उनका दर्शन करके देवता और महर्षिगण प्रसन्न हो गये। उन्होंने वैदिक श्रीसूक्तका पाठ करके लक्ष्मीदेवीका स्तवन किया। फिर देवताओंने उनको स्नानादि कराकर दिव्य वस्त्राभूषण अर्पण किये। वे उन दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित होकर सबके देखते-देखते अपने सनातन स्वामी श्रीविष्णुभगवान्‌के वक्ष:स्थलमें चली गयीं। भगवान्‌को लक्ष्मीजीके साथ देखकर देवता प्रसन्न हो गये। दैत्योंको बड़ी निराशा हुई। उन्होंने धन्वन्तरिके हाथसे अमृतका कलश छीन लिया, किंतु भगवान्‌ने मोहिनी स्त्रीके रूपसे उन्हें अपनी मायाद्वारा मोहित करके सारा अमृत देवताओंको ही पिला दिया। तदनन्तर इन्द्रने बड़ी विनय और भक्तिके साथ श्रीलक्ष्मीदेवीका स्तवन किया। उससे प्रसन्न होकर लक्ष्मीने देवताओंको मनोवाञ्छित वरदान दिया। इस प्रकार ये लक्ष्मीजी भगवान् विष्णुकी अनन्य प्रिया हैं। भगवान्‌के साथ प्रत्येक अवतारमें ये साथ रहती हैं। जब श्रीहरि विष्णु नामक आदित्यके रूपमें स्थित हुए तब ये कमलोद्भवा 'पद्मा' के नामसे विख्यात हुईं। ये ही श्रीरामके साथ 'सीता' और श्रीकृष्णके साथ 'रुक्मिणी' होकर अवतीर्ण हुई थीं। भगवान्‌के साथ इनकी आराधना करनेसे अभ्युदय और नि:श्रेयस दोनोंकी सिद्धि होती है।

(१४) दस महाविद्याओंके आविर्भावकी कथा

आद्यशक्ति भगवती जगदम्बा 'विद्या' और 'अविद्या'— दोनों ही रूपोंमें विद्यमान हैं। अविद्यारूपमें वे प्राणियोंके मोहकी कारण हैं तो विद्यारूपमें मुक्तिकी। भगवती जगदम्बा विद्या या महाविद्याके रूपमें प्रतिष्ठित हैं और भगवान् सदाशिव विद्यापतिके रूपमें।

दस महाविद्याओंका सम्बन्ध मूलरूपसे देवी सती, शिवा और पार्वतीसे है। ये ही अन्यत्र नवदुर्गा, चामुण्डा तथा विष्णुप्रिया आदि नामोंसे पूजित और अर्चित होती हैं। दस महाविद्याओंका अवतरण क्यों हुआ और कैसे हुआ, इस सम्बन्धमें महाभागवत (देवीपुराण)-में एक रोचक कथा प्राप्त होती है, जो संक्षेपमें इस प्रकार है—

पूर्वकालकी बात है प्रजापति दक्षने एक विशाल यज्ञ-महोत्सवका आयोजन किया, जिसमें सभी देवता, ऋषिगण निमन्त्रित थे, किंतु भगवान् शिवसे द्वेष हो जानेके कारण दक्षने न तो उन्हें आमन्त्रित किया और न अपनी पुत्री सतीको ही बुलाया। देवर्षि नारदजीने देवी सतीको बताया कि तुम्हारी सब बहनें यज्ञमें आमन्त्रित हैं, अत: तुम्हें भी वहाँ जाना चाहिये। पहले तो सतीने मनमें कुछ देर विचार किया, किंतु फिर वहाँ जानेका निश्चय किया। जब सतीने भगवान् शिवसे उस यज्ञमें जानेकी अनुमति माँगी तो भगवान् शिवने वहाँ जाना अनुचित बताकर उन्हें जानेसे रोका, पर सती अपने निश्चय पर अटल रहीं। वे बोलीं—मैं प्रजापतिके यज्ञमें अवश्य जाऊँगी और वहाँ या तो अपने प्राणेश्वर देवाधिदेवके लिये यज्ञभाग प्राप्त करूँगी या यज्ञको ही नष्ट कर दूँगी—

'प्राप्स्यामि यज्ञभागं वा नाशयिष्यामि वा मखम्॥'

(महाभागवतपुराण ८।४२)

—ऐसा कहते हुए सतीके नेत्र लाल हो गये। उनके अधर फड़कने लगे, वर्ण कृष्ण हो गया। क्रोधाग्निसे उद्दीप्त शरीर महाभयानक एवं उग्र दीखने लगा। उस समय महामायाका विग्रह प्रचण्ड तेजसे तमतमा रहा था। शरीर वृद्धावस्थाको सम्प्राप्त-सा हो गया। उनकी केशराशि बिखरी हुई थी, चार भुजाओंसे सुशोभित वे महादेवी पराक्रमकी वर्षा करती-सी प्रतीत हो रही थीं। कालाग्निके समान महाभयानक रूपमें देवी मुण्डमाला पहने हुई थीं और उनकी भयानक जिह्वा बाहर निकली हुई थी, सिरपर अर्धचन्द्र सुशोभित था और उनका सम्पूर्ण विग्रह विकराल लग रहा था। वे बार-बार भीषण हुंकार कर रही थीं। इस प्रकार अपने तेजसे देदीप्यमान एवं भयानक रूप धारणकर महादेवी सती घोर गर्जनाके साथ अट्टहास करती हुई भगवान् शिवके समक्ष खड़ी हो गयीं। देवीका यह भीषण स्वरूप साक्षात् महादेवके लिये भी असह्य हो गया। भगवान् शिवका धैर्य जाता रहा। वे भयभीत होकर सभी दिशाओंमें इधर-उधर भागने लगे। देवीने 'मत डरो', 'मत डरो' कई बार कहा, किंतु शिव एक क्षण भी वहाँ नहीं रुके। इस प्रकार अपने स्वामीको भयाक्रान्त देखकर दयावती भगवती सतीने उन्हें रोकनेकी इच्छासे क्षण भरमें अपने ही शरीरसे अपनी अङ्गभूता दस देवियोंको प्रकट कर दिया, जो दसों दिशाओंमें उनके समक्ष स्थित हो गयीं। भगवान् शिव जिस-जिस दिशामें जाते थे, भगवतीका एक-एक विग्रह उनका मार्ग अवरुद्ध कर देता था।

देवीकी ये स्वरूपा शक्तियाँ ही दस महाविद्याएँ हैं, इनके नाम हैं—काली, तारा, कमला, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, षोडशी, त्रिपुरसुन्दरी, बगलामुखी, धूमावती तथा मातङ्गी।

जब भगवान् शिवने इन महाविद्याओंका परिचय पूछा तो देवी बोलीं—

येयं ते पुरतः कृष्णा सा काली भीमलोचना।
श्यामवर्णा च या देवी स्वयमूर्ध्वं व्यवस्थिता॥
सेयं तारा महाविद्या महाकालस्वरूपिणी।
सव्येतरेयं या देवी विशीर्षातिभयप्रदा॥
इयं देवी छिन्नमस्ता महाविद्या महामते।
वामे तवेयं या देवी सा शम्भो भुवनेश्वरी॥
पृष्ठतस्तव या देवी बगला शत्रुसूदिनी।
वह्निकोणे तवेयं या विधवारूपधारिणी॥
सेयं धूमावती देवी महाविद्या महेश्वरी।
नैर्ऋत्यां तव या देवी सेयं त्रिपुरसुन्दरी॥
वायौ यत्ते महाविद्या सेयं मातङ्गकन्यका।
ऐशान्यां षोडशी देवी महाविद्या महेश्वरी॥
अहं तु भैरवी भीमा शम्भो मा त्वं भयं कुरु।
एताः सर्वाः प्रकृष्टास्तु मूर्तयो बहुमूर्तिषु॥
भक्त्या सम्भजतां नित्यं चतुर्वर्गफलप्रदाः।
सर्वाभीष्टप्रदायिन्यः साधकानां महेश्वर॥

(महाभागवतपुराण ८। ६५—७२)

कृष्णवर्णा तथा भयानक नेत्रोंवाली ये जो देवी आपके सामने स्थित हैं, वे भगवती '**काली**' हैं और जो ये श्यामवर्णवाली देवी आपके ऊर्ध्वभागमें विराजमान हैं, वे साक्षात् महाकालस्वरूपिणी महाविद्या '**तारा**' हैं। महामते! आपके दाहिनी ओर ये जो भयदायिनी तथा मस्तकविहीन देवी विराजमान हैं, वे महाविद्यास्वरूपिणी भगवती '**छिन्नमस्ता**' हैं। शम्भो! आपके बायीं ओर ये जो देवी हैं, वे भगवती '**भुवनेश्वरी**' हैं। जो देवी आपके पीछे स्थित हैं, वे शत्रुनाशिनी भगवती '**बगला**' हैं। विधवाका रूप धारण की हुई ये जो देवी आपके अग्निकोणमें विराजमान हैं, वे महाविद्यास्वरूपिणी महेश्वरी '**धूमावती**' हैं और आपके नैर्ऋत्यकोणमें ये जो देवी हैं, वे भगवती '**त्रिपुरसुन्दरी**' हैं। आपके वायव्यकोणमें जो देवी हैं, वे मातङ्गकन्या महाविद्या '**मातङ्गी**' हैं और आपके ईशानकोणमें जो देवी स्थित हैं, वे महाविद्यास्वरूपिणी महेश्वरी '**षोडशी**' हैं। मैं तो भयंकर रूपवाली '**भैरवी**' हूँ। शम्भो! आप भय मत कीजिये। ये सभी रूप भगवतीके अन्य समस्त रूपोंसे उत्कृष्ट हों। महेश्वर! ये देवियाँ नित्य भक्तिपूर्वक उपासना करनेवाले साधक पुरुषोंको चारों प्रकारके पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) तथा समस्त वाञ्छित फल प्रदान करती हैं।

भगवान् सूर्य और उनके लीलावतार

[भुवनभास्कर भगवान् सूर्यनारायण प्रत्यक्ष देवता हैं—प्रकाशस्वरूप हैं। छान्दोग्योपनिषद् (३ । ३ । १)-में उन्हें ब्रह्म कहा गया है—'आदित्यो ब्रह्मेति।' ये ब्रह्म लीलाभिनयके लिये देवमाता अदितिके पुत्र बनते हैं और अदितिके पुत्र होनेसे आदित्य भी कहलाते हैं। भगवान् सूर्य नित्य प्रातः उदित होते हैं और नित्य सायं अस्ताचलमें तिरोहित हो जाते हैं—अदृश्य हो जाते हैं—'देवो याति भुवनानि पश्यन्' (ऋग्वेद १ । ३५ । २)। अन्य देवता तो यथासमय आवश्यकतानुसार प्रकट होते हैं और कार्य पूर्ण होनेपर लीला-संवरण कर लेते हैं, किंतु भगवान् सूर्यनारायण नित्य ही अवतरित होते हैं और जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंके साक्षी बनते हैं। सन्ध्योपासना और भगवान् सूर्यका अभेद सम्बन्ध है। सूर्यरश्मियोंमें प्राणशक्ति है, जीवनीशक्ति है, उसीके आश्रयसे इस चराचर जगत्की सत्ता बनी हुई है, कदाचित् भगवान् सूर्य नित्य अवतरित होकर प्रकाश न फैलाते तो सर्वत्र अन्धकार-ही-अन्धकार छा जाता, इससे बड़ी उनकी कृपा और क्या हो सकती है ? भगवान् सूर्य आरोग्यके अधिष्ठाता देव हैं। भगवान् सूर्यके लीलापरिकर-परिच्छदोंका विस्तार बहुत है। राज्ञी (संज्ञा) और निक्षुभा (छाया)—ये उनकी शक्तिरूपा दो पत्नियाँ हैं। गरुडके छोटे भाई अरुण उनके रथके सारथि हैं। सूर्यलोकमें भगवान् सूर्यके समक्ष इन्द्रादि देवगण तथा ऋषिगण उपस्थित रहते हैं। उनका रथ सप्त छन्दोमय अश्वोंसे युक्त है। भगवान् सूर्यके साथ पिङ्गल नामक लेखक, दण्डनायक नामके द्वाररक्षक तथा कल्माष नामके दो पक्षी उनके द्वारपर खड़े रहते हैं। दिण्डि उनके मुख्य सेवक हैं, जो उनके सामने खड़े रहते हैं। भगवान् सूर्यकी दस संतानें हैं। संज्ञा नामक पत्नीसे वैवस्वत मनु, यम, यमी (यमुना), अश्विनीकुमार और रेवन्त तथा छाया नामक पत्नीसे शनि, तपती, विष्टि (भद्रा) और सावर्णि मनु हुए। भगवान् सूर्यकी अवतरण-लीलाएँ बड़ी ही मनोरम तथा कल्याणप्रद हैं। अदितिके पुत्रके रूपमें द्वादश आदित्योंके अवतरणकी कथा प्रसिद्ध ही है। वेदमें जो ३३ मुख्य देवता बताये गये हैं, उनमें द्वादशादित्य परिगणित हैं। पुराणोंमें सूर्यरथके वर्णन-प्रकरणमें बारह महीनोंमें बारह आदित्य ही बारह नामोंसे अभिहित किये गये हैं—धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, अंश, भग, त्वष्टा तथा विष्णु—ये इनके नाम हैं। कहीं-कहीं इन नामोंमें अन्तर भी मिलता है। काशीमें भी द्वादश आदित्य प्रतिष्ठित हैं, जिनके नाम हैं—लोलार्क, उत्तरार्क, साम्बादित्य, द्रौपदादित्य, मयूखादित्य, खखोल्कादित्य, अरुणादित्य, वृद्धादित्य, केशवादित्य, विमलादित्य, गङ्गादित्य तथा यमादित्य। ये सभी अवतार भक्तोंके कल्याणके लिये भगवान्ने धारण किये थे। कभी द्रौपदीपर कृपा करनेके लिये उन्होंने अवतरित होकर उन्हें अक्षयपात्र प्रदान किया तो कभी वे हनुमान्जीके गुरु बन गये। ग्रहोंके रूपमें प्रतिष्ठित होकर वे आत्मतत्त्वका प्रतिनिधित्व करते हैं। सूर्यार्घ्यदान, सूर्योपस्थान तथा सूर्य-नमस्कारके रूपमें वे पूजकके समक्ष रहते हैं। इस प्रकार भगवान् सूर्यनारायण नित्य नूतन लीलाएँ करते रहते हैं। यहाँ आगे संक्षेपमें उनके कुछ लीलास्वरूपोंका दिग्दर्शन प्रस्तुत है—सम्पादक]

द्वादशादित्य-अवतरणमीमांसा

(पं० श्रीगौतमकुमारजी राजहंस)

'अवतार' शब्द 'अव' उपसर्गपूर्वक 'तृ' धातुमें 'घञ्' प्रत्ययके संयोगसे निष्पन्न हुआ है, जिसका शाब्दिक अर्थ है—अपनी स्थितिसे नीचे उतरना। इसके विभिन्न अर्थ भी हैं, जैसे—उतार, उदय, प्रारम्भ, प्रकट होना इत्यादि। जैसे कोई अध्यापक किसी छात्रको पढ़ाता है तो वह अध्यापक उस छात्रकी स्थितिमें ही आकर पढ़ाता है, तो यह छात्रके प्रति शिक्षकका अवतार हुआ। इसी प्रकार भगवान् मनुष्योंको शिक्षा-दीक्षा, सत्-असत् एवं मोक्षादिके ज्ञानके लिये, उनकी रक्षाके लिये अवतार लेते हैं। उनका अवतार मानवावतारसे भिन्न होता है। वे केवल लीला करते हैं अर्थात् मनुष्योंकी तरह माँके गर्भमें आते हैं। गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैं अजन्मा और अविनाशी स्वरूपवाला होते हुए भी एवं समस्त प्राणियोंका ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ।

आदिगुरु शंकराचार्य भी कहते हैं कि जब संसारको

क्षुब्ध कर देनेवाली धर्मकी ग्लानि होती है, उस समय जो लोकमर्यादाकी रक्षा करनेवाले लोकेश्वर, संतप्रतिपालक, वेदवर्णित, शुद्ध एवं अजन्मा भगवान् उनकी रक्षाके लिये शरीर धारण करते हैं; वे ही शरणागतवत्सल, निखिल भुवनेश्वर व्रजराज श्रीकृष्णचन्द्र मेरे नेत्रोंके विषय हों—

यदा धर्मग्लानिर्भवति जगतां क्षोभकरणी
तदा लोकस्वामी प्रकटितवपुः सेतुधृगजः।
सतां धाता स्वच्छो निगमगणगीतो व्रजपतिः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः॥

(कृष्णाष्टक ८)

नित्य उदीयमान भगवान् भुवनभास्कर तो पोषणी शक्तिसे सम्पृक्त होकर नित्य ही जीवनमें प्राणोंका संचार करते हैं और अन्धकारसे प्रकाशकी ओर चलनेकी प्रेरणा देते हैं। भगवान् सूर्य तो प्रत्यक्ष अवतार हैं। इसीलिये सन्ध्योपासनामें मूलरूपसे भगवान् सविताकी ही उपासना होती है। भगवान् सूर्यको ब्रह्मका साकार रूप कहा गया है—'**ॐ असावादित्यो ब्रह्म।**' (सूर्योपनिषद्)। ये ही प्रत्यक्ष अवतार सवितादेव स्थावर-जङ्गम सम्पूर्ण भूतोंकी आत्मा हैं—'**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।**' सृष्टिके आदिदेव तथा आदि अवतार भगवान् सूर्य ही हैं। सूर्यसे ही वृष्टि होती है, वृष्टिसे अन्न उत्पन्न होता है और अन्न ही प्राणियोंका जीवनाधार है—

'**आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।**'

(मनुस्मृति ३।७६)

इस प्रकार नित्य अवतरित होनेवाले भगवान् सूर्य सारी सृष्टिका पालन करते हैं।

जब सृष्टिक्रममें जगत्‌के समस्त प्राणी उस विराट् पुरुषसे उत्पन्न हुए, उसी क्रममें उनके नेत्रोंसे भगवान् सूर्यका प्रादुर्भाव हुआ—

'**चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।**'

(शु०यजु० ३१।४२)

यहाँपर एक प्रश्न उठता है कि भगवान् सूर्यका प्रादुर्भाव नेत्रसे ही क्यों हुआ, किसी और अङ्गसे क्यों नहीं हुआ?

कारण यह है कि वैशेषिक दर्शनानुसार तेजका लक्षण '**उष्णस्पर्शवत्तेजः**' बतलाया गया है और यह दो प्रकारका होता है—नित्य एवं अनित्य। परमाणुरूपसे तेज नित्य है और कार्यरूपसे अनित्य। पुनः कार्यरूपसे शरीर, इन्द्रिय और विषयके भेदसे तीन प्रकारका है। तैजस शरीर सूर्यलोकमें है। रूपका प्रत्यक्ष ज्ञान करानेवाली चक्षु इन्द्रिय नेत्रके अंदर काली पुतलीके अग्रभागमें रहती है अर्थात् उसमें तेज रहता है, इसीलिये भगवान् सूर्यका प्रादुर्भाव विराट् पुरुषके नेत्रोंसे हुआ। व्याकरणशास्त्रने 'आदित्य' शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है—'**अदितेः अपत्यं पुमान्—आदित्यः**'। यह बारह आदित्यों (सूर्यका भाग)-का समुदायवाचक नाम है। ये बारह आदित्य केवल प्रलयकालमें एक साथ उदित होते हैं। कलियुगका प्रलय इन्हीं बारह आदित्योंके उदयसे होगा—

'**दग्धुं विश्वं दहनकिरणैर्नोदिता द्वादशार्काः।**'

(वेणी० ३।६)

सूर्यका प्रादुर्भाव विराट् पुरुषके नेत्रोंसे होनेके बाद लोकमर्यादाकी रक्षाके लिये उन्होंने अदितिके गर्भसे जन्म लिया। ब्रह्मपुराणसे उद्धृत इनकी कथा संक्षिप्तरूपमें दी जा रही है—

प्रजापति दक्षकी साठ कन्याएँ हुईं जो श्रेष्ठ और सुन्दरी भी थीं। उनके नाम अदिति, दिति, दनु और विनता आदि थे। उनमेंसे तेरह कन्याओंका विवाह दक्षने कश्यपजीके साथ किया था। अदितिने तीनों लोकोंके स्वामी देवताओंको जन्म दिया। दितिसे दैत्य और दनुसे बलाभिमानी दानव उत्पन्न हुए। विनता आदि अन्य स्त्रियोंने भी स्थावर-जङ्गम भूतोंको जन्म दिया। कश्यपके पुत्रोंमें देवता प्रधान हैं, वे सात्त्विक हैं। इनके अतिरिक्त दैत्य आदि राजस और तामस हैं। देवताओंको यज्ञका भागी बनाया गया, किंतु दैत्य और दानव उनसे शत्रुता रखते थे। उन सबने मिलकर देवताओंको खूब सताया और उनके राज्यादि नष्ट कर दिये। तब अदिति भगवान् सूर्यकी आराधना करने लगीं। भगवान् सूर्यने उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर दर्शन दिया और कहा—देवि!



आपकी जो इच्छाएँ हों, उनके अनुसार एक वर माँग लो। अदिति बोलीं—देव! अधिक बलवान् दैत्योंने मेरे पुत्रोंके हाथसे त्रिलोकीका राज्य छीन लिया है। गोपते! उन्हींके लिये आप मेरे ऊपर कृपा करें। अपने अंशसे मेरे पुत्रोंके भाई होकर आप उनके शत्रुओंका नाश करें। भगवान् बोले—देवि! मैं अपने हजारवें अंशसे तुम्हारे गर्भका बालक होकर प्रकट होऊँगा और तुम्हारे पुत्रोंके शत्रुओंका नाश करूँगा।

—यों कहकर भगवान् भास्कर अन्तर्हित हो गये और देवी अदिति भी अपना समस्त मनोरथ सिद्ध हो जानेके कारण तपस्यासे निवृत्त हो गयीं।

वर्षके अन्तमें भगवान् सूर्यने अदितिके गर्भसे जन्म लिया और अपनी दृष्टिमात्रसे समस्त दैत्योंका नाश किया। फिर तो देवताओंके हर्षकी सीमा न रही। भगवान् सूर्य भी अपने स्थानपर अधिष्ठित होकर जीवोंका आप्यायन करने लगे। ग्रह और नक्षत्रोंके अधिपति भगवान् सूर्य अपने ताप और प्रकाशसे तीनों लोकोंको प्रकाशित करते रहते हैं। ये ज्योतिश्चक्रके अधिपति हैं और ग्रहाधिपतिके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। भगवान् सूर्य अपने सात अश्वोंसे सुशोभित एक चक्रवाले रथपर आरूढ़ होकर सातों द्वीपों तथा सातों समुद्रोंसमेत निखिल पृथ्वीमण्डलपर भ्रमण करते हैं। अरुण इनका सारथि है। इनके रथके आगे बालखिल्यादि साठ हजार ऋषि इनकी स्तुति करते रहते हैं। भगवान् सूर्यका रथ प्रतिमास भिन्न-भिन्न आदित्य, ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष आदि गणोंसे अधिष्ठित रहता है। धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, अंश, भग, त्वष्टा तथा विष्णु—ये द्वादश आदित्योंके नाम हैं। यहाँपर प्रत्येकका विवरण संक्षिप्त रूपमें दिया जा रहा है—

१-चैत्रमासमें सूर्यके रथपर '**धाता**' नामक आदित्य निवास करते हैं।

२-वैशाखमासमें '**अर्यमा**' नामक आदित्य सूर्यके रथपर निवास करते हैं।

३-ज्येष्ठमासमें '**मित्र**' नामक आदित्य सूर्यके रथपर रहते हैं।

४-आषाढ़मासमें '**वरुण**' नामक आदित्य भगवान् भास्करके रथपर वास करते हैं।

५-श्रावणमासमें '**इन्द्र**' नामक आदित्य भगवान् सूर्यके रथपर वास करते हैं।

६-भाद्रपदमासमें '**विवस्वान्**' नामक आदित्य सूर्यके रथपर निवास करते हैं।

७-आश्विनमासमें '**पूषा**' नामक आदित्य सूर्यके रथपर निवास करते हैं।

८-कार्तिकमासमें '**पर्जन्य**' नामक आदित्य सूर्यके रथपर वास करते हैं।

९-मार्गशीर्षमासमें '**अंश**' नामक आदित्यका सूर्यरथमें वास होता है।

१०-पौषमासमें '**भग**' नामक आदित्य उनके रथपर निवास करते हैं।

११-माघमासमें '**त्वष्टा**' नामक आदित्य उनके रथपर निवास करते हैं।

१२-फाल्गुनमासमें उनके रथपर '**विष्णु**' नामक आदित्य निवास करते हैं और ये ही आदित्य अपने-अपने समयपर उपस्थित होकर वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा तथा शरद् आदि षड् ऋतुओं के कारण बनते हैं।

चराचरके आत्मा—भगवान् सूर्य

(डॉ० श्रीओ३म् प्रकाशजी द्विवेदी)

भगवान् सूर्यकी स्तुतिमें भक्त प्रात:काल प्रार्थना करते हुए कहता है कि हे भगवान् सूर्य! मैं आपके उस श्रेष्ठ रूपका स्मरण करता हूँ, जिसका मण्डल ऋग्वेद है, तनु यजुर्वेद है, किरणें सामवेद हैं तथा जो ब्रह्मा और शंकरका रूप है, जगत्की उत्पत्ति, रक्षा और नाशका कारण है तथा अलक्ष्य और अचिन्त्य है। आप ब्रह्मा, इन्द्रादि देवताओंसे स्तुत और पूजित हैं, वृष्टिके कारण एवं अवृष्टिके हेतु, तीनों लोकोंके पालनमें तत्पर और सत्त्व आदि त्रिगुणरूप धारण करनेवाले तथा गौओंके कण्ठ-बन्धनको छुड़ानेवाले हैं, ऐसे अनन्त शक्तिसम्पन्न आदिदेव सविताको मैं प्रात:काल प्रणाम करता हूँ।

भगवान् सूर्यनारायण! आप प्रत्यक्ष देव हैं। आप तीनों लोकों तथा चौदहों भुवनोंके स्वामी हैं। चारों युगोंमें आपकी महिमा, गरिमा, प्रताप विश्वविदित है। '**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च**' वेदवचनसे आपकी प्रसिद्धि है। आप चराचरकी आत्मा हैं। आप अन्धकारका नाश करनेवाले, राक्षसोंका नाश करनेवाले, दु:खों एवं रोगोंसे छुटकारा दिलानेवाले, नेत्रज्योतिको बढ़ानेवाले तथा आयुकी वृद्धि करनेवाले हैं। आप हृदयरोग, क्षयरोग एवं पीलिया आदि रोगोंको दूर करनेवाले हैं। रोगोंका नाश करनेवाले भगवान् सूर्यका ऋग्वेद (१।५०।११)-में मन्त्र है—

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय॥

अर्थात् हे हितकारी तेजवाले सूर्य! आप आज उदित होते हुए तथा ऊँचे आकाशमें जाते समय मेरे हृदयके रोग तथा पाण्डुरोगको नष्ट कीजिये। आरोग्यकी कामना भगवान् सूर्यसे करनी चाहिये—'**आरोग्यं भास्करादिच्छेत्**' यह मत्स्यपुराणका वचन सर्वविदित है। '**नमस्कारप्रियो भानुर्जलधाराप्रिय: शिव:**' भगवान् सूर्य नमस्कारप्रिय हैं। भगवान् शिवका जलधाराप्रिय होना प्रसिद्ध ही है।

सन्ध्या-गायत्रीका जप नित्य किया जाता है। गायत्रीमन्त्र मूलरूपसे सूर्यभगवान्की ही उपासना है। गायत्री वेदोंकी माता हैं, पापनाशिनी हैं। गायत्री सर्वदेवमयी एवं सर्ववेदमयी हैं।

भगवान् सूर्यकी उपासनाके बहुत-से मन्त्र प्रसिद्ध हैं। सूर्यके १२ नाम, २१ नाम, १०८ नाम और सहस्रनामका जप, चाक्षुषोपनिषद्का पाठ तथा अष्टाक्षर-मन्त्र इत्यादि अनेक मन्त्र शास्त्रोंमें प्रसिद्ध हैं। गायत्रीमन्त्रसे संध्या करते समय सूर्यको अर्घ्य देनेका विधान है, लेकिन जो गायत्रीसे जलार्घ देनेके अधिकारी नहीं हैं, वे इस मन्त्रसे जल दे सकते हैं—'**सूर्याय नम:, आदित्याय नम:, भास्कराय नम:।**' आदित्यहृदयस्तोत्रका पाठ भी प्रसिद्ध है। किसी भी प्रकारसे भगवान् सूर्यकी उपासना मनोवाञ्छित फल प्रदान करनेवाली है, परम कल्याणप्रद है। भगवान् रामने आदित्यहृदयका पाठ कर रावणपर विजय प्राप्त की। आदित्यहृदयमें कहा गया है कि भगवान् सूर्य ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, महेन्द्र, वरुण, काल, यम, सोम आदि अनेक रूपोंमें प्रतिष्ठित हैं। इनकी अर्चना-प्रार्थना अवश्य करनी चाहिये, इससे मङ्गल होता है।

भगवान् सूर्य उदित होते ही मृतप्राय अचेतन जगत्को चेतन बना देते हैं। वे इष्टकी प्राप्ति तथा अनिष्टकी निवृत्तिके उपायोंको प्रकाशित करनेवाले हैं। '***आत्मानं विद्धि***' अपनेको जानो—यह वेदका आदर्श है। सूर्यकी उपासना आत्माकी उपासना है। देवोपासककी अपेक्षा आत्मोपासक श्रेष्ठ कहा गया है। (शत०ब्रा०) सूर्योपासक ज्योतिष्मान् होता है।

संध्यामें प्रार्थना की जाती है—'**पश्येम शरद: शतं जीवेम शरद: शतं शृणुयाम शरद: शतं प्रब्रवाम शरद: शतमदीना: स्याम शरद: शतं भूयश्च शरद: शतात्।**' इसमें सूर्यनारायणसे दीर्घ आयुके लिये प्रार्थना की गयी है तथा इन्द्रियोंको सत्प्रेरणा देनेकी प्रार्थना की गयी है। भगवान् सूर्य ऊष्माके भण्डार हैं। अगर सूर्य न होते तो सारा जगत् ठण्डसे सिकुड़ जाता, चारों ओर बर्फ-ही-बर्फ हो जाती। अन्न, जलका अभाव हो जाता और प्राणी जीवित न रहते।

सूर्य निष्कामभावसे कर्म करते हुए स्थावर-जङ्गम

सृष्टिका बिना भेदभावके मित्रके रूपमें प्रकाशित एवं पालन-पोषण करते हैं। सूर्यसे बढ़कर कोई मित्र नहीं है। देहस्थित हमारी आत्माके विकासका मूल स्रोत अथवा उद्गम-स्थान सूर्यमण्डल ही है। बच्चा जब जन्म लेता है तो उसे सूर्यदर्शन कराया जाता है ताकि उसके शरीरका ताप नियन्त्रित रहे और उसकी बाह्यज्योति तथा अन्तर्ज्योति ठीक रहे। यह हमारा संस्कार है। सूर्य-उपासनासे तेज, बल एवं बुद्धि सुरक्षित रहते हैं।

भगवान् सूर्यसे प्रेरित होकर हमें निष्काम कर्म करते हुए ही जीवनयापन करना चाहिये।

मनुष्यका जीवन श्वासपर निर्भर है। इसीलिये संध्यामें प्राणायामका विशेष महत्त्व है। प्रातः सूर्यरश्मियोंसे भावित शुद्ध प्राणवायु हमारे तेज-बलकी वृद्धि करता है, हमें रोगरहित बनाता है।

प्रात:काल सूर्यरश्मियोंका सेवन करना चाहिये। इससे इच्छाशक्ति बलवती होती है। हमें भगवान् सूर्यके सम्मुख प्रार्थना करनी चाहिये कि हे भगवन्! हम आपकी कृपासे स्वस्थ हो रहे हैं, शक्ति प्राप्त कर रहे हैं। आपकी कृपासे हम सदा पूर्ण स्वस्थ रहेंगे। इससे हमारे हृदयमें शुभ शिवसंकल्प जागेगा, शुभ तरङ्गें हृदयमें उठेंगी, हमारा जीवन सुन्दर बनेगा। मनोविज्ञानका नियम है—जैसा हम सोचते हैं, तरङ्गोंके प्रभावसे वैसा ही बन जाते हैं। जो विचार हम करते हैं, वे ही विचार लौटकर हमारे पास आते हैं। अतः शुभप्रेरणादायी मङ्गल विचार ही समाजमें वितरित करने चाहिये। शाश्वत नियम है कि जैसा बीज हम बोते हैं, वे वैसा ही फल देते हैं। अन्तरके शुभ विचार हमें जाग्रत् एवं चैतन्य बना देंगे। हमें सत्, चित्, आनन्दका अनुभव होगा। वर्तमानको सुधारेंगे तो लोकमें सुयश और परलोकमें सद्गतिकी प्राप्ति होगी। हमारा आचरण दिव्य बनेगा। हमारा संकल्प दृढ़ होगा। भगवान् सूर्यनारायण! आप नित्य अवतरित होकर अमृतका दान देनेवाले हैं। आपको कोटिशः नमस्कार है, प्रणाम है। प्रार्थना है—'**असतो मा सद् गमय।**' '**तमसो मा ज्योतिर्गमय।**' '**मृत्योर्मा अमृतं गमय।**'

~~ o ~~

प्रत्यक्ष अवतार—भुवनभास्कर

(आचार्य पं० श्रीबालकृष्णजी कौशिक, पंचाधिस्नातक, धर्मशास्त्राचार्य, एम्०ए० (संस्कृत, हिन्दी), एम्०कॉम०, एम्०एड्०)

शुक्लयजुर्वेद (७।४२)-में प्रत्यक्ष देव भगवान् भुवनभास्करकी महिमाके विषयमें कहा गया है—

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥

अर्थात् जो तेजोमयी किरणोंके पुञ्ज हैं; मित्र, वरुण, अग्नि आदि देवताओं एवं समस्त जगत्के प्राणियोंके नेत्र हैं और स्थावर तथा जङ्गम—सबके अन्तर्यामी आत्मा हैं, वे भगवान् सूर्य आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्षलोकको अपने प्रकाशसे प्रकाशित करते हुए आश्चर्यरूपसे उदित हो रहे हैं।

भगवान् सूर्यनारायण सम्पूर्ण विश्वमें प्रत्यक्ष देवता हैं। सूर्यदेवसे ही इस सृष्टिके भूत-प्राणी उत्पन्न होते हैं और उन्हींसे प्राणिमात्र अपनी जीवन-प्रक्रियाको गतिशील रखते हैं।*

ऋषियोंकी यज्ञ-प्रक्रियाके अनुशास्ता सूर्यदेव ही हैं। सूर्यसे यज्ञ, यज्ञसे मेघ, मेघोंसे वर्षा, वर्षासे अन्न-फल-जल तथा औषधि आदि उत्पन्न होते हैं। अन्नसे अन्नमयकोश, बल-वीर्य एवं चेतना, आत्माका आविर्भाव होता है। बिना सूर्यके सृष्टिचक्र, जीवचक्र (जीवन-मरण), ऋतुचक्र, दैनिक चक्र, वनस्पति, औषधि, पेड़-पौधे, अन्न, फल, फूल आदिकी कल्पना करना भी सम्भव नहीं है। माता अदितिके पुत्र ही आदित्य कहे गये हैं—'**अदितिपुत्रः आदित्यः।**' आदित्यसे वायु, भूमि, जल, प्रकाश-ज्योति, दिशाएँ, अन्तरिक्ष, देव, वेद आदि उत्पन्न होते हैं।

* '**सूर्याद्वै खल्विमानि भूतानि जायन्ते। सूर्याद्यज्ञः पर्जन्योऽन्नमात्मा"""। आदित्याद्वायुर्जायते। आदित्याद्भूमिर्जायते। आदित्यादापो जायन्ते। आदित्याज्ज्योतिर्जायते। आदित्याद् व्योम दिशो जायन्ते। आदित्याद्देवा जायन्ते। आदित्याद्वेदा जायन्ते। आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति।**' (सूर्योपनिषद्)

भगवान् भास्कर तमसाच्छन्न अन्धकारमय भूमण्डलपर अमृतमय किरणोंसे प्रकाश करते हुए देदीप्यमान स्वर्णिम रथपर आरूढ़ होकर चौदह भुवनोंको देखनेके लिये आते हैं—

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

(यजु० ३३।४३)

ऋषिलोग सूर्योदय, सूर्यास्त तथा मध्याह्नके समय त्रिकाल-सन्ध्याद्वारा सूर्यदेवताकी सतत उपासना करते रहे हैं। गायत्रीमन्त्र वस्तुतः सूर्यदेवकी ही आराधना है। सविता देवताकी उपासना ही इसमें मुख्य है।

सूर्यगायत्री-मन्त्रमें भी सहस्त्ररश्मिप्रवाहक सूर्यदेवसे कल्याणकी प्रार्थना की गयी है—

आदित्याय विद्महे सहस्त्रकिरणाय धीमहि। तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्॥

ऋषिगण दीर्घायुष्य-प्राप्ति, दृष्टि, श्रवणशक्ति, वाक्-शक्ति और धन-धान्यकी सम्पन्नताके लिये भी सूर्यदेवसे ही प्रार्थना करते हैं—

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥

(यजु० ३६।२४)

पञ्चदेव-उपासनामें भी सूर्यदेवकी आराधना होती है। सूर्यनारायणकी अमृतमय किरणें आरोग्यदायक, जीवाणु-कीटाणु-विषाणु आदिकी नाशक हैं। आजकल वैज्ञानिक भी सूर्य-किरणोंसे विटामिन-डी प्राप्त होना स्वीकारते हैं। आयुर्वेदमें सूर्यस्नान या धूपस्नान, सूर्यकिरणस्नान प्रशस्त है। सूर्य-किरणोंसे रंग-चिकित्सा भी की जाती है।

भगवान् सूर्यनारायणके एक ध्यान-स्वरूपमें बताया गया है कि सविता-मण्डलके मध्यमें स्थित रहनेवाले भगवान् सूर्यनारायण कमलासनपर विराजमान हैं। वे केयूर, मकराकृत कुण्डल, किरीट तथा हार धारण किये हैं। उनका शरीर स्वर्णिम कान्तिसे सम्पन्न है और वे हाथोंमें शङ्ख तथा चक्र धारण किये हुए हैं—

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः॥

मनुष्यमात्रको सूर्यनारायणदेवकी नित्य आराधना करनी चाहिये। सूर्यदेवको प्रातः जलार्घ्य या दुग्धार्घ्य लाल पुष्प, लाल चन्दन एवं अक्षतसे देना चाहिये। आदित्यहृदयस्तोत्र-पाठ, रविवारका व्रत एवं सन्ध्योपासना सूर्यदेवताको अत्यन्त प्रिय हैं। अर्घ्य प्रदान करनेका एक मन्त्र इस प्रकार है—

एहि सूर्य सहस्त्रांशो तेजोराशे जगत्पते।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर॥

अर्थात् सहस्त्र किरणोंवाले, तेजकी अनन्तराशिरूप जगत्के स्वामी हे सूर्यदेव! आप मेरे समक्ष आइये। हे दिवाकर! मुझपर कृपा कीजिये और मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक प्रदत्त इस अर्घ्यको स्वीकार कीजिये।

सूर्यदेवको भगवान्ने अपना स्वरूप बताया है। अदितिपुत्र आदित्य सूर्यदेवके नामसे नवग्रहोंके अधिपति हैं। प्रकृतिविज्ञान, खगोलविज्ञान, ज्योतिषविज्ञानमें सूर्य प्रमुख ग्रह है। ज्योतिषमें सूर्यको आत्मकारक, आत्मबलदायक ग्रह माना गया है। द्वादश राशियोंमें प्रथम मेष राशि ही इनकी उच्च राशि तथा सिंह राशि स्वगृही होती है। आजकल ज्योतिषविज्ञानमें लग्नकुण्डली एवं चन्द्रकुण्डलीकी तरह सुदर्शन-चक्रमें सूर्य-कुण्डली भी बनायी जाती है। माणिक इनका प्रिय रत्न है। उत्तरायण सूर्यका विशेष महत्त्व है। भीष्म आदिने इच्छामृत्युके लिये इसे ही ध्यानमें रखा। सूर्यग्रहण एवं संक्रान्तिपर्वका धर्मशास्त्रीय व्रतोत्सवपर्वोंमें स्नान-दान-कर्महेतु विशेष महत्त्व है। मकरसंक्रान्ति तो मुख्य धार्मिक पर्व है। भगवान् सूर्यदेवकी एक प्रार्थनामें कहा गया है—

ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव॥ (ऋक्० ५।८२।५, शु०य० ३०।३)

भाव यह है कि समस्त संसारको उत्पन्न करनेवाले, सृष्टि, पालन, संहार करनेवाले किंवा विश्वमें सर्वाधिक देदीप्यमान एवं जगत्को शुभ कर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाले हे परब्रह्मस्वरूप सवितादेव! आप हमारे आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक दुरितोंको हमसे बहुत दूर ले जायँ—दूर करें। जो कल्याण है, श्रेय है, मङ्गलमय है उसे विश्वके समस्त प्राणियोंके लिये चारों ओरसे सम्यक् प्रकारसे ले आयें।

मूर्तब्रह्म भगवान् भास्कर

(चक्रवर्ती श्रीरामाधीनजी चतुर्वेदी)

सर्वव्यापक निर्गुण-निराकार ब्रह्म अनुभवगम्य है। उसका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता, किंतु उसके साकाररूप सूर्यका नित्य आकाशमण्डलमें दर्शन होता है। यह सूर्य उसी परम प्रकाश अव्यक्त ब्रह्मका प्रत्यक्ष प्रकाश है। शतपथब्राह्मणमें कहा गया है कि '**असौ वा आदित्यो ब्रह्म अहरहः पुरस्ताज्जायते**' (७।४।१।१४)। अर्थात् यह आदित्य सूर्यब्रह्म प्रतिदिन सामने प्रकट होता है। भाव यह है कि व्यापक अमूर्त ब्रह्म ही मूर्त सूर्यके रूपमें प्रतिदिन प्रातः सबके समक्ष उदित होता है। प्रश्नोपनिषद्में भी कहा गया है कि '**प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः॥**' (१।८)। अर्थात् प्रजाओंका प्राणरूप यह सूर्य उदित हो रहा है। प्राणिमात्रकी चेष्टा सूर्योदयसे ही होती है। इसलिये श्रुतिमें सूर्यको चराचर जगत्का आत्मा कहा गया है—'**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च**' (यजु० ७।४२)। सूर्यसे ही जगत्की सृष्टि, स्थिति तथा लय होता है, जिसका निर्देश सूर्योपनिषद्में इस प्रकार है—

सूर्याद्भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु।
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च॥

जो सूर्य है, वह मैं ही हूँ। इस कथनसे आत्मरूप सूर्य ब्रह्मकी उपासना व्यक्त होती है।

तैत्तिरीयोपनिषद्में कहा गया है कि '**आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते**' (१।५।१)। इसका भाव यह है कि '**भूः, भुवः, स्वः**' ये व्याहृतियाँ पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा स्वर्गलोकके नामसे विख्यात हैं। इनके ऊपर एक चौथी व्याहृति '**महः**' है, जिसके अधिष्ठाता सूर्य हैं। इनसे ही तीनों लोकोंकी महत्ता है। महर्लोक सात लोकोंके मध्यमें है, नीचेके '**भूर्भुवः स्वः**' तथा ऊपरके '**जनः, तपः, सत्यम्**' के बीच दिनमणि रूप महर्लोकसे सभी लोक प्रभावित हैं।

सूर्यके ब्रह्मरूपका निर्देश शतपथब्राह्मणमें अनेक बार हुआ है जैसा कि '**असौ वा आदित्यो ब्रह्म असौ वा आदित्यो बृहज्ज्योतिः**' (६।३।१।१५), '**असौ वा आदित्यः सूर्यः**' (९।४।२।२३), '**असौ सूर्यो वै सर्वेषां देवानामात्मा।**' इस प्रकार सूर्यविषयक अनेक सूक्तियोंके द्वारा सूर्यके महत्त्वको बताते हुए यह भी कहा गया है—'**आदित्यस्त्वेव सर्व ऋतवः। यदैवोदेऽत्यथ वसन्तो यदा सङ्गवोऽथ ग्रीष्मो यदा मध्यन्दिनोऽथ वर्षा यदापराह्णेऽथ शरद्यदैवास्तमेत्यथ हेमन्तः। तर्हि एषः अस्य लोकस्य नेदिष्ठम अन्तिकतमो भवति।**'—इनका भाव यह है कि सूर्यकी सत्तासे ही वसन्त, ग्रीष्म आदि ऋतुएँ प्रतिदिन अनुभूत होती हैं। सूर्योदयसे दो घंटे चौबीस मिनटतक वसन्त ऋतु, इसके बाद सङ्गव—गोदोहनकालतक ग्रीष्म, फिर क्रमशः वर्षा, शरद् तथा हेमन्त—इन ऋतुओंका संक्रमणकाल है। इस प्रकार दिनके बारह घंटोंमें इन पाँच ऋतुओंका विभाग है, जो सूर्यके कारण ही होता है। सूर्यकी प्रखर किरणोंका अनुभव हमें मध्याह्नमें ही क्यों होता है? इसका कारण यह है कि उस समय सूर्य इस लोकके अत्यन्त सन्निकट रहता है। सूर्यकी दूरी और निकटता ही सूर्यकी अतप्त तथा तप्त किरणोंके अनुभवका कारण है। मध्याह्नमें सूर्यके भीतर अधिक प्रखर किरणोंका सन्निवेश होना कारण नहीं है; क्योंकि सूर्यब्रह्म सदा एकसमान रहता है, इसमें कमी-वेशी नहीं होती है।

वैज्ञानिकोंकी मान्यताके अनुसार पृथ्वीसे सूर्यकी दूरी ९ करोड़ ७० लाख मील है। इसीलिये सूर्यकी किरणें पृथ्वीतलपर सूर्योदयके ८ मिनट १८ सेकेण्ड बाद पहुँचती हैं। यह दूरी प्रातःकालकी है। मध्याह्नकालमें कुछ कम हो जाती है, जिससे सूर्यकी प्रखर किरणोंका प्रभाव पृथ्वीपर अधिक पड़ता है। फिर प्रातःकालके समान सायंकालमें भी सूर्यकी दूरी अधिक होती है। यही कारण है कि प्रातः उदय तथा सायं अस्तके समय सूर्य लालवर्णका ही दिखायी देता है, वही उसका अपना रूप है। उदयके कुछ समय बाद सूर्यमें शुक्लवर्णकी प्रतीति तो द्रष्टाके नेत्रोंमें सूर्यकी किरणोंके चाकचिक्यसे होती है। स्वरूपतः सूर्य लाल ही है। तभी तो अन्यत्र भी जब कभी सूर्य उदित होता है तो लाल ही दिखायी देता है।

मूर्तरूप दृश्य-पदार्थोंमें सबसे बड़ा प्रकाशपुञ्ज ज्योतिष्मान् सूर्य ही है, दूसरा नहीं। वैज्ञानिकोंने सूर्यका व्यास आठ लाख अस्सी हजार मील बताया है, जो पृथ्वीसे लगभग एक सौ दस गुना बड़ा है। अमूर्त, व्यापक, परमप्रकाश ब्रह्मका मूर्तरूप सूर्य भी ब्रह्म ही है। मैत्रायण्युपनिषद् (५।३)-में मूर्त और अमूर्त रूपसे ब्रह्मका निर्देश इस प्रकार हुआ है—'**द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चामूर्तम्।**' अमूर्त निराकार ब्रह्मका यह विश्वब्रह्माण्ड मूर्तरूप है, इसमें ज्योतिरूप मूर्त सूर्य है। इसके समान दूसरा कोई दृश्य नहीं है। ब्रह्माण्डके भीतर सभी ग्रह-उपग्रह सूर्यसे ही संचारित होते हैं। सूर्य मूलभूत अमूर्त परब्रह्मका ज्योतिरूप ठोस प्रकाश है, अतः यह भी उस परमप्रकाशसे सदा आकृष्ट रहता है।

इस प्रकार यह मूर्तरूप सूर्य प्रत्यक्ष ब्रह्म ही है। इसकी उपासना सगुण ब्रह्मकी आराधना है। अतः जो व्यक्ति सूर्यनारायणकी श्रद्धापूर्वक आराधना करता है, उसे भुक्ति-मुक्ति—दोनोंकी उपलब्धि अवश्य होती है, यह बात अनुभव-सिद्ध है।

अवतार-दर्शन

(एकराट् पं० श्रीश्यामजीतजी दुबे 'आथर्वण')

जिसका अवतार होता है, वह क्या है? अवतारसे पूर्व क्या होता है? अवतार क्या है? अवतारका कारक क्या है? इन सब बातोंपर विचार करनेके लिये हम वेदोंकी ऋचाओंपर दृष्टिपात करते हैं। ऋग्वेद (१०।१२९।१)-में कहा गया है—

'नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।'

अर्थात् अवतार या सृष्टिके पूर्व न असत् था, न सत् था, न रज था, इनसे परे जो था, उसका कोई माप नहीं था। (व्योम=वि+ओम=मापहीन=अनादि एवं अनन्त=आकाश)

'न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।'

उस समय न मृत्यु थी, न अमृत (जीवन) था, न रात्रि थी, न दिन था तथा न कोई ठौर (प्रकेत) ही था।

'को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्
कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।'

कौन इस प्रकृतिका भक्षण कर अपने पास रखे हुए है, इसको कहने या बतानेवाला भी तो कोई नहीं था। यह सृष्टि कहाँसे आयी? या किसने इसे उत्पन्न किया? इसे बतानेवाला भी कोई नहीं था।

'यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद॥'

जो इस सृष्टिका अध्यक्ष परम व्योममें बसता है, वह इसके विषयमें जानता है अथवा नहीं भी जानता है, इसे कौन कहे?

सर्वप्रथम शून्य (कुछ नहीं) था। महाकाश ही शून्य है। विष्णुके सहस्रनामोंमें एक नाम शून्य भी है। इसलिये कहना चाहिये कि पहले-पहल विष्णुतत्त्व था। वेदवचन है—

'असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम्। भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितम्'

(अथर्व० १७।१।१९)

असत्में सत् विद्यमान है। सत्में भूतकालकी घटनाएँ विद्यमान होती हैं। जो कुछ भविष्यमें घटित होनेवाला है, वह भूतकालमें हो चुका होता है। इसीको कहते हैं—भव्यमें भूत स्थित होता है। भूतकालमें भविष्य प्रतिष्ठित होता है अर्थात् जो भूतकालमें घटा है, वह सब भविष्यमें भी होगा। इस मन्त्रसे प्रकट है कि असत्से सत् होता है। अर्थात् अव्यक्त मूलप्रकृति, जिसमें तीनों गुण साम्यावस्थामें होते हैं, उससे व्यक्त प्रकृति—गुणोंकी विकृति होती है। यह सृष्टिका आरम्भ है या अव्यक्तका व्यक्तमें अवतरण है। प्रकृति (असत्)-का प्रथम अवतार महत्तत्त्व (सत्) है। सृष्टिका अभाव असत् है। अभावसे भावकी उत्पत्ति है। सृष्टिका भाव सत् है। उपनिषद्का उद्घोष है—

'असद् वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत।' (तैत्तिरीयोपनिषद् २।७।१) सृष्टिके पूर्व यह असत् तत्त्व ही था। इसीसे सत् उत्पन्न हुआ। असत्का अर्थ अन्धकार भी है। असत्से सत् हुआ, इसका अर्थ है—अन्धकारसे प्रकाशकी उत्पत्ति हुई। यह प्रकट सत्य है—रात्रिके गर्भसे प्रकाश (सूर्योदय) होता है। महाकाशमेंसे एक साथ असंख्य ज्योतियाँ अनेक रूपोंमें प्रकट हुईं। यह ज्योतिर्मय ब्रह्मका प्रथम अवतार है। इसे हिरण्यगर्भ कहते हैं। यह सूर्य ही हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) है। असंख्य हिरण्यगर्भ हैं। ये ही भगवान् हैं। 'भा', भाति—चमकता है तथा 'गम्' गच्छति—चलता है, इससे मतुप् प्रत्यय लगानेपर भगवत् शब्द बनता है। भगवत्+सु=भगवान्—जो चलता हुआ चमकता है अथवा चमकता हुआ चलता है। भगवान्में इच्छा हुई। मन्त्र है—

'सोऽकामयत्। बहु स्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा। इदꣳ सर्वमसृजत यदिदं किं च। तत् सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्।' (तैत्ति०उप० २।६।४)

उसने चाहा। बहुत प्रजावाला होऊँ, यह। उसने तप (उद्योग) किया। उसने तप करके। यह सब विश्व रचा। यह जो कुछ भी (दृश्यमान) है। उसे रच कर उसमें ही अनुप्रविष्ट हुआ—अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट हुआ।

वास्तवमें भगवान्ने अपनेको ही नाना रूपोंमें प्रकट किया। यह सृष्टि भगवान्से भिन्न नहीं है। पदार्थ अलग है, भगवान् अलग हैं—ऐसा मानना अज्ञान है; क्योंकि भगवान्के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। **'ब्रह्मैव इदं सर्वम्'** (नृसिंहोत्तर० उप० ७)। अव्यक्तावस्थामें प्रकृति और पुरुष दोनों एक हैं, विष्णुरूप हैं। वामनपुराणके, गजेन्द्रमोक्षमें स्तुति की गयी

है—'**ॐ नमो मूलप्रकृतये अजिताय महात्मने।**' इससे प्रकृति-पुरुषका ऐक्य या ब्रह्मत्व सिद्ध होता है। सबसे पहले कामका अवतार हुआ। '**कामः तदग्रे समवर्तत**' (ऋक्० १०।१२९।४)। भगवान् विष्णुके सहस्रनामोंमेंसे एक नाम है—काम। यह भगवान्का अमूर्तरूप है। यह हृदयगत भाव है।

ज्योतिर्मय ब्रह्मने अपनेको ग्रहोंके रूपमें व्यक्त किया। पृथ्वी, चन्द्र, भौम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि—ये सूर्यके पार्थिव (विकृत) रूप हैं। ये तो दृश्य ग्रह हैं। ऐसे अनेक अदृश्य ग्रह हैं। इस परिवारको सौरमण्डल कहते हैं। ऐसे असंख्य सौरमण्डल हैं। प्रत्येकमें एक-एक पृथ्वी है। पृथ्वीपति परमात्मा सूर्य है, जो पृथ्वीपर नाना जीवोंके रूपमें प्रकट (अवतरित) होता रहता है।

प्रकृतिके विकार या विकासका नाम भी अवतार है। अवतारका सरल एवं सुस्पष्ट अर्थ है—आगमन, प्राकट्य, इन्द्रियगम्य होना। अगुण अकिञ्चन पुरुषने अपनेको प्रधान बनाया। प्रधानसे अहङ्कार उत्पन्न हुआ। अहङ्कारके सात्त्विक-रूपसे मन, राजसरूपसे पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं पाँच कर्मेन्द्रियाँ, तामसरूपसे पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके विषय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धका प्राकट्य हुआ। पाँच विषय पाँच तन्मात्र कहलाते हैं। इन तन्मात्रोंसे पाँच महाभूत उत्पन्न हुए। शब्दसे आकाश, स्पर्शसे वायु, रूपसे तेज, रससे जल, गन्धसे पृथ्वीका उद्भव हुआ। ये २४ प्रकृतियाँ (१ प्रधान+१ अहङ्कार+१ मन+१महत्तत्त्व+५ ज्ञानेन्द्रियाँ+५ कर्मेन्द्रियाँ+५ तन्मात्रा+५ भूत) ही परमात्माके २४ अवतार हैं। यह भगवान्का प्राकृतिक अवतार है। ये अवतार नित्य हैं, सूक्ष्म हैं। अवतारक पुरुषको हमारा प्रणाम।

चौदह प्रकारकी प्राणिसृष्टि है। इसे १४ भुवनके नामसे जाना जाता है। '**चतुर्दशविधो भूतसर्गः**' (सांख्यसूत्र १८)। चौदह प्रकारकी प्राणिसृष्टिमें आठ प्रकारकी दैवीसृष्टि है, पाँच प्रकारकी तिर्यक् योनियोंकी सृष्टि है तथा एक प्रकारकी मानुषसृष्टि है। संक्षेपमें यही भौतिक सृष्टि है। कथन है—

अष्टविकल्पो दैवस्तैर्यग्योनिश्च पञ्चधा भवति।
मानुष्यश्चैकविधः समासतो भौतिकः सर्गः॥

(सांख्यकारिका ५३)

ब्राह्म, प्राजापत्य, ऐन्द्र, दैव, गान्धर्व, पित्र्य, विदेह और प्रकृतिलय—ये आठ दैव-सर्ग हैं। यह सत्त्वप्रधान सृष्टि है और सबसे ऊपर है। नौवाँ मानुष-सर्ग है, जो रजोगुण प्रधान है। इसकी मध्य-स्थिति है। मनुष्यसे नीचे पशु, पक्षी, सरीसृप, कीट तथा स्थावर (वृक्षादि)—यह पाँच प्रकारका तिर्यक्-सर्ग है। मनुष्य-सर्ग एवं तिर्यक्-सर्ग तो प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हैं, किंतु दैव-सर्ग सूक्ष्म होनेके कारण इन्द्रियगोचर नहीं है। इसे देखनेके लिये दिव्य नेत्र चाहिये।

जितनी भी योनियाँ हैं, वे भगवान्की हैं। उनमें भगवान् गर्भस्थापन (जीवरचनाका कार्य) करते हैं, जिससे प्राणी उत्पन्न होते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनके प्रति यही कहते हैं—

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥

(गीता १४।३)

शास्त्रानुसार योनियाँ ८४ लाख हैं। बृहद् विष्णुपुराणके मतसे ९ लाख जलज, २० लाख स्थावर, १० लाख पक्षी, ३० लाख पशु, ११ लाख कृमिकीट तथा ४ लाख मनुष्य हैं। ये योनियोंके प्रकार, भेद या जातियाँ हैं। कर्मविपाकके अनुसार ३० लाख प्रकारके स्थावर, ९ लाख प्रकारके जलज, १० लाख प्रकारके कृमि, ११ लाख प्रकारके पक्षी, २० लाख प्रकारके पशु तथा ४ लाख प्रकारके मनुष्य हैं। इन चौरासी लाख प्रकारकी योनियोंके माध्यमसे भगवान् ही आविर्भूत हो रहे हैं। एक साथ इतने अवतार धारण करनेवाले ईशको हमारा प्रणाम।

८४ लाख योनियोंका संक्षेपीकरण किया जाय तो ८+४=१२=१+२=३ योनियाँ हैं। ये योनियाँ हैं—तमोगुणी राक्षस, रजोगुणी मनुष्य तथा सात्त्विक देवता। ज्योतिष-शास्त्रकी इन तीन योनियोंमें परमात्मा सर्वत्र वर्त रहा है—**त्रियोनये परमात्मने नमः**।

भगवान्का लिङ्गावतार लोकमान्य है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंके रूपमें कौन इनकी अर्चना नहीं करता? १२ राशियाँ—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ तथा मीन ही १२ ज्योतिर्लिङ्ग हैं। पूर्वी क्षितिजपर लग्नके रूपमें इनका उदय होता रहता है। इन ज्योतिर्लिङ्गोंका प्रभाव मासके रूपमें दिखायी पड़ता है। ये १२ ज्योतिर्लिङ्ग विष्णुके स्वरूप हैं। इनका कभी नाश नहीं होता। वचन है—

'द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य।'

(अथर्व० ९।९।१३)

परमात्मा अपनी प्रकृति (माया)-का आश्रय लेकर नाना रूपों (अवतारों)-की सृष्टि करता है। श्रुतिवाक्य है—

'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' (बृह० उप० २।५।१९)—इसी बातको गीतामें इस प्रकार कहा गया है—

'मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।' (९।१०)

भगवान्‌की अध्यक्षतामें प्रकृति स्वयं चराचर विश्वका सृजन करती है अर्थात् अवतारोंकी कारक यह प्रकृति है। प्रकृतिका आश्रय लेकर परमात्मा शरीर धारण करता है, नाना योनियोंके रूपमें आविर्भूत होता है।

भगवान्‌की शाश्वत योनि आकाश (शून्य) है। भगवान्‌का स्वरूप आकाश है। भगवान्‌के माता-पिता, बन्धु, सखा, सन्तति—सब कुछ यह आकाश है। भगवान् इस आकाशमेंसे अपनेको प्रकट करते रहते हैं। आकाशगङ्गाएँ, नीहारिकाएँ, नक्षत्रमण्डल, धूमकेतु, ग्रहगण आदि भगवान्‌के रूप हैं। इस प्रकार भगवान् अगुणसे सगुण, अरूपसे सरूप तथा शून्यसे अशून्य बनते हैं। यह भगवान्‌की लीला (माया) है। इस मायाको हमारा नमस्कार।

परमात्मा समस्त विरोधाभासोंका आश्रय है, अस्ति-नास्तिमय है, अग्नीषोमात्मक है, अर्धनारीश्वर है। इसलिये वह पूर्ण है। पूर्ण परमात्माके समस्त अवतार पूर्ण हैं। अजायमान ईश्वर नाना प्रकारसे जायमान होता है—अपने अप्रकट रूपको प्रकट करता है—अवतार लेता है। मन्त्र है—**'अजायमानो बहुधा वि जायते'** (यजु० ३१।१९)। जो ईश भीतर है, वही बाहर है, जो बाहर है, वही भीतर है। मन्त्र है—**'यदन्तरं तद् बाह्यं यद् बाह्यं तदन्तरम्।'** (अथर्व० २।३०।४) परोक्ष परमात्मा ही प्रत्यक्ष परमेश है। जीवको समाधिमें इसकी अनुभूति होती है। **'योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्।'** (यजु० ४०।१७) सूर्यमण्डलमें जो ईश्वर विद्यमान है, वही मैं हूँ।

भगवान् अवतार लेनेके लिये हर क्षण सन्नद्ध रहते हैं। भगवान्‌का एक अवतार है—यज्ञरूप। प्रज्वलित अग्निमें आहुतियोंको स्वाहायुक्त मन्त्रोंसे डालना यज्ञ है—**'यज्ञो वै स्वाहाकारः'** (शतपथब्राह्मण ३।१।३।२७)। काष्ठको मथकर उसमेंसे अग्निको प्रज्वलित करना ही भगवान्‌को प्रकट करना है। प्रज्वलित अग्नि साक्षात् परमदेव है। पार्थिव अग्नि, पार्थिव भगवान् है। दिव्य अग्निका यह अवतार है। दिव्य अग्नि धूमरहित है, पार्थिव अग्नि सधूम होती है। जो अन्तर निर्गुण एवं सगुण ईश्वरमें या अशरीरी एवं शरीरधारी भगवान्‌में है, वही अन्तर दिव्याग्नि (सूर्य) एवं पार्थिवाग्नि (यज्ञ)-में है। अग्नि पवित्र करनेवाला होनेसे पावक है, पवित्र होनेसे शुचि है, प्रकाशसे युक्त होनेके कारण शुक्र है, पापनाशक होनेसे शोचि है, अविनाशी होनेसे अमर्त्य है। यह अग्नि राक्षसोंसे हमारी रक्षा करता है। इसलिये यह स्तुत्य, ईड्य है। मन्त्र है—

'अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः। शुचिः पावक ईड्यः॥' (अथर्व० ८।३।२६)

यह अग्निरूपी भगवान्‌की कथा है। इससे दुर्बुद्धिका नाश होता है, सद्बुद्धिकी प्राप्ति होती है, जीवन चमकता है, अभय होता है, आनन्दका आगम होता है—जन्म सार्थक होता है।

वेदादि धर्मग्रन्थोंमें अवतार-रहस्य

(दण्डी स्वामी श्रीमद्दत्तयोगेश्वरदेवतीर्थजी महाराज)

अव उपसर्गपूर्वक तृ धातुसे 'अवतार' शब्द बना है। उच्च स्थानसे नीचे स्थानपर उतरना—इसे 'अवतार' कहते हैं। अवतार किसका? कब? और किसलिये होता है? इन प्रश्नोंके प्रत्युत्तर भगवान् श्रीकृष्णने भगवद्गीता (४।७-८)-में इस प्रकार दिये हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

हे अर्जुन! जब-जब धर्मकी ग्लानि (हानि) होती है और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब मैं जन्म (अवतार) धारण करता हूँ। साधुजन (सत्पुरुषों)-के रक्षणहेतु, दुर्जनोंके विनाशार्थ तथा धर्मकी स्थापनाके लिये मैं (भगवान्) युग-युगमें अवतीर्ण (प्रकट) होता हूँ।

इससे स्पष्ट होता है कि भगवान्‌के अवतारका प्रथम प्रयोजन साधुस्वभावके सत्पुरुषोंका परित्राण (रक्षण) करना ही है।

भगवान् श्रीकृष्ण आगे कहते हैं कि—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

(गीता ४।९)

हे अर्जुन! मेरे दिव्य जन्म एवं कर्मको जो व्यक्ति तत्त्वतः जानता है, वह देहत्याग करनेके बाद पुनर्जन्मको प्राप्त नहीं होता, अपितु मुझे ही प्राप्त होता है।

वेदादि धर्मग्रन्थोंमें प्रतिपादित अवतारतत्त्व हिन्दूधर्मका एक प्रमुख तत्त्व है। वैकुण्ठधाम छोड़कर अपने विशेष कार्य पूर्ण करनेके लिये भगवान्‌के भूलोकमें पधारनेको 'अवतार' कहा जाता है। भगवान् जब प्राणीका अथवा मनुष्यका देह धारण कर कुछ समयपर्यन्त अथवा जीवनपर्यन्त उस देहमें निवास करते हैं, तब उस देहधारणको अवतार कहते हैं।

उत्पत्ति, स्थिति एवं लय—ये सृष्टिके स्वभावधर्म हैं और ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर—ये तीन देव धर्मके कारक माने गये हैं। उनमें सृष्टिपालनका उत्तरदायित्व विष्णुपर है। अतः जब-जब सृष्टिमें उपद्रव प्रारम्भ होता है और विनाशकी प्रक्रिया वृद्धि करने लगती है, मानव-समाजमें धर्मकी हानि होती है, तब-तब धर्मसंस्थापनहेतु भगवान् विष्णु युग-युगमें अवतार लेते हैं। ऐसी धारणा भारतीय श्रद्धावन्तोंकी है। सनातनमतके सभी धर्मग्रन्थ इस धारणाको परिपुष्ट करते हैं।

मनुष्यका जन्म होता है, जबकि भगवान्‌का अवतार होता है। मनुष्य अपना जन्म लेनेमें परतन्त्र है, जबकि भगवान् अपना अवतार लेनेमें स्वतन्त्र हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता (४।६)-में स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने कहा है कि—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

हे अर्जुन! मैं अज (अजन्मा) हूँ, अव्यय (अविनाशी) हूँ, समस्त प्राणियोंका ईश्वर हूँ तथापि मैं अपनी प्रकृतिको अधीन करके अपनी मायाद्वारा जन्मता हूँ। मैं जन्म लेनेमें स्वतन्त्र हूँ।

वेदोंमें अवतारतत्त्वके जो बीज प्राप्त होते हैं, पुराणोंमें उनका उपबृंहण कर आख्यानरूपमें विस्तार हुआ है। वैदिक वाङ्मयमें अवतारोंका जो मूल प्राप्त होता है, उसका संक्षेपमें कुछ वर्णन यहाँ प्रस्तुत है—

(१) शतपथब्राह्मण (१।८।१।१—६)-में कथा आयी है कि प्रलयकालमें मनुने अपनी नौकाकी रस्सी एक महामत्स्यके शृंगके साथ बाँधी थी। उस मत्स्यराजने महाप्रलयसे मनुका रक्षण किया था। शतपथब्राह्मणकी इस सूक्ष्म कथासे आगे मत्स्यावतारकथाका विस्तार हुआ।

(२) तैत्तिरीय आरण्यकमें कथा है कि प्रजापतिका शरीर कूर्मरूपमें जलमें फिरता था, वही '**सहस्रशीर्षा पुरुषः**' इस स्वरूपमें प्रजापतिके समक्ष प्रकट हुआ। तब प्रजापतिने उन्हें विश्वनिर्माण करनेके लिये कहा। उसने प्रत्येक दिशामें जल फेंककर आदित्यादि सृष्टिका निर्माण किया। तैत्तिरीय ब्राह्मण (१।१।३।६)-में कथा है कि प्रजापतिने वराहरूप धारणकर समुद्रतलमेंसे पृथ्वीको जलसे बाहर निकाला। यह कथा वराह-अवतारकी सूचक है।

(३) ऋग्वेद (८।१४।१३)-में कथा है कि नमुचि दैत्यका मस्तक इन्द्रने जलका फेन फेंककर उड़ाया था। इस कथासे नृसिंह-अवतारकी कथा विकसित हुई। नृसिंहका प्रथम उल्लेख तैत्तिरीय आरण्यकमें आया है।

(४) ऋग्वेद (१।२२।१७)-में है कि '**इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।**'

इस विश्वको तीन पाद (चरण) रखकर विष्णुने आक्रान्त किया।

इससे वामनने बलिराजके पास जाकर त्रिपादभूमि माँगकर आखिरमें त्रिभुवन व्याप्त किया, ऐसी वामन-अवतारकी कथाकी सूचना है।

शतपथब्राह्मण (१।२।५।५)-में कहा है कि विष्णु ही प्रथम वामन (ठिंगु) था—'**वामनो ह विष्णुरास।**' विष्णुका अर्थ यज्ञ भी है। इसके योगसे देवोंने अर्चा और श्रम करके सम्पूर्ण पृथ्वी प्राप्त कर डाली।

(५) अथर्ववेद (५।१९।१-११)-में कथा है कि 'सृञ्जय वैतहव्य' नामक राजा भृगु एवं ब्राह्मणोंकी हिंसा करनेपर पराभूत हुए। इस कथासे परशुराम अवतारकी कथा सूचित होती है।

(६) छान्दोग्योपनिषद् (३।१७।६)-में देवकीपुत्र कृष्णका उल्लेख मिलता है।

द्वापरयुगमें यदुनन्दन श्रीकृष्णको भगवान् विष्णुका अवतार कहा गया है—'**कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्॥**'

श्रीकृष्णका बालचरित्र गोकुल और वृन्दावनमें गोप-गोपियोंके साथ व्यतीत हुआ। उन्होंने बालपनमें दैत्योंका

संहार किया, कालियदमन एवं कंसका वध किया इत्यादि। वे बड़े होकर वृष्णियोंके राजा माने गये, यद्यपि वे मूलत: यादवों और सात्वतोंके देवके रूपमें प्रसिद्ध थे।

(७) रामायणादि धर्मग्रन्थोंके अनुसार रामावतार त्रेतायुगके अन्तमें हुआ। महर्षि वाल्मीकिकृत रामायणद्वारा राम (दाशरथी राम) लोकविश्रुत हुए। वे सत्यवादी, निर्भीक, दृढ़प्रतिज्ञ, पितृभक्त, बन्धुवत्सल, महापराक्रमी होनेसे अगणित लोकोंमें आदरणीय हुए।

रामभक्तिसाहित्यमें अध्यात्मरामायण तथा श्रीरामचरितमानसका उच्च स्थान है। वैष्णव-सम्प्रदायमें विष्णुकी अपेक्षा उनके अवतार राम एवं कृष्ण किंवा अन्य अवतारको विशेष महत्त्व देकर पूजा की जाती है। विष्णुके अनन्त अवतार हैं। विविध ग्रन्थोंमें विविध नाम-रूपोंमें अवतारका वर्णन हुआ है।

महाभारत शान्तिपर्व (अ० ३३९)-में नारायणी-उपाख्यानमें मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, भार्गवराम (परशुराम), दाशरथी राम एवं वासुदेव कृष्ण—इन छ: अवतारोंकी चर्चा है, आगे हंस और कल्कि आदि अवतार लेकर दस अवतारोंका उल्लेख है। कहीं-कहीं यह संख्या बारह है। श्रीमद्भागवत (६। २। ७)-में २४ अवतारोंका निर्देश हुआ है।

ये सभी अवतार लीलावतार नामसे प्रसिद्ध हैं। इनमें भी दस अवतार प्रसिद्ध हैं, जो इस प्रकार हैं—

१. मत्स्य, २. कूर्म, ३. वराह, ४. नृसिंह, ५. वामन, ६. परशुराम, ७. दाशरथी राम, ८. कृष्ण, ९. बुद्ध और १०. कल्कि।

बौद्ध साहित्यमें बुद्धको दाशरथी रामका अवतार माना गया है। हिन्दुओंके अवतार-सिद्धान्तको बौद्धोंके महायान-पन्थने स्वीकार किया और उसको अपने पन्थमें प्रविष्ट किया। बोधिसत्त्वको बुद्धका अवतार माना गया। महायानपन्थने ऐसा घोषित किया कि बुद्ध निर्वाण-प्राप्तिके बाद भी पुन: अवतार लेनेकी क्षमता रखते हैं। भविष्यमें वे (बुद्ध) मैत्रेय बुद्धरूपमें पुन: अवतार ग्रहण करनेवाले हैं।

धर्मग्रन्थोंमें अवतारके दो प्रकार कहे गये हैं—(१) अंशावतार (२) पूर्णावतार। थोड़े-थोड़े उपद्रवोंकी शान्तिके लिये उतने समयपर्यन्त भगवान् अवतार लेते हैं और अपना वह कार्य समाप्त कर वे अन्तर्धान हो जाते हैं। इस प्रकारके अवतारको अंशावतार कहते हैं। नीतिधर्मका उच्छेद करनेवाले एवं भूमिके भारभूत होनेवाले रावण, कंसादि विरोधी विग्रहोंके निर्दलनके लिये भगवान् जब अपने शक्तिसमूहसहित अवतार लेते हैं और वह कार्य पूर्ण हो जानेके बाद भी कुछ समयपर्यन्त इस पृथ्वीपर रहते हैं, ऐसे अवतारको पूर्णावतार कहते हैं। इस दृष्टिसे राम-कृष्णादिको पूर्णावतार कहा गया है। रामके लघु बन्धु लक्ष्मणको तथा कृष्णके ज्येष्ठ बन्धु बलरामको शेषावतार माना गया है, रुक्मिणीको लक्ष्मीका अवतार तथा गोप-गोपियोंको देव-देवियोंका अवतार कहा गया है।

किन-किन देवोंने कौन-कौन अंशावतार लिये, इस विषयमें महाभारत आदिपर्व (अध्याय ५४—६४)-में कहा गया है। उसमें कतिपय अवतार इस प्रकार वर्णित हैं—नित्यावतार, गुणावतार, विभवावतार, तत्त्वावतार, अर्चावतार, अन्तर्यामी-अवतार, लीलावतार, मन्वन्तरावतार, युगावतार, आवेशावतार आदि।

अवतारका मुख्य सिद्धान्त इस प्रकार है—

(१) परमेश्वरका एक रूपमें नित्य-लोकमें नित्य-विहार होता है और दूसरे रूपमें जगत्प्रवृत्ति होती है।

(२) परमेश्वर एक होनेपर भी स्वत:को अनेक रूपमें प्रकट कर सकता है।

(३) अवतार नित्य रूप है, मायिक नहीं।

(४) सभी अवतार सच्चिदानन्दविग्रह हैं।

(५) कतिपय अवतार मनुष्यरूपमें होते हैं तो कुछ परिस्थितिवश एवं कुछ अवतार भक्तकी इच्छावश होते हैं।

(६) अवतारका मानुषतन ही दिव्य होता है और उसमें दिव्य शक्तिका निवास होता है।

(७) प्रत्येक अवतारकी विशिष्ट देहलीला होती है और विशिष्ट लोक भी होता है।

(८) परमेश्वर अवताररूपमें पृथ्वीपर आनेपर भी अपने दिव्य एवं पूर्णरूपमें निजधाममें विराजमान रहते हैं।

विष्णुकी तरह ही भगवान् शिवने भी विविध प्रसंगमें अनेक अवतार लेकर साधुपरित्राण और दुष्टविनाश किया। इस विषयमें शिवपुराणमें वर्णन है। कालभैरव, शरभ, यज्ञेश्वर, महाकाल, एकादश रुद्र, हनुमान्, नर्तक नट (नटराज), अवधूतेश्वर, वृषेश आदि। शिवकी प्रथम भार्या दक्षकन्या सती ही बादमें हिमालय-सुताके रूपमें अवतरित होकर 'पार्वती' नामसे शिवकी अर्धाङ्गिनी हुईं। पार्वतीको आदिमाया किंवा आदिशक्ति भी कहते हैं। उन्होंने भी असुरमर्दनके लिये अनेक

अवतार लिये हैं। मुख्य देवताके कुछ परिवार देवता भी होते हैं। वे भी अपने स्वामीकी अनुज्ञासे किंवा विशिष्ट कार्योंके लिये मानव-अवतार धारण करते हैं। गणपतिके भी युग-युगमें गणेश, विघ्नेश, मयूरेश, सिद्धिविनायक इत्यादि अनेक अवतार धारण करनेके वृत्तान्त गणेश तथा मुद्‌गलपुराणमें हैं। दत्तात्रेय मूलतः विष्णुके ही अवतार हैं, इनके अवतार श्रीपादवल्लभ नृसिंह सरस्वतीकी लीला-कथा 'श्रीगुरुचरित्र' नामक ग्रन्थमें सविस्तृत वर्णित है। दक्षिण भारतके १२ आलवार विष्णुके आयुधोंके अवतार माने गये हैं। महाराष्ट्र प्रदेशके भागवत-सम्प्रदायमें ज्ञानदेव (ज्ञानेश्वर)-को विष्णुका अवतार, नामदेवको उद्धवका अवतार मानते हैं। मध्यकालके सभी सम्प्रदायोंमें अवतारोंकी चर्चा वर्णित है।

महाभारत, शान्तिपर्व (३४६।१०।११, ३४८।६।८)-में नारायणीय धर्मका विवेचन है। इस धर्मको सर्वप्रथम भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा है, बादमें नारदजीको भी उपदेश दिया है। नारदजीने आगे जाकर नारायणीयधर्मके अन्तर्गत व्यूह-सिद्धान्त स्थापित किया है। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये चार मिलकर चतुर्व्यूह होता है। इस व्यूहमें वासुदेवको परमात्मा तथा सम्पूर्ण सृष्टिका कर्ता माना गया है। संकर्षण उनका दूसरा रूप है। वे प्राणिमात्रके प्रतिनिधि माने गये हैं। संकर्षणसे प्रद्युम्नकी उत्पत्ति हुई। प्रद्युम्न माने मन, उनसे अनिरुद्ध हुए। वे अहंकारके प्रतिनिधि हैं। ये चारों ही नारायणकी मूर्तियाँ हैं। उनमेंसे आगे महाभूत और उसके गुण उत्पन्न होते हैं। उसी समय ब्रह्माकी भी उत्पत्ति होती है और तत्त्वोंकी सामग्रीसे वे भूतसृष्टिकी रचना करते हैं।

नारायणीय-आख्यानमें व्यूहवादके अनुषंगमें भगवान्‌के अवतारकी चर्चा आयी है। उसमें भगवान्‌के केवल छः अवतारोंका उल्लेख है।

वैदिक साहित्यमें मित्र, वरुण, अग्नि, इन्द्र इत्यादि देवताको एक ही देवाधिदेवका भिन्न-भिन्न स्वरूप माना गया है। इस प्रकार नारायणीय-उपाख्यानमें कथित मूल भागवत किंवा एकान्तिकधर्म आगे वैष्णवधर्ममें परिणत हुआ। व्यूहवादमें नारायणके केवल सृष्टिकारक गुणोंको ही प्राधान्य दिया गया है, तो अवतारवादमें भगवान्‌के षड्‌गुणैश्वर्य एवं उनकी अनन्त लीलाको महत्त्व प्राप्त हुआ है। राम, कृष्णादि अवतार विशेषतः पूजनीय, भजनीय हुए।

इस प्रकार वेद तथा अन्य धर्मग्रन्थोंमें अवताररहस्यका विस्तृत वर्णन हुआ है।

अवतार-सिद्धान्तके वैदिक निर्देश

(प्रो० डॉ० श्रीश्रीकिशोरजी मिश्र, वेदाचार्य)

अवतार-सिद्धान्त भारतीय सनातन धर्मकी मूलभूत विशिष्टताओंमें अन्यतम है। भगवान् घट-घटमें व्याप्त हैं, पर अन्तर्हित होनेके कारण योगियोंकी ही योगदृष्टिसे गम्य हैं। स्थूलदृष्टिसे उन्हें नहीं देख सकते, परंतु वे दुष्टोंके शासन और भक्तोंके दुःखनाशके लिये स्थूलदृष्टि पुरुषोंके दृष्टिगम्य सांसारिक पाञ्चभौतिक शरीरसे इस जगतीतलपर आविर्भूत होते हैं। इसी आविर्भावको अवतार कहते हैं।

वेदमें भगवान्‌के अवतार-सिद्धान्तका बोधक मन्त्र इस प्रकार है—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥

(यजु०, मा०सं० ३१।१९, शब्दान्तरके साथ अथर्व १०।८।१३)

इसका अर्थ है कि **('प्रजापतिः')** विश्वकी प्रजाके पालक जगदीश्वर, पुरुषोत्तम (**'अन्तः'**) मध्यमें (**'चरति'**) विचरते हैं अर्थात् सकल प्राणीमात्रके मध्यमें वर्तमान हैं। (**गर्भे**) गर्भमें (**'अजायमानः'**) नहीं होते हुए भी अर्थात् अजन्मा होते हुए भी (**'बहुधा'**) बहुत प्रकारसे राम, कृष्ण आदि अनेक रूपोंसे (**'वि जायते'**) उत्पन्न होते हैं। (**'तस्य'**) अवतारोंके लीला-विग्रहमें उस प्रजापतिकी (**'योनिम्'**) मूल ब्रह्मरूपताको (**'धीराः'**) धीर तत्त्वदर्शी भक्त ही (**'परिपश्यन्ति'**) देखते हैं। (**'तस्मिन् ह'**) उस प्रजापतिमें ही सम्पूर्ण (**'भुवनानि'**) लोक (**'तस्थुः'**) अवस्थित हैं।

गीता (४।६)-में इसी भावको स्पष्ट किया गया है—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

अजन्मा, अविनाशी तथा सब भूतोंका स्वामी होता हुआ भी मैं आत्ममायासे उत्पन्न होता हूँ।

यही तथ्य श्रीतुलसीदासजीने भी श्रीरामचरितमानसमें

गम्भीर शब्दोंमें कहा है—

चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥
नर तनु धरेहु संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥
राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥

अवतार प्रायः सभी देवताओंका होता है। जिस समय जिस देवताका कार्य होता है, उस समय वह देवता अवतार ग्रहण करता है।

अवतार-ग्रहण मनुष्यरूपमें ही होता है, यह नियम नहीं है; क्योंकि भगवान् श्रीविष्णुदेवका हिरण्याक्षको मारनेके लिये वराहावतार शूकररूपमें हुआ था तथा भक्त प्रह्लादको बचानेके लिये नृसिंहावतार मनुष्य और सिंहके मिले हुए शरीररूपमें हुआ था। इसी प्रकार कूर्मावतार तथा मत्स्यावतार क्रमशः कछुआ और मछलीके रूपमें हुआ था। जिस समय जैसा रूप धारण करना उचित होता है, उस समय भगवान् वैसा ही रूप धारण करते हैं। श्रीमद्भागवतमहापुराणमें पशु-पक्षी आदिके रूपमें भी अवतार-ग्रहणका प्रयोजन लोकपालनको बतलाया गया है—

भावयत्येष सत्त्वेन लोकान् वै लोकभावनः।
लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु॥

अवतार-धारणका प्रयोजन श्रीमद्भगवद्गीता (४।७-८)-में श्रीकृष्णजीने अर्जुनको उपदेश देते हुए बतलाया है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

अर्थात् हे अर्जुन! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, उस समय मैं रूप धारण करता हूँ। मैं युग-युगमें साधुजनोंकी रक्षाके लिये, दुष्टोंके संहारके लिये तथा धर्मके संस्थापनके लिये अवतार लेता हूँ।

गीताके इन दोनों श्लोकोंमें यह भाव संकेतित है कि अधर्मके निराकरण तथा धर्मकी स्थापनाके लिये भगवान् जगतीतलपर अपने अंशोंका सृजन करते हैं। परंतु भक्तोंकी रक्षा और दुष्टोंके विनाशके लिये भगवान् समय-समयपर स्वयं अवतरित होते हैं। वस्तुतः भक्तवत्सलता ही अवतारका विशिष्ट हेतु है। श्रीदुर्गासप्तशती (११।५४-५५)-में भी भगवतीने भक्तोंके रक्षणार्थ अवतरणकी स्वयं प्रतिज्ञा की है—

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति॥
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्॥

विविध रूपोंमें भगवदवतारका प्रयोजन भक्तोंकी विविध कामनाओंकी पूर्तिके लिये होता है तथा भक्तोंकी अनन्य प्रार्थना एतदर्थ आवश्यक है। इस सिद्धान्तका निर्देश भी वैदिक मन्त्रमें प्राप्त होता है—

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयः स्याम पतयो रयीणाम्॥

(ऋक्० १०।१२१।१०, अथर्व० ७।७९।४, ७।८०।३
यजु०मा०सं० १०।२०, २३।६५ तै०सं० १।८।१४।२)

वस्तुतः अचिन्त्य, अव्यक्त तथा अनन्त परब्रह्म भगवान् भक्तप्रजाओंके पालनहेतु चिन्त्य-सान्त अवतारके रूपमें व्यक्त होते हैं। इस कारण वेदमें उनको 'प्रजापति' संज्ञासे वर्णित किया गया है।

इस भावके साथ गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने अवतारकी लीलाओंका प्रयोजन भी सुन्दर शब्दोंमें संकलित किया है—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥
असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥
सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं॥
राम जनम के हेतु अनेका। परम बिचित्र एक तें एका॥

भगवान्‌के अवतार अनेक हैं। उनमें भी श्रीराम तथा श्रीकृष्णका अवतार तो बहुत प्रसिद्ध है। मुख्य अवतारोंकी कथा प्रायः सभी पुराणोंमें उपलब्ध है। वेदधर्मानुयायियोंके लिये पुराण अथवा इतिहासकी प्रामाणिकता वेदमूलक होनेके कारण मानी गयी है। यद्यपि वेद ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है कि राम या अन्य अवतारोंका पूर्ण चरित्र मिले, फिर भी अनुसन्धाता भक्तगण अपनी प्रियताकी अटूट निष्ठाके कारण वेदके आश्रयमें जाकर वहाँ भी अपनी प्रिय वस्तुको ढूँढ़ते हैं। वेद कल्पवृक्ष है, कामधेनु है। भक्ति एवं निष्ठासे आश्रय लेनेपर इच्छाकी पूर्ति करना वेदका स्वाभाविक धर्म है। इसी कारण विद्वान् श्रद्धालु भक्तजनोंको वैदिक मन्त्रोंमें भी भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रका स्पष्ट वर्णन दिखायी पड़ता है।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरित्र-सम्बन्धी वैदिक मन्त्रोंका व्याख्याके साथ स्पष्ट संकलन गोविन्दपण्डितके पुत्र आचार्य नीलकण्ठने 'मन्त्ररामायण' तथा श्रीकृष्णचरितका संकलन

'मन्त्रभागवत'के नामसे संस्कृतमें किया है।

वाल्मीकीय रामायणमें जिस प्रकार प्रथम सर्गमें श्रीरामचरितका संक्षेपमें वर्णन मूलरामायणके रूपसे है, वैसे ही आचार्य नीलकण्ठने वेदके चार मन्त्रोंमें वैदिक मूल रामायणका संकलन किया है। प्रसङ्गतः यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि वेदमन्त्रोंके देवचरितपरक अर्थसे वेदोंके गौरव या अपौरुषेयतामें बाधाकी आशंका नहीं करनी चाहिये; क्योंकि प्रधानरूपसे किसी कार्य, परिस्थिति या भावसे प्रयोग किये हुए शब्द भी विवेचक बुद्धिमान्के पास दूसरे भावको भी दर्शित कर देते हैं। इसका लोकमें अनुभव प्रायः सभीको समय-समयपर होता है। संत श्रीतुलसीदासजीने रामायणकी रचना किसी शास्त्रीय तत्त्वको संग्रथित करनेके लिये नहीं की है। जैसे वेदान्ततत्त्वको समझानेके लिये योगवासिष्ठ, व्याकरणके प्रयोगोंको बतानेके लिये भट्टिकाव्यकी रचना है, वैसी मानसकी रचना नहीं है। वस्तुतः यह मानस-रचना वाल्मीकिके मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीको भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके रूपमें तथा श्रीमद्भागवतके पाँचवें स्कन्धके उन्नीसवें अध्यायके किंपुरुषवर्षमें उपासनीय श्रीरामचन्द्रजीको भारतवर्षकी आराधनामें भी महत्त्वपूर्ण बतलानेके लिये है। श्रीतुलसीदासजीका 'श्रीरामचरितमानस' मानस अर्थात् मनोभावसे प्रस्फुटित है। इसी प्रकार शास्त्रविचारकोंने वेदमन्त्रोंके जो विभिन्न अर्थ किये हैं, वह वेदोंकी महत्ता और जनसाधारणकी आस्था बढ़ानेके साथ अपने विचारोंको श्रुतिसम्मत बतानेके लिये है। उन अर्थोंसे प्रधानतया वेदप्रतिपाद्य यज्ञतत्त्वका विरोध नहीं है तथा वेदकी अनित्यता या पौरुषेयता सिद्ध नहीं होती है।

अतः **'यज्ञो वै विष्णुः'** तथा **'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः'** इत्यादि श्रुति-स्मृतिवचनोंके अनुसार भगवद्गुणानुवर्णनकी दृष्टिसे स्वामी श्रीकरपात्रीजीका वेदार्थपारिजातभाष्य, स्वामी गङ्गेश्वरानन्दजीका समन्वयभाष्य, वेदोपदेशचन्द्रिका, भगवदाचार्यस्वामीका वेदभाष्य, आचार्य गोपालचन्द्रमिश्रजी-कृत मन्त्रभाष्य, आचार्य नीलकण्ठकृत मन्त्ररामायण, मन्त्रभागवत एवं मन्त्रार्थदीपिका, मन्त्रार्थचन्द्रोदय आदि विविध देवपरक अर्थोंका प्रतिपादन करते हैं।

उपर्युक्त विविध आचार्योंके द्वारा प्रणीत वेदभाष्योंमें भगवान्के अनेक अवतारोंके प्रतिपादक मन्त्रार्थ उपलब्ध होते हैं। परंतु महाविष्णुके दस मुख्य अवतारोंका विशेष निरूपण इन मन्त्रार्थोंमें दृष्टिगोचर होता है। दस अवतारोंकी मुख्यताका निर्देश भी ऋग्वेदकी इस ऋचामें संकेतित है—

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश॥

अर्थात् भक्तोंकी प्रार्थनाके अनुसार प्रख्यात होनेके लिये भगवान् मायाके संयोगसे अवतारमें अनेक रूप धारण करते हैं। उनके शत-शत रूप हैं, पर उनमें भी दशावतारोंके दस रूप मुख्य हैं।

भगवान्के मुख्य अवतारोंके मूलसंकेत वेदसंहिताओंमें दृष्टिगोचर होते हैं तथा ब्राह्मणग्रन्थोंमें तो विस्तृत आख्यान भी उपलब्ध हैं। संक्षेपमें मुख्य अवतारोंका श्रुतिसंकेत यहाँ प्रस्तुत है—

१-मत्स्यावतार—**'मनुमत्स्यकथा'** (शत० १।८।१।१—६)।

२-कूर्मावतार—**'अन्तरतः कूर्मभूतः'** (तै०आ० १।२३।३)।

३-वराहावतार—**'वराहेण पृथिवी'** (अथर्व० १२।१।४८), (शत० १४।१।२।११), **उद्धृतासि वराहेण** (तै० १।१।३०)।

४-नृसिंहावतार—**'मृगो न भीमः'** (ऋक्० १।१५४।२), **'नरसिंहः प्रचोदयात्'** (तै० १।१।३१), नृसिंहतापिन्युपनिषद्।

५-वामनावतार—**'इदं विष्णुर्विचक्रमे'** (ऋक्० १।२२।१७), **'त्रीणि पदा वि चक्रमे'** (यजु०मा०सं० ३४।४३), **'वामनो ह विष्णुरास'** (शत० १।२।५।५)।

६-परशुरामावतार—**'इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे'** (यजु०मा०सं० ३२।१६), **'रामो भार्गवेयः'** (ऐ० ७।५।३४)।

७-रामचन्द्रावतार— **'रामे कृष्णे'** (अथर्व० १।२३।१), **'सीते वन्दामहे त्वा'** (ऋक्० ४।५७।६), **'देवानां पूरयोध्या'** (अथर्व० १०।२।३१), (मन्त्ररामायण)।

८-श्रीकृष्णावतार—**'कृष्णं ते'** (ऋक्० ४।७।९) **'कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा'** (ऋक्० १।१६४।४७, अथर्व० ६।२२।१), **'रामे कृष्णे'** (अथर्व० १।२३।१), **'वासुदेवाय धीमहि'** (तै०आ० १०।१।६), **'देवकीपुत्राय'** (छा०उ० ३।१७।६) आदि।

अतः वैदिक सिद्धान्तके अनुसार भगवान्की अवतारलीलाओंका वर्णन, पठन, श्रवण, चिन्तन आदि सर्वथा अपूर्व पुण्यप्रद है।

भगवान्‌के अवतारका प्रयोजन

(शास्त्रार्थपञ्चानन श्रीप्रेमाचार्यजी शास्त्री)

यद्यपि अकारणकरुण करुणावरुणालय अनन्तरूप श्रीभगवान्‌ने समय-समयपर अनन्त अवतार धारण किये हैं, जिनके प्रयोजन भी अनन्त ही हैं और फिर उनमेंसे एक-एक प्रयोजनके अभिप्राय भी असीम हैं, अनन्त हैं, उनकी इयत्ताका निर्धारण करना सर्वथा असम्भव है—

हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥

(रा०च०मा० १। १२१। २)

तथापि भगवदवतारके कुछ प्रयोजन अतीव हृदयावर्जक हैं और उनकी अपार करुणाके परिचायक हैं। उनमेंसे कुछेकका यहाँ दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

उपनिषदोंके अनुसार आँख, कान, नासिका, जिह्वा आदि समस्त ज्ञानेन्द्रियोंको श्रीभगवान्‌ने बहिर्मुख बनाया है अर्थात् आँखें बाहरका ही सब कुछ देखती हैं, कान बाहरके ही शब्द सुन पाते हैं और जिह्वा भी बाहरके ही पदार्थोंका रसास्वादन कर पाती है, किंतु श्रीभगवान्? वे सर्वसमर्थ स्वयम्भू पुरुष तो समस्त प्राणियोंके शरीरमें भीतर—अन्तःकरणमें ही विराजमान रहते हैं। फलतः ज्ञानेन्द्रियाँ श्रीभगवान्‌के अतीव सन्निकट होते हुए भी उनके दिव्य दर्शन आदि लोकोत्तर आनन्दको प्राप्त करनेसे सर्वदा वञ्चित ही रह जाती हैं। कभी लाखोंमें कोई एक बिरला धीर पुरुष ही अन्तर्मुख होकर भीतर सुप्रतिष्ठित उस अमृत-तत्त्वका साक्षात्कार कर पाता है—

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभू-
स्तस्मात् पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्ष-
दावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्॥

(कठोपनिषद् २। १। १)

इसलिये अपनी इस दुस्सह व्यथासे उपतप्त होकर ज्ञानेन्द्रियोंने श्रीभगवान्‌को उपालम्भ देने प्रारम्भ किये और कहा कि हे भगवन्! दूसरे जीवोंके ऊपर सम्भव है आपने करुणा की होगी, परंतु हमें तो आपने बहिर्मुख बनाकर एवं अपने दर्शनोंसे भी वञ्चित करके एक प्रकारसे मार ही डाला है। जब कोई बिरला धीर पुरुष ही **'आवृत्तचक्षुः'** (अन्तर्मुख) होकर आपके दिव्य दर्शन प्राप्त कर सकेगा, तब आपके **'सर्वसौलभ्य'** अर्थात् सभीके लिये सर्वदा सुलभ रहनेवाले गुणका क्या होगा? उसकी सार्थकता किस प्रकार होगी? क्या आपका यह महनीय गुण वन्ध्य नहीं हो जायगा? अतएव हे नाथ! आप हमारे लिये भी सुलभ हो जाइये।

ज्ञानेन्द्रियोंकी इस उपालम्भपूर्ण प्रार्थनासे श्रीभगवान् द्रवित हो उठे तथा करुणार्द्र होकर उनके सम्यक् परितोषके लिये एवं ***'सब मम प्रिय सब मम उपजाए'*** अपने इस वचनकी सार्थकताके लिये अनुपम सौन्दर्य-शौर्यादि गुणगणोंसे सम्पन्न लोकोत्तर दिव्य कलेवरसे वे अवतार धारण करने लगे।

उक्त उपनिषद् मन्त्रमें **'व्यतृणत्'** क्रिया-पद अत्यन्त साभिप्राय है, जो व्याकरणकी **'तृहू हिसी हिंसायाम्'** धातुसे निष्पन्न हुआ है और इसका अर्थ है—हत्या कर दी अथवा मार डाला। श्रीभगवान्‌के द्रवित होनेमें इस क्रियापदने महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही है।

इस औपनिषद-प्रसङ्गके परिप्रेक्ष्यमें कतिपय अभिज्ञोंकी मान्यता है कि श्रीभगवान् अपने सौशील्य, औदार्य, वात्सल्य आदि गुणगणोंकी चरितार्थताके लिये इस मर्त्यलोकमें अवतीर्ण होते हैं। यदि ऐसा न हो तो उनके क्षमाशीलता, पतितपावनत्वादि गुणगण निरर्थक एवं वन्ध्य हो जायँगे। इस संदर्भमें श्रीशुकदेवजीका कथन अत्यन्त सारगर्भित है। वे कहते हैं कि अव्यय, अप्रमेय, निर्गुण, निराकार, निर्विकार एवं निखिल गुणागार श्रीभगवान् साधारण जनोंके कल्याणके लिये अवतार धारण किया करते हैं—

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः॥

(श्रीमद्भा० १०। २९। १४)

उक्त कथनका स्वारस्य यही है कि अपने महनीय गुणोंके कारण असाधारण माने जानेवाले श्रीभगवान्‌का सर्वसाधारणके कल्याणार्थ, साधारण बन जाना ही उनका अवतार धारण करना है। इसीलिये भगवदीय गुणोंके चरम विकासके अनेक मनोरम-स्थल हमें यत्र-तत्र देखनेको मिलते हैं। विभीषण-शरणागतिके समय श्रीभगवान्‌के शरणागतवात्सल्यको देखकर कौन आनन्दसे गद्गद नहीं हो जाता है? ***'रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड'*** कहकर जिन्हें अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायकके रूपमें सुप्रतिष्ठित

किया गया हो, उनका अपने समस्त ऐश्वर्यको भुलाकर वानरोंको अपना अन्तरङ्ग, सुहृद् बनाना सौशील्यगुणकी पराकाष्ठा है। तभी तो गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भगवद्गुणसे मुग्ध होकर कहा है—

प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील निधान॥

(दोहावली ५०)

आलवन्दारस्तोत्रमें श्रीयामुनाचार्यस्वामी कहते हैं कि हे प्रभो! मेरे लिये तो आपके अतिरिक्त अन्य कोई दयालु नहीं है। इसलिये दीन और दयालुका यह अद्भुत संयोग विधाताने उपस्थित कर दिया है। कृपया इसे छोड़िये मत। इस सम्बन्धका निर्वाह करते हुए मेरा उद्धार कीजिये—

तदहं त्वदृते न नाथवान्
मदृते त्वं दयनीयवान्न च।
विधिनिर्मितमेतदन्वयं
भगवन् पालय मा स्म जीहपः॥

वेदादि शास्त्र जिन्हें सर्वदा अजित अर्थात् कभी न हारनेवाले कहते हों, उन्हींका खेलमें हार जानेपर श्रीदामाको अपने कन्धेपर बिठाना—'**उवाह भगवान् कृष्णः श्रीदामानं पराजितः**' छछियाभर छाछके लिये गोपाङ्गनाओंको नाचकर दिखाना—'**गोधूलिधूसराङ्गो नृत्यति वेदान्तसिद्धान्तः**', रावणवधके अनन्तर उसके और्ध्वदैहिक संस्कारके लिये विभीषणको प्रेरित करना—'**क्रियतामस्य संस्कारस्तवाप्येष यथा मम**', निकृष्ट समझे जानेवाले वनचर कोल, भील, किरातोंको मित्रकी भाँति गले लगाना इत्यादि कुछ ऐसे कार्य हैं जो अवतार धारण करके ही सम्पन्न किये जा सकते थे। वैकुण्ठ, साकेत, गोलोक आदि दिव्य लोकोंमें तो इन कार्योंका किया जाना सर्वथा असम्भव ही था।

अवतारके मूलमें करुणा होती है, वही श्रीभगवान्को अज्ञानावच्छिन्न सामान्यजनोंके उद्धारके लिये प्रेरित करती है। गुरुदेव श्रीरवीन्द्रनाथठाकुरके एक पूजागीतमें इसी आशयकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

'ताइ तोमार आनन्द आमार पर। तुमि ताइ एसेछ नीचे। अमाय नइले त्रिभुवनेश्वर! तोमार प्रेम हत ये मिछे।'

हे त्रिलोकीनाथ! तू (अवतार लेकर) नीचे उतरता है, क्योंकि तेरा आनन्द हमपर ही निर्भर है। यदि हम न होते तो तुम्हें प्रेमका अनुभव कहाँसे होता? (तुम किसके साथ हिल-मिलकर बातें करते, खेलते, खाते-पीते?)

श्रीभगवान्की क्षमाशीलताको लक्ष्य करके किसी क्षुद्रजनका यह कथन भी कम मनोरञ्जक नहीं है कि हे भगवन्! यदि हमारे-जैसे अहर्निश पाप करनेवाले लोग न हों तो आप क्षमा किसे करेंगे? आपकी क्षमाशीलता वन्ध्य न हो जायगी? आपकी अदालत हमारे कारण ही तो चल रही है—

गुनाहों की होती न आदत हमारी
तो सूनी ही रहती अदालत तुम्हारी।

अन्तमें भगवती कुन्तीकी एक अतिशय महत्त्वपूर्ण उक्तिपर भी दृष्टिपात कर लें, जिसमें भगवदवतारके एक विलक्षण प्रयोजनकी ओर संकेत किया गया है। अखण्ड सच्चिदानन्द परमात्मा श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए वे कहती हैं—

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम्।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः॥

(श्रीमद्भा० १।८।२०)

अमलात्मा परमहंस महामुनीन्द्रोंको भक्तियोगका विधान करनेके लिये श्रीभगवान्का अवतार होता है।

इस कथनका ललित निष्कर्ष यह है कि ब्रह्माद्वैत-भावनामें निष्ठा रखनेवाले अथ च निर्विकल्प समाधिके द्वारा ब्रह्मसाक्षात्कार सुखानुभूति प्राप्त करनेवाले परमहंस महात्माओंको भक्तियोगद्वारा सरस बनानेके प्रयोजनसे श्रीभगवान् अवतार धारण करते हैं। वास्तवमें अद्वैततत्त्व तो अव्यवहार्य होनेसे व्यवहारमें अनुपादेय ही है। व्यावहारिक सत्य तो द्वैतमें ही परिनिष्ठित है। नैष्कर्म्यविधिसे समुत्पन्न उत्तमोत्तम ज्ञानकी भी भगवद्भक्तिके बिना कोई शोभा नहीं है। वह सर्वथा शुष्क है। उसमें सरसता भक्तिके संस्पर्शसे ही आती है—

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।

(श्रीमद्भा० १।५।१२)

इतना ही नहीं, भक्तिके माहात्म्यमें यहाँतक कहा गया है कि जो महानुभाव निखिल कल्याणामृतनिष्यन्दिनी भगवद्भक्तिकी उपेक्षा करके केवल शुष्क ज्ञानकी उपलब्धिमें ही श्रमशील रहते हैं और काय-क्लेश अनुभव किया करते हैं, उनका यह प्रयास चावलकी आशामें भूसीको पीटते रहनेकी तरह सर्वथा व्यर्थ ही है। अन्तमें केवल क्लेश ही उनके हाथ लगा करता है, चावल नहीं—

श्रेयःस्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥

(श्रीमद्भा० १०।१४।४)

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीभगवान्‌के अवतारधारणका प्रयोजन अपने निर्गुण-निराकार स्वरूपका परित्याग करके सगुण-साकार विग्रहमें अनन्तकन्दर्पदर्पदमनशील, परम सुन्दर स्वरूपसे प्रकट होकर एक ओर परमहंस योगीन्द्र-मुनीन्द्रोंके शुष्क ज्ञानसे भरे जीवनमें भक्तियोगकी सरसता उत्पन्न करना है तो दूसरी ओर ज्ञानेन्द्रियोंसे लेकर साधारण-जनोंतकके लिये सुलभ होकर अपने सौशील्य, शरणागत-वात्सल्य, औदार्य, पतितपावनत्वादि सद्गुणोंका संसारमें विस्तार करना है।

भगवान्‌के अवतारका रहस्य

(श्रीरवीन्द्रनाथजी गुरु)

या लीला गोकुलान्तर्मधुपुरिरचिता याः कृता द्वारवत्यां
क्षित्यां नित्यावतारैः प्रतियुगमुचिताः सूचिताः प्राङ्मुनीन्द्रै-
स्तास्ता विस्तारयन्यो वसति शितिगिरौ वेदवेद्योऽवतारी
नित्ये धाम्नि स्वनाम्नि स्फुरतु मुररिपुः सोऽयमन्तः सदा नः॥

वृन्दावन, मथुरा एवं द्वारकापुरीमें जो-जो अवतार-लीलाएँ हुई हैं तथा प्राचीन मुनि-ऋषियोंके द्वारा सूचित प्रतियुगोचित जो-जो लीलावतारसमूह इस धरतीपर हुए हैं, उनके विस्तार-प्रसारपूर्वक जो वेदवेद्य अवतारी भगवान् अपने नित्यधाम श्रीपुरुषोत्तमपुरी-क्षेत्रमें समुपविष्ट हैं, वे ही श्रीनीलाचलविहारी मुरारि सदैव हमारे अन्तःकरणमें स्फुरित हों।

अखण्ड, सत्-चित्-आनन्द, इन्द्रियोंसे अग्राह्य एवं एक अद्वितीय, त्रिगुणातीत, निराकार, परब्रह्म, परमात्मा ही सत्पुरुषोंकी रक्षा तथा दुष्ट जनोंका संहार करनेके निमित्त युग-युगान्तरसे सगुण-साकारस्वरूपमें अवतारग्रहणपूर्वक सनातन धर्मका संस्थापन करते आ रहे हैं। भगवान्‌के अवतारका प्रयोजन भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचारपूर्ण दिव्य लीलाओंसे अपने भक्तोंको अपनी ओर आकृष्ट करके उनको अनुप्राणित करना और संसारसागरसे उनका समुद्धार करना है।

भगवान्‌की अवतार-कथाओंके तत्त्व-रहस्यको जानना, समझना केवल भगवत्कृपासे ही साध्य है। जब संसारके लोग विषयोंके मोहमें पड़कर भगवान्‌को भूल जाते हैं और उनकी स्वाभाविक विषमताके कारण पाप-तापसे झुलसने लगते हैं तब उन्हें दुःखसे बचानेके लिये, अनन्त शान्ति देनेके लिये और उनका महान् अज्ञान मिटाकर अपने स्वरूपका बोध कराने एवं अपनेमें मिला लेनेके लिये स्वयं भगवान् आते हैं और अपने आचरणों, उपदेशों तथा अपने दर्शन, स्पर्श आदिसे जगत्‌के लोगोंको मुक्तहस्तसे कल्याणका दान करते हैं। यदि वे स्वयं आकर जीवोंकी रक्षा-दीक्षाकी व्यवस्था नहीं करते, जीवोंको अपनी बुद्धिके बलपर सत्य-असत्यका निर्णय करना होता और अपने निश्चयके बलपर चलकर उद्धार करना होता तो ये करोड़ों कल्पोंमें भी अपना उद्धार कर सकते या नहीं, इसमें संदेह है; परंतु भगवान् अपने इन नन्हें-नन्हें शिशुओंको कभी ऐसी अवस्थामें नहीं छोड़ते, जब वे भटककर गड्ढेमें गिर जायँ। जब कभी ये अपने हाथमें कुछ जिम्मेदारीका काम लेना चाहते हैं और इसके लिये उनसे प्रार्थना करते हैं, तब बहुत समझा-बुझाकर सृष्टिका रहस्य स्पष्ट करके उन्हें अपने सामने कुछ काम दे देते हैं।

भगवान्‌के जन्म-कर्मकी दिव्य अलौकिक अवतार-लीला-कथाओंको जो तत्त्वतः जानता है अथवा भगवत्-स्मरणपूर्वक इस संसारमें पद्मपत्रकी भाँति रहता है, वह अन्ततः भगवान्‌को ही प्राप्त होता है।

यह स्थूल जगत् भगवदीय बहिरङ्गलीलाका एक रूप है। उनकी अन्तरङ्ग अवतार-लीलाएँ भी उसमें निहित हैं, जो दिव्यातिदिव्य एवं गुह्यतम भी हैं। अपने परिकरोंके साथ भगवान् नित्य लीला-विहार करते हैं, भगवान्‌के अनन्य भक्त ही भगवदीय अन्तरङ्ग-अवतार-कथाओंको जानते हैं।

भगवान्‌की नित्य अवतार-लीला अब भी चल रही है, उसका कहीं विराम नहीं होता। वैकुण्ठ, साकेत, गोलोक तथा कैलास आदि परमधामोंमें उनकी मधुरातिमधुर अवतार-कथाओंका रसास्वादन उनके अनन्य भक्तोंको सुलभ होता रहता है। भगवत्कथा-चिन्तन, अवतारोंका निदिध्यासन ही भगवत्प्राप्तिका अमोघ साधन है।

सचराचर विश्व-ब्रह्माण्डके स्वामी श्रीभगवान्‌की

त्रिगुणात्मिका अवतार-कथा अपरम्पार है। तत्त्वतः सृष्टिके प्रत्येक कणमें अनुक्षण उनकी अवतार-लीला चल रही है। भगवान्‌की योगमायाका यह जादू है कि जो हमें प्रतिक्षण नचा रहा है और हम समझते हैं कि अपनी प्रसन्नता और स्वानन्दके लिये हम स्वयं नृत्यरत हैं। सृष्टिके प्रशस्त रङ्गमञ्चपर सर्वत्र ही विस्मयोत्पादक-लीला चल रही है।

श्रीरामायण, महाभारत, पुराणादि सर्वशास्त्रोंने यह प्रमाणित किया है कि भगवान् अधर्मकी अभिवृद्धि होनेपर धराभारनिवारणार्थ मनुष्यलोकमें अवतार-ग्रहणपूर्वक अधर्मका नाश करते हैं।

आज हिंसा-प्रतिहिंसा, अधर्म-अत्याचार, छल-कपटाचार तथा प्राणियोंमें परस्पर वैर-विरोधसे पृथ्वीदेवी भयाक्रान्त हो रही हैं। अधर्माचार, कलह, विद्वेषाग्नि, युद्ध और भोग-तृष्णाकी पैशाचिक-ताण्डवलीलासे सारा संसार विनाशकी ओर गति कर रहा है। अतः इस समय भगवान्‌की अवतार-कथाओंका प्रचार-प्रसार अपरिहार्य है। सच्चिदानन्द ईश्वर ही जगत्‌के अहर्निश रक्षक हैं एवं उनकी अवतार-कथा ही कलियुगके समस्त पापोंका विध्वंस करनेवाली है—

अवति योऽनिशं विश्वं सच्चिदानन्द ईश्वरः।
अवतारकथा तस्य कलिकल्मषनाशिनी॥

जो मानव दुस्तर संसार-सागरसे पार जाना चाहते हैं, उनके निमित्त भगवान्‌की अवतार-कथाके रसास्वादनको छोड़कर अन्य कोई अवलम्ब नहीं।

एक बार देवोंने दानवोंपर विजय पा ली। विजय तो भगवान्‌की ही थी, परंतु अभिमानवश देवोंने उसे स्वीय विजय समझा। अतः भगवान्‌के अवतारका प्रयोजन आवश्यक था। श्रीभगवान्‌ने यक्षरूपसे देवोंके समक्ष प्रकट होकर देवताओंके विजय-अभिमानको चूर्ण किया। यह जगत् भी भगवान्‌का आद्य अवतार है। द्वापरयुगमें सती द्रौपदीके लज्जानिवारणार्थ भगवान्‌की वस्त्रावतार-कथा प्रसिद्ध है। सृष्टिसृजनमें चतुःसन, वराह, देवर्षि नारद, नर-नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञपुरुष, ऋषभदेव, हंस, पृथु, मत्स्य, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, नृसिंह, वामन, व्यास, हयग्रीव, हरि, परशुराम, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि आदि अनेक अवतार हुए हैं।

श्रीभगवान्‌की इन अवतार-कथाओंका कीर्तन, श्रवण एवं स्मरण करके हृदयको शुद्ध करना चाहिये। अन्तःस्थित परमपिता परमात्माको शीघ्र पहचानकर परस्पर प्रेम और विमल मैत्रीका सम्पादन करना ही परम श्रेयस्कर है। वस्तुतः हमारे हित-साधनके निमित्त ही भगवान् आप्तकाम होते हुए भी अवतार धारण करते हैं—

'नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।'

(श्रीमद्भा० १०। २९। १४)

अवतार-कथाएँ हमें भगवान्‌की ओर उन्मुख कराती हैं तथा हमारा सर्वविध कल्याण करनेमें समर्थ हैं।

~~ ० ~~

जीवोंपर अनुग्रह करना ही श्रीभगवान्‌के अवतारका हेतु है

(श्रीशिवरतनजी मोरोलिया, शास्त्री)

अवतारका अर्थ है—उतरना। सच्चिदानन्दस्थितिसे जब परमात्मा भक्तवात्सल्यके कारण मायाके क्षेत्रमें उतर आते हैं तब इसे 'अवतार' कहते हैं। भगवान्‌का अवतार महान् ज्ञानीमें रसोल्लास लानेके लिये, अद्वैतनिष्ठके ब्रह्मानन्दमें उल्लास लानेके लिये तथा परमहंसोंको श्रीपरमहंस बनानेके लिये हुआ करता है।

जगत्‌में धर्मकी स्थापना, ज्ञानके संरक्षण, भक्तोंके परित्राण तथा आततायी असुरोंके दलन एवं प्रेमी भक्तोंकी प्रेमोत्कण्ठा पूर्ण करनेके लिये प्रभु बार-बार अवतीर्ण होते हैं। ईश्वरका अवतरण इस तथ्यका स्मरण कराता है कि आसुरी शक्तियाँ सृष्टिमें व्याप्त देवत्व तथा सारभूत अच्छाइयोंपर विजय नहीं प्राप्त कर सकतीं। इसलिये जब धर्मकी अवनति और अधर्मकी उन्नति होती है, तब दुष्टोंका नाश करने, सज्जनोंकी रक्षा करने तथा न्याय (धर्म)-की स्थापनाके लिये ईश्वर धरतीपर आते हैं।

जब धार्मिक एवं ईश्वरप्रेमी सदाचारी पुरुषों तथा निरपराध एवं निर्बल प्राणियोंपर बलवान् और दुराचारी मनुष्योंका अत्याचार बढ़ जाता है तथा उसके कारण लोगोंमें सद्‌गुण और सदाचारका अत्यन्त ह्रास होकर दुर्गुण तथा अनाचार अधिक फैल जाता है, तब यह धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धिका स्वरूप कहलाता है। ऐसी अवस्थामें परम दयालु भगवान् अपने प्रेमी भक्तोंका उद्धार करने,

उनकी इच्छाके अनुसार उन्हें परम आनन्दित करने तथा अपने दिव्य गुण, प्रभाव, नाम, रूप, लीला, धाम, तत्त्व और रहस्यका विस्तार करनेके लिये लीलाविग्रह धारण करते हैं। इसके साथ ही मनुष्योंके अन्तःकरणमें वेद, शास्त्र, धर्म और परलोकके प्रति श्रद्धा उत्पन्न कराकर संसार-सागरसे उनका उद्धार करनेके लिये अनेक स्वरूपोंमें प्रकट होते हैं।

भगवान्‌के निर्गुण, सगुण—दोनों ही रूप नित्य और दिव्य हैं। अपनी अत्यन्त दयालुता और शरणागतवत्सलताके कारण जगत्‌के प्राणियोंको अपनी शरणागतिका सहारा देनेके लिये ही भगवान् अपने अजन्मा, अविनाशी और महेश्वर-स्वभाव तथा सामर्थ्यके सहित ही नाना रूपोंमें प्रकट होते हैं और अपनी अलौकिक लीलाओंसे जगत्‌के प्राणियोंको परमानन्दके महासागरमें निमग्न कर देते हैं।

जब सत्त्वगुणसम्पन्न जीव साधनामें उन्नति करते-करते इस दशापर पहुँच जाते हैं कि भगवद्दर्शनके बिना उन्हें चैन नहीं मिलता, तब श्रीभगवान् अपने दिव्य धामसे अवतीर्ण होकर उन्हें कृतार्थ करते हैं। जीवोंपर अनुग्रह प्रदर्शित करना ही श्रीभगवान्‌के अवतारका मुख्य हेतु है। इसी अनुग्रहप्रदर्शनको गीतामें 'साधु-परित्राण' कहा गया है। संतोंपर अनुग्रह प्रदर्शित करते समय श्रीभगवान् कभी-कभी संतोंके विरोधी और विपक्षियोंका निग्रह भी करते हैं। जैसे कि गजेन्द्रके उद्धारके साथ ही उन्होंने ग्राहका निग्रह भी किया। गीतामें इस निग्रहको 'दुष्कृतोंका विनाश' कहा गया है।

भगवान् तो सर्वशक्तिमान् हैं, वे बिना अवतार लिये भी सब काम कर सकते हैं, लेकिन लोगोंपर विशेष दया करके अपने दर्शन और स्पर्श तथा भाषणादिके द्वारा सुगमतासे उन्हें उद्धारका शुभ अवसर देनेके लिये तथा अपने प्रेमी भक्तोंको अपनी लीलादिका आस्वादन करानेके लिये साकाररूपसे प्रकट होते हैं; क्योंकि यह काम बिना अवतारके नहीं हो सकता। भगवान् सृष्टि-रचना और अवतारलीलादि जितने भी कर्म करते हैं, उनमें उनका किञ्चिन्मात्र भी स्वार्थका सम्बन्ध नहीं है, केवल लोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही वे मनुष्यादि अवतारोंमें नाना प्रकारके कर्म करते हैं। जीवमात्रका परम हित-साधन ही परमात्माका स्वार्थ है।

भगवान्‌के अवतारका कोई निश्चित समय नहीं होता कि अमुक युगमें, अमुक वर्षमें, अमुक महीनेमें और अमुक दिन ही भगवान् प्रकट होंगे। जिस समय भगवान् प्रकट होना आवश्यक समझते हैं, उसी समय प्रकट हो जाते हैं। जिस प्रकार किसी एक अक्षय जलाशयसे असंख्य छोटे-छोटे जलप्रवाह निकलकर चारों ओर प्रवाहित होते हैं, उसी प्रकार सत्त्वनिधि परमेश्वरसे विविध अवतारोंका प्राकट्य होता है। अवतारके पुरुषावतार, गुणावतार, कल्पावतार, युगावतार, पूर्णावतार, अंशावतार, कलावतार, आवेशावतार आदि अनेक भेद हैं। श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराणग्रन्थोंमें सर्वसमर्थ, कल्याणविग्रह प्रभुके मुख्य दस तथा चौबीस अवतारोंका विशेष वर्णन है। जिस प्रकार परतत्त्व भगवान् विष्णु समय-समयपर अवतार लिया करते हैं, उसी प्रकार उनकी लीला-सहचरी भगवती लक्ष्मीजी भी अवतार लिया करती हैं। यों तो श्री और विष्णु एक ही हैं, तथापि भक्तोंके अनुग्रहार्थ वे दो रूपोंमें प्रकाशित होते हैं। उदाहरणके लिये श्रीमन्नारायण जब रघुकुलमें श्रीरामजीके रूपमें अवतीर्ण हुए तब लक्ष्मीजी भी जनकनन्दिनी श्रीसीताके रूपमें आयीं।

चौबीस अवतारोंका हेतु—पहला अवतार सनत्कुमारोंका है, वह ब्रह्मचर्यका प्रतीक है। सब धर्मोंमें ब्रह्मचर्य पहले आता है। इससे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार पवित्र होते हैं। दूसरा अवतार वराहका है, वह संतोषका प्रतीक है। तीसरा अवतार नारदजीका है, ये भक्तिके अवतार हैं, नाम-संकीर्तनके अवतार हैं। जो ब्रह्मचर्यपालन करे और प्राप्तस्थितिमें संतोष माने, उसे नारद अर्थात् भक्ति मिलेगी। चौथा अवतार नर-नारायणका है, भक्ति मिले तो उससे भगवान्‌का साक्षात्कार होता है। भक्तिद्वारा भगवान् मिलते हैं। भगवान् नर-नारायणका अवतार तपस्यारूप धर्मकी प्रतिष्ठाके लिये हुआ। पाँचवाँ अवतार कपिलदेवजीका है, जो ज्ञान-वैराग्यस्वरूप है। ज्ञान और वैराग्यके साथ भक्ति आयेगी तो भक्ति सदाके लिये दृढ़ रहेगी। छठा अवतार दत्तात्रेयजीका है, जो सद्‌गुरुस्वरूपकी प्रतिष्ठाके लिये हुआ।

ऊपर बताये गये पाँच गुण—ब्रह्मचर्य, संतोष, भक्ति, ज्ञान और वैराग्य आयेंगे तो आप गुणातीत होंगे, भगवान्

आपके यहाँ आयेंगे। सातवाँ अवतार यज्ञका है। यज्ञके माध्यमसे धर्मका प्रचार करनेके लिये आदिपुरुष भगवान् यज्ञके रूपमें अवतरित हुए। भगवान्‌का आठवाँ अवतार ऋषभदेवके रूपमें हुआ। यह अवतार रजोगुणसे भरे हुए लोगोंको मोक्षमार्गकी शिक्षा देनेके लिये ही हुआ था। नवाँ अवतार पृथुमहाराजका है, ये धर्मपरायण थे तथा इन्हींके नामसे भूमिका नाम 'पृथ्वी' पड़ा। दसवाँ अवतार मत्स्य-नारायणका है, इस अवतारमें भगवान्‌ने वैवस्वत मनु तथा सप्तर्षियोंको अत्यन्त दिव्य तथा लोककल्याणकारी उपदेश दिया। ग्यारहवाँ अवतार कूर्मका है, जो अमृतप्राप्तिके लिये हुआ। बारहवाँ अवतार धन्वन्तरिका है, इन्होंने लोककल्याणार्थ अवतार ग्रहण किया। आरोग्यदेवके रूपमें इनकी पूजा की जाती है। तेरहवाँ अवतार मोहिनीका है, भगवान्‌ने इस अवतारमें सिद्ध किया कि सम्पूर्ण सृष्टि मायापति भगवान्‌की माया है, कामके वशीभूत सभी प्रभुके उस मायारूपपर आकृष्ट हैं। इस अवतारसे प्रभुने यह संदेश दिया है कि आसुरभावसे अमरता प्रदान करनेवाला अमृत प्राप्त होना सम्भव नहीं; वह तो करुणामय प्रभुकी चरणसेवासे ही सम्भव है। चौदहवाँ अवतार नरसिंह स्वामीका है। नरसिंह अवतार पुष्टि-अवतार है, यह अवतार भक्त प्रह्लादपर कृपा करनेके लिये हुआ है, सच्चे भक्तके विश्वासकी रक्षा करनेके लिये हुआ है। प्रह्लादजीने अपनी आस्थाके बलसे खम्भेसे भगवान्‌को प्रकट कर दिया। ईश्वर सर्वत्र है, सर्वव्यापक है—ऐसा बोलो नहीं, उसका अनुभव करो, यह शिक्षा इस अवतारसे प्राप्त होती है। पंद्रहवाँ अवतार भगवान् वामनका है, जो पूर्ण निष्काम है। उसके ऊपर भक्तिका, नीतिका छत्र है; जिसने धर्मका कवच पहना, उसे भगवान् भी नहीं मार सकेंगे, राजा बलिकी तरह। यह वामन-चरित्रका रहस्य है, परमात्मा बड़े हैं, तब भी बलिके आगे वामन अर्थात् छोटे बनते हैं। भगवान् भक्तको अपनेसे बड़ा मानते हैं, यह इस अवतारकी शिक्षा है। सोलहवाँ अवतार हयग्रीवका है, इसमें भगवान्‌ने दैत्योंसे वेदोंकी पुनः प्राप्ति की। भगवान् विष्णु शास्त्र, भक्त एवं धर्मके त्राण तथा अधर्मका नाश करनेके लिये हयग्रीवरूपमें प्रकट हुए। शास्त्रकी रक्षा भगवान् स्वयं करते हैं। इसीलिये उन्होंने शास्त्रप्रमाणको सर्वोपरि बताते हुए कर्मोंका नियामक बताया है। भगवद्वाणी है—'**तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥**' (गीता १६।२४) सत्रहवाँ अवतार हरिका हुआ। इस अवतारमें भगवान्‌ने गजेन्द्रका उद्धार कर उसे अपना पार्षद बनाया। इससे यह ज्ञात होता है कि भगवान् भक्तको अपने धाममें बुला लेते हैं। अठारहवाँ अवतार श्रीपरशुरामजीका हुआ। ये श्रीविष्णुके आवेशावतार माने गये हैं। इन्होंने इक्कीस बार क्षत्रियोंका संहार किया। उन्नीसवाँ अवतार श्रीव्यासभगवान्‌का हुआ। ये भगवान् नारायणके कलावतार थे। महर्षि व्यास मूर्तिमान् धर्म थे। वे दया, धर्म, ज्ञान एवं तपकी परमोज्ज्वल मूर्ति थे। ये ज्ञानके अवतार थे। बीसवाँ अवतार भगवान् हंसका हुआ। इसमें भगवान् हरिने हंसरूप धारणकर सनत्कुमारादि मुनियोंको ज्ञानमार्ग तथा आत्मतत्त्वका रहस्यमय सूक्ष्म उपदेश दिया। इक्कीसवाँ अवतार श्रीरामजीका हुआ। यह अवतार मर्यादापुरुषोत्तमका है। बाईसवाँ अवतार श्रीकृष्णका हुआ, जो लीलापुरुषोत्तम कहलाते हैं—ये दोनों अवतार पूर्ण अवतार हैं। तेईसवाँ अवतार बुद्ध अवतार है, भगवान् बुद्धने अहिंसाको परम धर्म माना था। कलियुगके अन्तमें भगवान् कल्किरूपमें अवतार लेंगे—ऐसी बात श्रीमद्भागवतमें कही गयी है। यह भगवान्‌का चौबीसवाँ अवतार होगा।

जिस प्रकार कोई राजा अपने राज्यमें सज्जनोंको पुरस्कारद्वारा प्रोत्साहित करके, दुर्जनोंको तिरस्कारद्वारा निरुत्साहित करके प्रजामें अभ्युदयशील सामञ्जस्य स्थापित करता है, उसी प्रकार भगवान् भी यथासमय अवतीर्ण होकर यथायोग्य निग्रहानुग्रह प्रदर्शित करते हुए सृष्टिमें धर्मकी स्थापना किया करते हैं। समस्त धर्मोंका पर्यवसान श्रीभगवत्साक्षात्कारमें ही है। भगवत्साक्षात्कार तभी हो सकता है जब भगवान्‌में निष्ठा हो, निष्ठा तभी होती है जब अनुराग हो, अनुराग उसीमें होता है, जिसकी ओर आकर्षण होता है। अतएव जीवमात्रको अपनी ओर आकृष्ट करनेके लिये ही श्रीभगवान् अवताररूपमें ऐसी-ऐसी मोहिनी क्रीडाएँ करते हैं, जिनका आस्वादन कर भक्तोंका मन उनमें हठात् आसक्त हो जाता है। यही ईश्वरकी असीम अनुकम्पा है।

भक्तकी अतीव प्रियता—अवतारका प्रमुख कारण

(श्रीरघुराजसिंहजी बुन्देला 'ब्रजभान')

व्यक्ति जिससे प्रेम करता है, उसका सामीप्य चाहता है; अपने प्रेमीके वियोगमें वह नहीं रह सकता। प्रेमी-प्रेमास्पदका यह रिश्ता सनातन है।

भक्त और भगवान् सनातन प्रेमी हैं। भक्त भगवान्के बिना नहीं रह सकता और भगवान् भक्तके बिना नहीं रह सकते। भक्त और भगवान्के बीच एकमात्र प्रेमका रिश्ता होता है। प्रेमके सिवाय किसी अन्य उपायसे भगवान्को प्राप्त नहीं किया जा सकता। यद्यपि कृपा और करुणाके कारण भी भगवान् प्रकट होते हैं तथापि कृपा और करुणा प्रेमकी ही कनिष्ठ विभूतियाँ हैं। पुरुषोत्तम भगवान् केवल प्रेमसे ही प्रकट होते हैं—***'प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥'*** प्रेम सदा निष्काम होता है, जिसे गोपीभाव अर्थात् गुप्त महाभाव भी कहा जाता है।

भगवान् सबके प्रेमास्पद होते हैं। उनके पास इस प्रकारके रूप, गुण, स्वभाव और लीलाकर्तृत्व होते हैं, जो सबको आकर्षित करते हैं। सबको आकर्षित करना उनका सहज स्वभाव है। इसी कारण उन्हें 'कृष्ण' कहा जाता है।

किंतु भगवान्को आकर्षित करनेका स्वभाव भक्तके पास सहज नहीं होता। उसे इस स्वभावका अर्जन करना होता है। वह स्वभाव क्या है, जिससे भक्त भगवान्को आकर्षित करे तथा जिसके कारण भगवान् भक्तको खोजते फिरें, उसका पता पूछते फिरें और उससे मिलनेको रोते फिरें।

वह स्वभाव, जिसके कारण भक्त भगवान्को अतिशय प्रिय लगने लगता है, स्वयं भगवान्ने ही श्रीमद्भगवद्गीतामें अर्जुनको इस विषयमें बताया है। उन्होंने भक्तकी अतीव प्रियताके लक्षण इस प्रकार कहे हैं—

(१) अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्—जो सम्पूर्ण भूत प्राणियोंसे द्वेष नहीं करता अर्थात् जो द्वेषभावसे रहित है।

(२) मैत्रः—जो सबका मित्र होता है, जिसका कोई भी शत्रु नहीं होता, जो अजातशत्रु और विश्वमित्र होता है।

(३) करुण एव च—जो अपनेसे दीन-हीन व्यक्तियोंसे, पशु-पक्षियोंसे, वनस्पतियोंसे तथा दरिद्रों, अज्ञानियों, रोगियों और अश्रद्धालुओंके प्रति द्वेष-रोष न करके करुणासे व्यवहार करता हुआ उनकी पारमार्थिक सेवा करता रहता है।

(४) निर्ममः—जो निर्मम है अर्थात् जो ममतासे रहित है, जो **'न मम'** भाववाला है। जो परतासे मुक्त है अर्थात् जिसके लिये पराया कोई नहीं है, जो अपने-परायेकी ममता-परतावाली भेद-बुद्धिसे ऊपर उठ गया है।

(५) निरहङ्कारः—जिसका अहंभाव सदाके लिये समाप्त हो गया है अर्थात् जो अहंकार और कर्तृत्वाभिमानसे रहित है और दूसरोंके साथ आत्मवत् व्यवहार करता है।

(६) समदुःखसुखः—जो सुख-दुःखमें सम है। अर्थात् दुःखोंसे दुःखी नहीं होता और सुखोंसे सुखी नहीं होता। जो दुःखोंसे डरकर भागता नहीं है और सुखोंसे आकर्षित नहीं होता। सुख आये चाहे दुःख आये, दोनों परिस्थितियोंमें जो एकसमान रहता है।

(७) क्षमी—जो क्षमाशील है अर्थात् अपराध करनेवालेको दण्ड-सक्षम होते हुए भी क्षमा कर देता है।

(८) सन्तुष्टः—जो सन्तुष्ट है अर्थात् जो प्रारब्धप्रदत्त प्रत्येक परिस्थितिमें सन्तुष्ट रहता है। जो घोर विपत्तिकालको भी अपनी साधना बना लेता है। विपरीत परिस्थितियोंको जो अपने परिष्कारका हेतु मानता है और संतोषपूर्ण जीवन व्यतीत करता है।

(९) सततं योगी—जो सतत योगी है। इस संसारके मरणधर्मी और पतनधर्मी स्वभावमें रहता हुआ जो निरन्तर योगाभ्यास, ध्यान-स्मरण और निष्काम कर्तव्यके द्वारा सतत रूपसे भगवान्से जुड़ा रहता है, जिसका योग एक बार उपलब्ध होकर फिर अस्त नहीं होता, जो संसारकी उपेक्षा कर भगवान्से सतत-योगके द्वारा सतत रूपसे जुड़ा रहता है।

(१०) यतात्मा—जो यतात्मा है अर्थात् जो एक बार भगवान्से युक्त हो जाता है और फिर वियुक्त न होनेके लिये अपना शमन करता रहता है। जो एक बार भगवद्भावभावित होकर अपने आत्मोद्धारके प्रति सावधान रहता है। जो परमस्मृतिको प्राप्त करके पुनर्विस्मृतिके प्रति सतर्क रहता हुआ निरन्तर आत्मनियन्त्रण, अन्तर्विनियमन और भगवत्स्मरण नामक योगयत्न करता रहता है।

(११) दृढनिश्चयः—जो दृढ़निश्चयी है अर्थात् जिसने अपना परम गन्तव्य अर्थात् मेरी प्राप्तिका दृढ़तापूर्वक निश्चय कर लिया है। जो निर्विकल्प रूपसे मेरी ओर चल

दिया है।

(१२) मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः—जिसने अपने मन और बुद्धिको मेरे अर्पण कर दिया है, जिसकी बुद्धि मेरे अतिरिक्त अन्यका निर्णय नहीं करती, जिसकी बुद्धि मेरा निश्चय करके अन्तिमरूपसे निर्विकल्प हो गयी है—ऐसा मेरा भक्त मुझे प्रिय होता है।

(१३) यस्मान्नोद्विजते लोकः—जिससे लोक उद्विग्न नहीं होता अर्थात् जिससे सम्पूर्ण जगत् अनुद्विग्न रहता है, जो संसारके किसी भी प्राणीके सहज जीवनमें हस्तक्षेप नहीं करता।

(१४) लोकान्नोद्विजते च यः—और न ही जो संसारसे उद्विग्न होता है अर्थात् संसारके किसी भी व्यक्ति, प्राणी अथवा परिस्थितिसे जो प्रभावित नहीं होता। जो हर परिस्थितिमें अपनी सहज शान्ति भङ्ग नहीं करता है।

(१५) हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः—जो हर्षमुक्त है अर्थात् जो उपलब्धियोंमें प्रसन्न नहीं होता, जो अमर्षमुक्त है अर्थात् जो अनुपलब्धियोंसे, असफलताओंसे अप्रसन्न नहीं होता, जिसे अन्यकी सफलतापर ईर्ष्या नहीं होती। जो भयमुक्त है अर्थात् जिसे मुझपर अटल विश्वास है और जो उद्वेगमुक्त है अर्थात् जो मानसिक रूपसे तनावमुक्त है, जिसमें स्वीकारभाव निर्विकल्प हो गया है; जो सहज, सरल और प्रशान्त हो गया है—ऐसा भक्त मुझे प्रिय है।

(१६) अनपेक्षः—जो सम्पूर्ण अपेक्षाओंसे रहित है, जो एकदम सबसे निरपेक्ष हो गया है, जो किसीकी आशा नहीं करता।

(१७) शुचिर्दक्षः—जो शुचिर्दक्ष है अर्थात् जो इन्द्रिय, मन, बुद्धि और हृदयकी पवित्रता बनाये रखता है; जिसका शरीर निरोग, इन्द्रियाँ स्वस्थ, मन निर्मल, बुद्धि स्थिर और हृदय मद्भावसे परिपूर्ण तथा विशुद्ध है और जो सब प्रकारसे कुशल है।

(१८) उदासीनः—जो उदासीन है अर्थात् जो किसी भी प्रकारके आग्रह और अनाग्रहसे रहित है, जो एकदम आत्मस्थ है और निर्विशेष स्वभावको प्राप्त हो चुका है।

(१९) गतव्यथः—जो सम्पूर्ण व्यथाओंसे ऊपर उठ गया है। जो संसारके सम्पूर्ण द्वैत-द्वन्द्व अर्थात् परस्परविरोधी द्वन्द्वात्मकतामें तथा उनसे प्राप्त हर्ष-शोक और सुख-दुःख आदि समस्त व्यथाओंसे परे हो गया है।

(२०) सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः—जो सर्वारम्भपरित्यागी है अर्थात् जिसने अपनी ओरसे सम्पूर्ण कर्मारम्भोंका पूरी तरह त्याग कर दिया है, जो यथाप्राप्त परिस्थितियोंसे अनुपस्थितकी भाँति वर्तता है। वर्तनेवाले संसारका जो मात्र अनुवर्तन करता है तथा अहङ्कार और कर्तृत्वाभिमानजनक कोई भी कर्म नहीं करता है, वह मुझे अतीव प्रिय है।

(२१) यो न हृष्यति न द्वेष्टि—प्रारब्धप्रदत्त अनुकूल परिस्थितियाँ आनेपर जिसे हर्ष उत्पन्न नहीं होता और प्रतिकूल परिस्थितियाँ आनेपर जो उनसे द्वेष नहीं करता अर्थात् विपरीत परिस्थितियोंसे जो भागनेका प्रयत्न नहीं करता।

(२२) न शोचति न काङ्क्षति—प्रारब्धप्रदत्त विपत्तियाँ भोगते रहनेपर भी अथवा कर्तव्यगत विपत्तियाँ भोगते रहनेपर भी जो उनके लिये शोक नहीं करता और न ही किसी प्रकारकी आकाङ्क्षा करता है अर्थात् जो अनुकूलताकी भी कामना नहीं करता।

(२३) शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः—जो शुभाशुभपरित्यागी है अर्थात् जो शुभमें शुभबुद्धि नहीं रखता और अशुभमें अशुभबुद्धि नहीं रखता, जो शुभ कर्म शुभबुद्धिसे नहीं करता और अशुभ कर्म अशुभबुद्धिसे नहीं छोड़ता, जिसकी शुभमें गुणबुद्धि और अशुभमें दोषबुद्धि समाप्त हो गयी है—इस प्रकार जो शुभाशुभके द्वैतभावसे सर्वथा मुक्त हो गया है—ऐसा भक्तिमान् मुझे प्रिय है।

(२४) समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः—जो व्यक्ति शत्रुके सामीप्यमें और हितैषी मित्रके सामीप्यमें रोष-रागादि मनोविकारोंसे असमान मनःस्थिति नहीं बनाता। जो शत्रुके द्वारा अपमानित और शुभचिन्तकोंद्वारा सम्मानित होनेपर अपने चिन्तनमें प्रतिकार या सत्कार-भावनाको जन्म नहीं देता। अर्थात् जो मान और अपमानमें एकसमान रहता है।

(२५) शीतोष्णसुखदुःखेषु समः—जो शीत और उष्णमें तथा सुख और दुःखमें सम रहता है। प्रारब्धप्रदत्त देश-काल और परिस्थितियोंमें जो क्षोभरहित होता है, जिसमें स्वीकार-तिरस्कारकी हेयोपादेय बुद्धि नहीं होती, जो समस्त परिस्थितियोंमें समबुद्धि है।

(२६) सङ्गविवर्जितः—जो सङ्गवर्जित है अर्थात्

जो सङ्गभावनासे रहित है; जिसका वर्तन, मनन, चयन और चिन्तन संसार और संसारके विषयोंके कामजनक सङ्गसे रहित है, जो सततरूपसे संसारसङ्गको दृढ़तापूर्वक असङ्गशस्त्रसे काटता रहता है अर्थात् जो शम, दम और यम-नियमका स्वाभाविक रूपसे पालन करता हुआ परमचिन्तन और परमवर्तन करता रहता है।

(२७) तुल्यनिन्दास्तुतिः—जो अपनी निन्दा-स्तुतिको एकसमान समझता है, जो यह जानता है कि निन्दासे अपने चित्तमें जिस प्रकार प्रतिकारभाव बढ़ जाता है, उसी प्रकार स्तुतिसे सत्कारभाव बढ़ जाता है। दोनों ही अवस्थाओंमें केवल अहङ्कारकी ही बुद्धि होती है। ऐसा जानकर जो निन्दा और स्तुतिके प्रभावसे मुक्त हो जाता है, वह इन दोनों ही परिस्थितियोंमें अपने समत्वमें रहता है।

(२८) मौनी—जो मौनी है अर्थात् जिसके सम्पूर्ण प्रश्न समाप्त हो गये हैं, जो परम उत्तरको प्राप्त हो गया है, जिसके विचार समाप्त हो चुके हैं, जिसका चिन्तन अचिन्त्य हो गया है, जिसकी बहिर्वाणी और अन्तर्वाणी प्रशान्त हो गयी है, जो चरम-परम-निस्तब्ध हो गया है, जो शब्दसे अतीत हो गया है। जिसकी वाणी नादब्रह्मसे एकात्म हो गयी है।

(२९) सन्तुष्टो येन केनचित्—जो किसी भी परिस्थितिमें सदा परितृप्त ही रहता है; जैसे-तैसे भी खाते-पीते, सोते-जागते, चलते-फिरते और पहनते-ओढ़ते हुए सदैव तृप्त और संतुष्ट रहता है।

(३०) अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः—जो अनिकेत और स्थिरमति है अर्थात् जो शरीरसे तो भ्रमणशील है, किंतु मतिसे स्थिर रहता है, जो किसी एक देशका नहीं होता। जो सार्वभौम हो जाता है, जो वैश्विक हो जाता है, जो सबका हो जाता है, जो निरन्तर विचरणशील रहता है, किंतु जिसकी मति कहीं नहीं विचरती। जिसके मन, बुद्धि और चित्त निस्पन्द हो जाते हैं, जिसकी चेतना विकल्परहित, विषयरहित और द्वन्द्वरहित हो जाती है, ऐसा विचरणशील और स्थिरमतिवाला भक्तिमान् पुरुष मुझे प्रिय है।

यथोक्त धर्ममय अमृतकी पर्युपासना करनेवाले, मुझमें श्रद्धा रखनेवाले और मेरे परायण रहनेवाले भक्त मुझे अतीव प्रिय होते हैं। इस प्रकार भक्तके ये गुण भगवान्‌को अतिप्रिय होते हैं, ऐसे ही विशेष प्रिय भक्तोंको दर्शन देने तथा उनपर विशेष कृपा करनेके लिये भगवान् अवतरित होते रहते हैं।

शक्तितत्त्व और अवतारवाद

(डॉ० श्रीश्यामाकान्तजी द्विवेदी, एम्०ए०, एम्०एड्०, पी-एच्०डी०, डी०लिट्०)

अवतार और उसका उद्देश्य

जब भगवान् किसी विश्वव्यापी एवं दुर्निवार्य आपदासे मानवजातिको मुक्त करनेके लिये साकार विग्रह ग्रहण करते हैं तो उस विग्रहको ही अवतार कहते हैं। यथा—मत्स्यावतार, कच्छपावतार (कूर्मावतार), नृसिंहावतार, वराहावतार, रामावतार, कृष्णावतार आदि।

अवतारके उद्देश्यपर प्रकाश डालते हुए भगवान् श्रीकृष्ण (गीता ४।७-८)-में कहते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

इस प्रकार सामान्य रूपसे अवतारके चार उद्देश्य होते हैं। यथा—१-धर्मह्रासकी स्थितिमें उसका अभ्युत्थान, २-सज्जनों एवं पुण्यात्माओंकी आपदाओंसे रक्षा, ३-दुष्टों एवं अत्याचारियोंका संहार ४-धर्मकी संस्थापना।

रूपातीत शक्तिका रूपात्मक विश्वावतार

रूपातीत पराशक्ति ही सिसृक्षाके वशीभूत होकर विश्वके रूपमें आकार ग्रहण कर लेती है। **'सैव क्रियाविमर्शः स्वस्था क्षुभिता च विश्वविस्तारः'** (महार्थमञ्जरी गाथा-११) आत्मशक्तिके विषयमें भी यही कहा गया है। **आत्मा खलु विश्वमूलं तत्र प्रमाणं न कोऽप्यर्थयते।** (महार्थमञ्जरी) सारी सृष्टि कुण्डलिनीशक्तिकी ही अभिव्यक्ति है—**'सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता।'**

'देवी ह्येकाग्र आसीत् सैव जगदण्डमसृजत्। कामकलेति विज्ञायते। शृङ्गारकलेति विज्ञायते।' (बह्वृचोपनिषद्)

एकमात्र देवी ही सृष्टिसे पूर्व थीं, उन्हींने ब्रह्माण्डकी सृष्टि की। वे कामकलाके नामसे विख्यात हैं, वे ही शृङ्गारकला कहलाती हैं।

एकका बहुत हो जाना ही तो जगत् है—'**एकोऽहं बहु स्याम्।**'

जगत् भगवान्का आदि अवतार है—'**आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य।**'

'**स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमून्मीलयति।**'

(प्रत्यभिज्ञाहृदयम् सूत्र २)

चिद्रूपा भगवती स्वतन्त्ररूपसे, निर्विकाररूपसे अनन्त विश्वोंके रूपमें स्फुरित होती हैं—

'**चिदेव भगवती स्वच्छस्वतन्त्ररूपा तत्तदनन्त-जगदात्मना स्फुरति।**' (प्रत्यभिज्ञाहृदयम् सूत्र २)।

चिदात्मा स्वयं ही 'अहम्' होकर भी 'इदम्' रूपसे प्रकट हो जाती हैं।

शक्तितत्त्वकी परात्परता—

शक्तितत्त्वसे बढ़कर कोई भी नहीं है। शक्तिमान् भी तभीतक शक्तिसम्पन्न हैं, जबतक शक्तिसे सम्बद्ध हैं। शिव शब्दके 'श' में 'इकार'की मात्रा ही शक्ति है, यदि इकार निकाल दिया जाय तो शिव शवमात्र रह जायँगे। शक्तिके बिना शिव हिल भी नहीं सकते—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।

(सौन्दर्यलहरी)

परमात्मा भी शक्तिसे रहित होनेपर सृष्टि, स्थिति तथा लय आदिमें अशक्त रहता है, किंतु जब वह शक्तिसे युक्त हो जाता है; तब शक्त—समर्थ हो जाता है—

परोऽपि शक्तिरहितः शक्त्या युक्तो भवेद्यदि।
सृष्टिस्थितिलयान् कर्तुमशक्तः शक्त एव हि॥

(वामकेश्वरतन्त्र)

शिवसूत्रकारकी दृष्टि—त्रिकदर्शनके मूल प्रवर्तक आचार्य वसुगुप्त कहते हैं कि शक्ति (क्रियाशक्ति)-का स्फुरणरूप विकास ही विश्व है—

स्वशक्तिप्रचयोऽस्य विश्वम्।

(शिवसूत्र ३। ३०)

शिवका विश्व उनकी अपनी शक्तिसे निर्मित है। संविदात्मा शिवकी शक्तिका जो प्रचय या क्रियाशक्तिरूप स्फुरण या विकास है, वही विश्व है—

'**शिवस्य विश्वं स्वशक्तिमयं तथा अस्यापि स्वस्याः संविदात्मनः शक्तेः प्रचयः क्रियाशक्तिस्फुरणरूपो विकासो विश्वम्।**' (शिवसूत्रविमर्शिनी ३। ३०)

आचार्य भास्कररायकी दृष्टि—आचार्य भास्करराय कहते हैं कि शिवमें विश्वकी सृष्टि, पालन एवं संहारकी क्षमता केवल शक्तिके कारण है। उसी शक्तिका ही परिणाम चारों सृष्टियाँ—अर्थमयी, शब्दमयी, चक्रमयी एवं देहमयी हैं।

नैसर्गिकी स्फुरत्ता विमर्शरूपास्य वर्तते शक्तिः।
तद्योगादेव शिवो जगदुत्पादयति पाति संहरति॥

(वरिवस्यारहस्यम्)

'**सावश्यं विज्ञेया यत्परिणामादभूदेषा। अर्थमयी शब्दमयी चक्रमयी देहमय्यपि च सृष्टिः॥**' (वरिवस्यारहस्यम् ५)

भगवती सीताका स्वस्वरूप

भगवती सीता जनककी पुत्री एक मानवी संततिमात्र नहीं थीं, प्रत्युत शक्तिका अवतार थीं।

१-मूल प्रकृति होनेके कारण वे प्रकृति कहलाती हैं—'**मूलप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिः स्मृता।**'

(सीतोपनिषद्)

२-प्रणवकी प्रकृति होनेके कारण भी भगवती सीता प्रकृति हैं—'**प्रणवप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिरुच्यते॥**'

३-भगवती सीता महामाया हैं, योगमाया हैं—'**सीता इति त्रिवर्णात्मा साक्षान्मायामयी भवेत्।**'

४-'**ई**'—सीता शब्दमें स्थित ईकार प्रपञ्चका बीज माया है। उनके नाममें 'ई' स्वर इसीको संकेतित करता है कि वे प्रपञ्चनिर्मात्री 'ईकार' या माया हैं—'**विष्णुः प्रपञ्चबीजं च माया ईकार उच्यते।**'

५-'**स**'—सीता शब्दमें स्थित सकार=सत्य एवं अमृतकी प्राप्ति और सोम है—'**सकारः सत्यममृतं प्राप्तिः सोमश्च कीर्त्यते।**'

६-'**त**'—सीता शब्दमें स्थित तकार महालक्ष्मीरूप है। प्रकाशमय विस्तार करनेवाली महालक्ष्मी ही तकार हैं—'**तकारस्तारलक्ष्म्या च वैराजः प्रस्तरः स्मृतः।**'

७-सीता समस्त प्राणियोंकी जन्मदात्री, पालिका एवं संहारिका शक्ति हैं—'**उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणीं सर्व-देहिनाम्।**'

८-सीता ब्रह्म हैं—'**अथातो ब्रह्मजिज्ञासेति च।**'

९-सीताजी सर्वरूपा हैं—सीताजी सर्ववेदमयी, सर्वदेवमयी, सर्वाधारा, कार्य-कारणमयी, सर्वलोकमयी, सर्वकीर्तिमयी, सर्वधर्ममयी, चेतनाचेतनात्मिका, ब्रह्मस्थावरात्मा, देवर्षि-मनुष्य-गन्धर्वरूपा, असुरराक्षसभूत-प्रेत-पिशाच-भूत-शरीररूपा, भूतेन्द्रियमन:प्राणरूपा भी हैं।

१०-सीताजी मुख्यत: तीन शक्तियोंके रूपमें स्थित हैं—क-इच्छाशक्ति, ख-क्रियाशक्ति, ग-साक्षात् शक्ति—

क-इच्छाशक्तिस्वरूपा भगवती सीता श्रीदेवी (चन्द्र), भूदेवी (सूर्य), नीलादेवी (अग्निरूपा), योगशक्ति, भोगशक्ति तथा वीरशक्ति हैं।

ख-क्रियाशक्तिस्वरूपा भगवती सीता श्रीहरिका मुख हैं और नादरूपमें व्यक्त हैं।

साक्षात् शक्तिस्वरूपा सीता नाद-बिन्दु और ओंकाररूप हैं।

ग-साक्षात् शक्ति ही ज्ञानशक्ति है।

महालक्ष्मीरूपा भगवती सीता अष्टदलकमलपर स्थित दिव्य सिंहासनपर आसीन हैं।

मूल प्रकृति और उनका महाविद्यात्मक अवतार

मूल प्रकृति और सती—साक्षात् परब्रह्म, शुद्धा, सनातनी, जगदम्बा, त्रिदेवोंकी आराध्या देवी भगवती मूल प्रकृति ही पूर्णा प्रकृति एवं सती हैं।[1] उन्हींका अवतार १-लक्ष्मी, २-सावित्री, ३-सरस्वती, ४-काली, ५-पार्वती, ६-माया, ७-परम शक्ति, ८-पराविद्या, ९-गङ्गा, १०-दुर्गा, ११-दस महाविद्या[2]—काली, तारा, लोकेश्वरी कमला, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, षोडशी, त्रिपुरसुन्दरी, बगलामुखी, धूमावती एवं मातङ्गी हैं।

अपने पिता दक्षके यज्ञमें जानेकी इच्छापर अटल सतीके हठपर भगवान् शिवने कहा—

'यथारुचि कुरु त्वं च ममाज्ञां किं प्रतीक्षसे।'

(महाभागवतपुराण ८।४४)

इसे सुनते ही दाक्षायणी सतीने कालीका स्वरूप धारण कर लिया। उनके भयानक स्वरूपसे भयभीत होकर शिव भाग चले। सतीने शिवको भागनेसे रोकनेके लिये दसों दिशाओंमें अपने पृथक्-पृथक् स्वरूपोंको (दस महाविद्याओंके रूपमें) खड़ा कर दिया। अन्तत: शिव (दसों दिशाओंको अवरुद्ध देखकर) आँख बन्द करके मार्गमें ही रुक गये और जब उन्होंने आँखें खोलीं तो उन्हें पुन: दसों दिशाओंमें महाविद्याओंके रूपमें दस देवियाँ दृष्टिगत हुईं। ये सभी दस देवियाँ (दस महाविद्याएँ) भगवती सतीके ही दस स्वरूप या अवतार हैं। मूल प्रकृति सतीके अवतार ही दस महाविद्याएँ कही गयी हैं।

~~ ० ~~

भक्ति-मुक्ति-शक्ति-प्रदायिनी अवतार-कथा

(महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी)

ऋषियों, महर्षियों, देवर्षियों और ब्रह्मर्षियोंने अपनी ऋतम्भरा-प्रज्ञाद्वारा उस जगन्नियन्ता, जगदाधार, सर्वाधिष्ठान, सर्वशक्तिमान्, स्वयंप्रकाशमान् भगवान्के अवतारों एवं उनकी अवतार-कथाओंके अति महत्त्वपूर्ण गूढ़ रहस्योंको—'**एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति**' के इस वैदिक सिद्धान्तको—'**अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्च्यते**' की प्रक्रियाद्वारा विस्तृतरूपसे विवेचन, विश्लेषण और गवेषण करके समझाया है।

वेदोंकी ऋचाओं, दर्शनशास्त्रकी भिन्न-भिन्न शाखाओं, उपनिषदोंके मन्त्रों, वेदान्तके सूत्रों, इतिहास-पुराणोंके आख्यानों और काव्यग्रन्थोंके सुमधुर व्याख्यानोंके द्वारा अवतार और अवतार-कथाओंकी गरिमा-महिमा, सत्ता-महत्ता, उपयोगिता और आवश्यकतापर बड़े रोचक और आकर्षक ढंगसे प्रकाश डाला गया है। यह कि—

'द्विरूपं हि ब्रह्म अवगम्यते। प्रथमं निराकार-निर्विकार-अखण्ड-अनन्त-सच्चिदानन्दरूपं स्वरूपलक्षणं ब्रह्म तथा अपरं 'जन्माद्यस्य यत:' अर्थात् **जीवान् प्रति करुणावशात् विविधरूपधारकं सगुण-साकाररूपं**

---

१. या मूलप्रकृति: शुद्धा जगदम्बा सनातनी। सैव साक्षात्परं ब्रह्म सास्माकं देवतापि च॥ (महाभागवतपुराण ३।१)

२. काली तारा च लोकेशी कमला भुवनेश्वरी॥
छिन्नमस्ता षोडशी च सुन्दरी बगलामुखी। धूमावती च मातङ्गी नामान्यासामिमानि वै॥ (महाभागवतपुराण ८।६२-६३)

तटस्थलक्षणं ब्रह्म।'

इस प्रकार पारमार्थिक और व्यावहारिक सत्ताके भेदसे परमात्माकी निराकारता-साकारता तथा अनन्तता और एकदेशीयताका सामञ्जस्य हो जाता है।

इसी सिद्धान्तके आधारपर वह **'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्'** सक्षम, समर्थ, अकारणकरुण, करुणावरुणालय, परात्पर, परब्रह्म, परमात्मा, सर्वात्मा, विश्वात्मा ब्रह्म, जो निराकार, निर्विकार, निरपेक्ष, निरतिशय, निर्विशेष हो करके भी मर्त्यशिक्षण और लोकरक्षणके साथ-साथ **'मुख्यं तस्य हि कारुण्यम्'** के भावको चरितार्थ करनेके लिये समय-समयपर अवतरित होकर अनेक रूपोंद्वारा विभिन्न प्रकारकी लोकलीलाएँ करता है, उसकी किसी भी अवतार-लीलाको देखने या अवतार-कथाको पढ़ने अथवा सुननेसे हमको एक नयी शिक्षा, नयी दीक्षा, नया उपदेश, नया आदेश, नया संदेश, नयी स्फुरणा, नयी प्रेरणा और नयी चेतना प्राप्त होती है।

भगवान्के किसी भी अवतारकी लीला या कथाको हम देखें, सुनें अथवा पढ़ें—अथवा उन अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डनायक, परात्पर, पूर्णतम, पुरुषोत्तम, राजराजेन्द्र, राघवेन्द्र, भगवान् रामभद्र श्रीरामचन्द्रजीकी अवतार-लीलाओं और कथाओंको हम देखें या सुनें; अथवा चाहे हम कोटि-कोटि कन्दर्पदर्प-दलन, नवजलधरश्यामसुन्दर, अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यामृतसारसर्वस्व, भुवनविमोहन, वृजेन्द्रनन्दनन्दन, भगवान् केशव श्रीकृष्णचन्द्रजीकी दिव्य अवतार-लीलाओं और कथाओंके गूढ़ रहस्योंपर विचार करें;

अथवा चाहे हम आप्तकाम, पूर्णकाम, परम निष्काम, आत्माराम, औढरदानी, आशुतोष, कृपाकोश, भूतभावन भगवान् शङ्करकी भक्तवत्सलतासे ओत-प्रोत अवतार-कथाओंको सुनें,

अथवा चाहे हम करुणामयी, कल्याणमयी, स्नेहसलिला, भाववत्सला, जगज्जननी, जगदम्बा, अम्बा, जगन्माता, महामाता भगवती दुर्गाकी दिव्य पावन अवतार-कथाओंका रसास्वादन, समास्वादन करें; अथवा इसी प्रकार भगवान्के चौबीस अवतार या विशेष प्रसिद्ध दश अवतारों—

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की च ते दश॥

-की लोकरक्षण और मर्त्यशिक्षणकी कथाओंका श्रवण-मनन करें।

—इन सभी अवतार-कथाओंसे हममें एक विशेष ओज, विशेष तेज, विशेष अनुरक्ति, विशेष भावभक्ति तथा शाश्वत शक्ति और शान्तिका प्रादुर्भाव होता है।

भगवान्का अवतार चार प्रकारसे होता है—आवेश, प्रवेश, स्फूर्ति और आविर्भाव।

जैसे बर्तनके पानीमें अग्निका आवेश होता है, वैसे ही **आवेशावतार** कुछ दिनोंके लिये होता है। लोहेके गोलेमें अग्निप्रवेशकी भाँति **प्रवेशावतार** होता है। बिजलीकी चमककी भाँति **स्फूर्ति-अवतार** क्षणभरके लिये ही होता है, किंतु पत्थरमें टाँकीकी चोटसे साक्षात् अग्निके प्राकट्यकी भाँति प्रभुका **आविर्भाव** होता है।

इसी प्रकार अंशावतार और पूर्णावतारके भी भेद-प्रभेद हैं। विशेषतः अवतार पूर्ण ही होते हैं। जहाँ जैसे कार्यकी आवश्यकता होती है, वहाँ वैसी ही शक्तियोंका प्राकट्य होता है।

भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णके अवतारोंमें सभी शक्तियोंका प्राकट्य हुआ है। इसीलिये उन्हें पूर्णावतार कहा जाता है। षोडश कलाएँ और द्वादश कलाएँ—ये दोनों एक ही सिक्केके दो अंश हैं। यथा—एक रुपयेमें सोलह आना (या एक तोला वजन) और बारह मासा (या एक तोला वजन) होते हैं। अतः ये दोनों अवतार पूर्ण रुपया अर्थात् पूर्णावतार ही हैं।

जैसे अपार जलराशिवाला सिन्धु बिन्दु बन करके ही लोगोंकी पिपासा शान्त करता है, जैसे सर्वव्यापी महाकाश घटाकाश अथवा मठाकाश बन करके ही लोगोंको सुख-सुविधाएँ प्रदान करता है, वैसे ही सर्वव्यापी, सर्वाधार, अनादि, अनन्त, शुद्ध-बुद्ध, व्यापक ब्रह्म अपनी अघटितघटना-पटीयसी मायाशक्तिके द्वारा अवतार धारणकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी पुरुषार्थचतुष्टयकी उपलब्धि बड़ी ही सरलता, सरसता और सुगमतासे अपनी अवतार-लीलाओं और कथाओंद्वारा करा देता है।

इन अवतार-कथाओंके श्रवण, मनन, निदिध्यासनके साथ ही इन कथाओंमें वर्णित साधनाओं, आराधनाओं और उपासनाओंके अपनानेसे मानव-जीवनके रहन-सहन, आचार-विचार, संयम-साधना, भाषा-भाव, सभ्यता और संस्कृतिमें सद्यः एक क्रान्तिकारी सुधार होने लगता है।

ये अवतार-कथाएँ ही ज्ञान-विज्ञानका धाम, भक्ति-मुक्ति और शक्तिका प्राण, कर्मठता-कार्यकुशलताकी आधारशिला तथा भारतीय सभ्यता और हिन्दू संस्कृतिका भव्य-भवन

मानी जाती हैं।

जो स्थान बौद्धोंमें और जैनोंमें अहिंसाका, ईसाइयोंमें दयाका और इस्लाममें नमाजका है, उससे भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान हिन्दुओंमें अवतार-कथाओंमें वर्णित रीति-नीति, धर्म-कर्म, ज्ञान-ध्यान, आचार-विचार तथा साधना और उपासनाका है।

हमारे भारतदेशमें हिन्दूधर्ममें अवतार-कथाओंका महत्त्व अनादिकालसे आजतक वैसा ही अविच्छिन्न बना हुआ है जैसा कि सुरनदी भगवती गङ्गाका स्रोत अविच्छिन्नरूपमें विराज रहा है।

इसीलिये वेदान्तसूत्रोंमें भगवान्‌की उपासनामें गति, प्रगति और उन्नति लानेके लिये तथा भक्ति-मुक्ति-शक्ति और शान्ति-अर्जनके लिये इन अवतार-कथाओंकी आवृत्ति करते रहनेका उपदेश दिया गया है। यथा—

'आवृत्तिरसकृदुपदेशात्।'

(वेदान्तदर्शन ४। १। १)

इसके आगे **'आ प्रायणात्०'** (४। १। १२) कहकर भगवान् वेदव्यासने इन अवतार-कथाओंको आजीवन पढ़ते-सुनते रहनेका परामर्श दिया है।

परिणामस्वरूप इन अवतार-कथाओंके वक्ता-श्रोताके लिये **'अनावृत्तिः शब्दात्'** (४। ४। २२) कहकर परमात्माकी प्राप्ति तथा भक्ति-मुक्तिरूप इच्छित वस्तुकी उपलब्धिका दृढ़ताके साथ समर्थन किया गया है, जिससे सदा-सदाके लिये वह आवागमनसे रहित हो जाता है।

भगवान्‌के अवतारकी ये कथाएँ नास्तिकको आस्तिक एवं अनीश्वरवादीको ईश्वरवादी बना देती हैं, साथ ही भक्तको भगवान्‌की ओर, आत्माको परमात्माकी ओर, जीवको ब्रह्मकी ओर और नरको नारायणकी ओर अग्रसारित और उत्साहित करती हैं।

इन अवतार-कथाओंका इतना अधिक महत्त्व है कि एकान्तप्रदेश, वनप्रदेश, निर्जनप्रदेशमें धारणा, ध्यान, समाधिमें रत योगीन्द्र-मुनीन्द्र, वीतरागी, विरागी, त्यागी, सनकादिक, शुकादिक तथा नारदादिक भी इनके श्रवणसे रसाप्लावित, भावाप्लावित, करुणाप्लावित होकर जनकल्याण एवं लोक-कल्याणहेतु स्वयमेव सबको अवतार-कथा-सुधाका पान कराने लगते हैं।

जाति-पाँति, बल-पौरुष, आयु-अवस्था, स्त्री-पुरुषका भी कोई विशेष प्रतिबन्ध इन अवतार-कथाओंके श्रवणमें नहीं है।

इन अवतार-कथाओंको जानसे, अनजानसे, इच्छासे, अनिच्छासे, स्वेच्छासे, परेच्छासे, वैरसे अथवा प्रेमसे—किसी भी प्रकार पढ़ने-सुननेसे कल्याण ही होता है। तभी तो अपने पुत्र नारायणका नाम लेकर अजामिलकी और तोतेको रामनाम पढ़ानेसे वेश्याकी सद्गति हुई।

इसीलिये सत्पुरुषों, साधुपुरुषों, महापुरुषों, आचार्यों और शास्त्रोंने ***'सब कर मत खगनायक एहा'*** कहकर अवतार-कथाओंके श्रवण-मननको सर्वाधिक महत्त्व दिया है।

~~ ० ~~

लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णका लीलावतार

(प्राचार्य श्रीवासुदेवशरणजी उपाध्याय, निम्बार्कभूषण)

अनन्त तीर्थों, वन-उपवनों, पर्वतमालाओं, पुण्यसलिला सरिताओंसे सुशोभित देववृन्दवन्दित भारतवर्षीय वसुधा श्रीहरिकी अवतारभूमि एवं लीलास्थली है। इस भूमिपर जन्म लेनेवाले मनुष्योंकी प्रशंसा करते हुए देवगण कहते हैं—**'मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः॥'** अर्थात् जिन्होंने भारतमें भगवान् श्रीमुकुन्दकी सेवाके योग्य उपयोगी जन्म पाया है, वैसा जन्म प्राप्त करनेकी हमारी भी स्पृहा है।

वेद, उपनिषद्, पुराण, इतिहास, स्मृति, तन्त्रादि शास्त्रोंमें परब्रह्म परमात्माकी असंख्य लीलाओं, अवतार-कथाओंका वर्णन है। प्रत्येक युगमें जब-जब आसुरी शक्तियोंका प्राबल्य होता है, दैवी शक्तियाँ ह्रासोन्मुख हो जाती हैं, तब-तब प्रभु स्वयं पूर्णरूपसे अथवा अंश-कलादि रूपसे भूतलमें अवतीर्ण होकर असुरोंका संहार करते हैं और धर्मकी स्थापना करते हैं। अतः गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

'बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।'

त्रेतामें जहाँ भगवान् श्रीरामका अवतार मर्यादापुरुषोत्तमके रूपमें हुआ, वहीं द्वापरमें भगवान् श्रीकृष्णका अवतार लीलापुरुषोत्तमके रूपमें हुआ। अवतारकी परिभाषा करते हुए शास्त्रकार कहते हैं—

'अवतारो नाम स्वेच्छया धर्मसंस्थापनार्थमधर्मोपशमनार्थं स्वीयानां वाञ्छापूर्त्यर्थं च विविधविग्रहैराविर्भावविशेषः।'

(वेदान्तरत्नमञ्जूषा)

अर्थात् सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरिका अपनी इच्छासे धर्मसंस्थापन, अधर्मोपशमन एवं स्वकीय भक्तजनोंकी इच्छापूर्तिहेतु विविध विग्रहों, स्वरूपोंसे आविर्भूत होना अवतार कहलाता है।

अवतारोंके तीन भेद बताये गये हैं—गुणावतार, पुरुषावतार तथा लीलावतार। यहाँ इनका संक्षेपमें वर्णन प्रस्तुत है—

१-गुणावतार

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तै-
र्युक्तः परः पुरुष एक इहास्य धत्ते।
स्थित्यादये हरिविरिञ्चिहरेति संज्ञाः
श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युः॥

(श्रीमद्भा० १। २। २३)

भाव यह है कि सत्त्व, रज तथा तम—ये तीन गुण प्रकृतिके हैं, इन्हीं गुणोंका आश्रय लेकर अथवा इनसे युक्त होकर एक ही परब्रह्म परमात्मा इस जगत्प्रपञ्चको त्रिविधरूपमें—स्थिति, सृष्टि तथा संहाररूपमें—श्रीविष्णु, विरञ्चि तथा हर—इन तीन संज्ञाओंसे धारण करते हैं।

सत्त्व गुणके स्वामी भगवान् श्रीविष्णुका कार्य है—सत्त्व गुणके आश्रयसे सृष्टिमें आये हुए समस्त प्राणियोंकी रक्षा एवं उनका सम्पोषण करना, रजोगुणके स्वामी लोकपितामह श्रीब्रह्मदेवका कार्य है—रजोगुणके आश्रयसे चराचर जगत्की सृष्टि करना और तमोगुणके स्वामी भगवान् श्रीरुद्रदेवका कार्य है—तमोगुणके आश्रयसे युगान्त किंवा कल्पान्तमें सृष्टिका संहार करना। अतः ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश—ये त्रिदेव गुणावतार कहलाते हैं। उनमें मनुष्योंका सर्वविध मङ्गल सत्त्वतनु भगवान् श्रीनारायणके सर्वतोभावेन समाश्रयण और आराधनसे होता है।

२-पुरुषावतार

प्रथमं महतः सृष्टिर्द्वितीयं त्वण्डसंस्थितम्।
तृतीयं सर्वभूतस्थं तानि ज्ञात्वा विमुच्यते॥

अर्थात् महत्तत्त्वके स्रष्टा कारणार्णवशायी प्रकृतिनियन्ता पुरुष ही प्रथम रूपमें पुरुषावतार कहे जाते हैं। समष्टि जगत्के उत्पादक अन्तर्यामी पुरुष ही द्वितीय रूपमें पुरुषावतार कहे गये हैं एवं व्यष्टि जगत्के अन्तर्यामी सर्वनियन्ता क्षीरोदशायी पुरुष ही तृतीय रूपमें पुरुषावतार कहे गये हैं—इस प्रकार पुरुषावतारके भी तीन भेद हुए।

३-लीलावतार

आवेशावतार और स्वरूपावतारके भेदसे लीलावतार दो प्रकारके हैं। आवेशके भी स्वांशावेश और शक्त्यंशावेशसे दो भेद हैं। जो जीवके आवरणके बिना साक्षात् निज अंशसे प्राकृत विग्रहमें प्रवेश करे, उसे स्वांशावेश कहते हैं। जैसे—नर और नारायणका अवतार। जो शक्ति-अंशमात्रसे जीवमें प्रविष्ट होकर कार्य करे उसे शक्त्यंशावेश कहते हैं। इसमें तारतम्यके भेदसे एक '**प्रभव**' और दूसरा '**विभव**' कहलाता है। धन्वन्तरि, परशुराम प्रभृति प्रभवावतार हैं तथा कपिल, ऋषभ, चतुःसन, नारद तथा व्यास आदि विभवावतार हैं—इस प्रकार ये आवेशावतारके स्वरूपभेद हैं।

अब स्वरूपावतारका वर्णन किया जाता है। स्वरूपसे अर्थात् सच्चिदानन्दात्मकरूपसे आविर्भूत होना स्वरूपावतार कहलाता है। यह अवतार एक दीपकसे दूसरे दीपकमें प्रविष्ट ज्योतिकी भाँति अभिन्न स्वरूप गुण एवं शक्तिवाला होता है। यह भी अंश एवं पूर्ण इस भेदसे दो प्रकारका बताया गया है। पूर्ण ब्रह्म परमात्मा भी अपने अल्पगुण शक्तिके आविष्करणसे अंशरूप कहा जाता है। इनमें मत्स्य, कूर्म, वराह, वामन, हयग्रीव, हंस इत्यादि आते हैं। अपने पूर्ण गुण-शक्त्यादिको व्यक्त करनेसे श्रीनृसिंहदेव, श्रीदाशरथी राम और श्रीकृष्ण—ये पूर्ण स्वरूपावतार हैं।

इनमें मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम एवं लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी अवतारविधाओंका शास्त्रोंमें परम उदात्त भावसे वर्णन किया गया है। अथर्ववेदीय 'कृष्णोपनिषद्' में निम्न वर्णन* आया है।

त्रेतायुगमें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम वनवासके समय जगज्जननी भगवती श्रीसीता एवं लक्ष्मणसहित जब दण्डकारण्य पहुँचे, वहाँ दीर्घकालसे तपश्चर्यामें निरत महर्षियोंने

* 'श्रीमहाविष्णुं सच्चिदानन्दलक्षणं रामचन्द्रं दृष्ट्वा सर्वाङ्गसुन्दरं मुनयो वनवासिनो विस्मिता बभूवुः। तं होचुर्नोऽवद्यमवतारान् वै गण्यन्ते आलिङ्गामो भवन्तमिति। भवान्तरे कृष्णावतारे यूयं गोपिका भूत्वा मामालिङ्गथ॥ अन्ये येऽवतारास्ते हि गोपान्न स्त्रीश्च नो कुरु। अन्योन्यविग्रहं धार्यं तवाङ्गस्पर्शनादिह। शश्वत् स्पर्शयिताऽस्माकं गृह्णीमोऽवतारान् वयम्'॥ १॥

सर्वाङ्गसुन्दर सच्चिदानन्दरूप महाविष्णु नारायणके पूर्णावतार श्रीरामचन्द्रजीको अपनी अनपायिनी ऐश्वर्य-माधुर्ययुक्त आह्लादिनीशक्ति जानकीजीके साथ देखा तो वे अत्यन्त मुग्ध हो गये और प्रार्थना करने लगे—भगवन्! आपका यह अवतार अन्य अवतारोंसे श्रेष्ठ एवं दोषरहित है। अत: हम भगवती सीताकी तरह आपके साथ रहकर आपकी अङ्ग-सङ्गपूर्वक उपासना करना चाहते हैं। परम दयालु भगवान् श्रीराम उन समस्त मुनिजनोंको सान्त्वना देते हुए कहते हैं—हे मुनीश्वरो! द्वापरान्तमें आप सब अपने आपको गोप-गोपियोंका रूप बनाकर व्रजभूमिमें रहेंगे। मैं जब लीलापुरुषोत्तम रूपमें कृष्णावतार धारण कर नानाविध लीलाविहार करूँगा, तब आप सब समस्त प्राणियोंके प्रियतम मेरा आलिङ्गनपूर्वक अङ्ग-सङ्ग करेंगे। अन्य अवतारोंमें जो-जो कार्य अवशिष्ट रहे हैं, उन सबकी पूर्ति कृष्णावतारमें ही हो सकेगी। अवतारकी पूर्णता होनेपर भी मेरा यह रामरूप मर्यादामें आबद्ध है। कृष्णरूप तो लीलामय होनेसे सकल भक्तोंकी सर्वविध मनोरथसिद्धिके लिये स्वतन्त्र है। अत: अन्य मत्स्य, कूर्म, नृसिंह आदि अवतार अंश-कला-पूर्ण होनेपर भी भक्तोंकी सकल भावनाओंको पूर्ण नहीं करते, किंतु कृष्णावतार तो सर्वसमर्थ है; क्योंकि यह पूर्णतम अवतार है। मुनिजन कहने लगे—प्रभो! इस परमपावन दण्डकारण्य प्रदेशमें आपके श्रीविग्रहका दर्शन और स्पर्श पाकर हमारे जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तरके कल्मष दूर हो गये हैं। अत: हमें परस्पर गोप-गोपियोंका शरीर धारण करना चाहिये। उस समय आप श्रीकृष्णरूपमें हम सब ऋषिरूपा गोपियोंका निरन्तर अङ्गस्पर्श करेंगे। एतदर्थ हम सभी वनवासी मुनिजन श्रीकृष्णस्वरूप आपकी सर्वतोभावेन सेवाके लिये अपने-अपने अंशरूपसे गोप-गोपी बनकर व्रजमें अवतीर्ण होंगे।

इन्हीं साधनसिद्ध गोपियोंका एक मण्डल जो ऋषिरूपा गोपियाँ कहलाती हैं, उन्हें प्रभुका सांनिध्य प्राप्त है। कात्यायनी-व्रत करनेवाली गोपियाँ इनसे भिन्न हैं—ऐसा संतोंका कथन है।

अनन्तस्वरूप गुण एवं शक्तिके अधिष्ठान लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी सविशेष, निर्विशेषता, व्यूहाङ्गिता और परब्रह्मरूपताका वर्णन करते हुए सुदर्शनचक्रावतार श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य कहते हैं—

स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोष-
मशेषकल्याणगुणैकराशिम्।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यं
ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्॥

(दशश्लोकी ४)

जिनमें स्वभावसे ही समस्त दोषोंका अभाव है तथा जो समस्त कल्याणमय गुणोंके एकमात्र समुदाय हैं। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये चारों व्यूह जिनके अङ्गभूत हैं तथा जो सर्वश्रेष्ठ परब्रह्मस्वरूप हैं, उन पापहारी कमलनयन सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीकृष्णका हम चिन्तन करें।

शास्त्रोंमें प्रभुका निर्गुण आदि पदोंसे जो निर्वचन किया है, वह तो प्राकृत गुणोंका राहित्यमात्र है। कृष्णस्तवराजमें आचार्यप्रवर कहते हैं—

शान्तिकान्तिगुणमन्दिरं हरिं
स्थेमसृष्टिलयमोक्षकारणम्।
व्यापिनं परमसत्यमंशिनं
नौमि नन्दगृहचन्दिनं प्रभुम्॥

जो प्रभु शान्तिप्रभृति स्वरूपगुणों तथा कान्त्यादि विग्रह गुणोंके निवासस्थान हैं; उत्पत्ति, पालन, संहार तथा मोक्षके कारण हैं, चराचर जगत्‌में व्यापक, परमस्वतन्त्र तथा अंशी हैं (जीव अंश है, भगवान् अंशी हैं) और नन्दगोपके गृहप्राङ्गणमें विचरण करते हुए अपनोंको आह्लादित करनेवाले हैं, उन सर्वसमर्थ श्रीहरिकी मैं स्तुति करता हूँ—वन्दन करता हूँ।

आचार्यका कहना है कि हे हरे! ब्रह्म निर्गुण है, यह वेदका वचन भी आपमें विरुद्ध नहीं है, किंतु समञ्जस है; क्योंकि आप समस्त अविद्या और तत्सम्बन्धी हेयगुण-धर्मसे रहित हैं, अत: निर्गुण (निर्विशेष) हैं। वास्तवमें तो आप समस्त सद्‌गुणोंके सागर हैं, इस कारण सविशेष हैं। अत: पूर्वोक्त प्राकृत गुणरहित और सद्‌गुणसागर आपके स्वरूपका आविर्भाव औपनिषद सिद्धान्तके अनुगामी मेरे-जैसेके लिये सदा बना रहे—ऐसी मेरी प्रार्थना है। श्रीभगवान्‌की गुणावलीका यत्किञ्चित् निर्देश इस प्रकार है—ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, तेज, वीर्य, सौशील्य, वात्सल्य, आर्जव, सौहार्द, सर्वशरण्यत्व, सौम्यत्व, करुणा, स्थिरत्व, धैर्य, दया, माधुर्य तथा मार्दव आदि—

'गुणाश्च ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यतेजोवीर्यसौशील्यवात्सल्यार्जवसौहार्दसर्वशरण्यत्वसौम्यकरुणास्थिरत्वधैर्यदयामाधुर्यमार्दवादय:।' (वेदान्तरत्नमञ्जूषा)

इन गुणोंकी संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है—श्रीकृष्णके

उन स्वाभाविक गुणोंमें सर्वदेशकालवस्तुविषयक प्रत्यक्षानुभवको '**ज्ञान**' कहते हैं। अघटनघटनापटीयसी-स्वरूप-सामर्थ्यको '**शक्ति**' कहा गया है, विश्वधारणादि शक्ति '**बल**' है। सर्वनियन्तृत्व शक्तिको '**ऐश्वर्य**' कहते हैं। श्रमके अपरिमित कारण होनेपर भी श्रमशून्यत्व '**तेज**' है। दूसरोंसे अभिभूत न होते हुए उनको अभिभूत करना '**वीर्य**' है—ये छः प्रकारके गुण जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और संहारके उपकारक और भगवच्छब्दके वाच्य हैं।

अपनी महत्ताकी अपेक्षा न रखते हुए सरलतापूर्वक अतिमन्द प्राणियोंको भी हृदयसे लगाना '**सौशील्य**' है। सेवकोंके दोषों तथा त्रुटियोंकी उपेक्षा करना '**वात्सल्य**' है। मन, वाणी, शरीरसे समत्व रखना '**आर्जव**' है। अपने सामर्थ्यसे भी अधिक रूपमें दूसरोंकी रक्षा करनेका स्वभाव '**करुणा**' है। युद्धादिमें अविचल रहना '**स्थिरत्व**' है। प्रतिज्ञापालनको '**धैर्य**' कहा गया है। दूसरोंके दुःख देखकर दुःखित होते हुए उसे दूर करनेकी चेष्टा करना '**दया**' है। अमृतपानके समान दर्शनमें अतृप्ति होना '**माधुर्य**' है। आश्रितजनोंके दुःख, संतापादिको सहन न करना मार्दव कहा गया है। इसी प्रकार सौकुमार्यादि विग्रहगुणोंको भी समझना चाहिये। उपर्युक्त सौशील्यादिगुण भगवदाश्रयण और आश्रितके रक्षणमें परमोपयोगी हैं। इन्हीं भगवद्‌गुणोंका संकेत भगवान् श्रीबादरायणने '**विवक्षितगुणोपपत्तेश्च**' इस सूत्रद्वारा किया है।

'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥'

इत्यादि श्रुतियोंद्वारा नित्य-विभूति और लीला-विभूतिमें दीपसे दीपकी तरह अजहद-गुणशक्तिका प्रतिपादन किया है।

लीलावपुर्धारी सर्वेश्वर श्रीहरिकी अनन्त लीलाओंमें ऐश्वर्य-माधुर्ययुक्त ऊखलबन्धन-लीला अत्यन्त शिक्षाप्रद है। '**कश्यपोलूखलः ख्यातो रज्जुर्माताऽदितिस्तथा।**' इस कृष्णोपनिषद्‌के वचनानुसार जिस प्रकार नित्य-विभूतिमें भूषण-वसन, आयुध आदि सभी दिव्य चिन्मय हैं; उसी प्रकार लीलाविभूतिमें भी ऊखल, रस्सी, बेंत, वंशी तथा शृङ्गार आदि सब वस्तुएँ देवरूप बतायी गयी हैं। इसी भावको दर्शानेके लिये ऊखल, रस्सी आदिका स्वरूप बताते हैं। जो मरीचिपुत्र प्रजापति कश्यप हैं, वे नन्दगृहमें ऊखल बन गये। उसी प्रकार जितनी भी रस्सियाँ हैं, वे सब देवमाता अदितिके स्वरूप हैं। जब श्यामसुन्दर बालकृष्ण स्तनपानकी इच्छासे दधिगृहमें गये, जहाँ माता यशोदा दधिमन्थन कर रही थीं तो बालकको देखते ही दधिमन्थनका कार्य छोड़कर उन्हें स्तनपान कराने लगीं। इतनेमें दुग्धगृहमें दूध उफननेकी सूचना मिली, तब कन्हैयाको अतृप्त अवस्थामें छोड़कर वे भीतर चली गयीं। इधर बालकृष्ण कुपित हो गये। उन्होंने दूध-दहीके पात्र फोड़ दिये, वहाँपर दूध-दही फैलनेसे समुद्र-सा हो गया। जैसे आदिदेव नारायण क्षीरसागरमें विहार करते हैं, उसी प्रकार कन्हैया भी विहार करने लगे। इस भूलके कारण वे भयभीत होकर वहाँसे भागे, किंतु बादमें यशोदाजीने पकड़कर प्रभुको ऊखलमें रस्सियोंसे बाँध दिया और प्रभुका नाम 'दामोदर' पड़ा। भगवान् अपनी इच्छासे पितृरूप ऊखलमें मातृरूप रस्सियोंसे माता यशोदाके वात्सल्यवश बन्धनमें आ गये—यह उनकी कृपा थी। (**'कृपयासीत् स्वबन्धने'**) यह है माधुर्यस्वरूप। ऐश्वर्यभाव है कि बन्धनके समय रस्सीका दो अंगुल छोटा पड़ना। भगवान्‌की ऐश्वर्यशक्ति यह नहीं चाहती कि उसके स्वामी प्राकृत रज्जुसे बँध जायँ।

किंतु प्रभुने संकेत कर दिया कि मैं मधुरमयी बाललीलाके लिये व्रजमें आया हूँ। यहाँ वात्सल्यका प्रभाव अधिक है, इसमें तुम बाधक मत बनो। ऐश्वर्यशक्ति हट गयी, श्रीहरि बँध गये। इस लीलासे प्रभुने जगत्‌को शिक्षा प्रदान की है कि वासना या इच्छाकी पूर्ति न होनेपर व्यक्तिको क्रोध आता है, क्रोधसे अपराध करता है और उस अपराधका उसे जेल, हथकड़ी, बन्धन आदि दण्ड मिलता है। अतः वासना या कामनाको मत फैलाओ, संयमसे ही सुख और भगवत्-प्राप्ति सम्भव है।

इस प्रकार द्वापरान्तमें अनन्त भक्तोंकी सदिच्छाको पूर्ण करनेके लिये श्रीहरिने लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णके रूपमें अवतार धारण किया, इसीका संकेत आचार्यप्रवर श्रीनिम्बार्काचार्यजी करते हैं—

'नान्या गतिः कृष्णपदारविन्दात्
संदृश्यते ब्रह्मशिवादिवन्दितात्।
भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहा-
दचिन्त्यशक्तेरविचिन्त्यसाशयात् ॥

ब्रह्मा तथा शिव आदि देवेश्वर भी जिनकी वन्दना करते हैं, जो भक्तोंकी इच्छाके अनुसार परम सुन्दर एवं चिन्तन करनेयोग्य लीलाशरीर धारण करते हैं, जिनकी शक्ति अचिन्त्य है तथा जिनके अभिप्रायको उनकी कृपाके बिना कोई नहीं जान सकता; उन श्रीकृष्णचरणारविन्दोंके सिवा जीवकी दूसरी कोई गति नहीं दिखायी देती।

अवतार-तत्त्व-विमर्श

(आचार्य श्रीआद्याचरणजी झा)

जिसकी सत्ता पूर्वत: सिद्ध है, उसीका अवतरण होता है—'**नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः**' (गीता २।१६)-से यह बात प्रमाणित है। अवतार जन्म नहीं है। अतएव श्रीमद्भागवतके मङ्गलाचरणमें '**जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्**' कहा गया है।

उक्त श्लोकको संस्कृत टीकाओं विशेषत: श्रीधरी व्याख्यामें भी अनेक अर्थ प्राप्त हैं, किंतु महामना ब्रह्मचारीने बँगलामें ८७ प्रकारके अर्थ किये हैं। पण्डित गिरिराजशास्त्रीका कथन है कि ८७ अर्थोंमें समस्त श्रीमद्भागवत-कथाओंका सारभाग निहित है। उपर्युक्त अर्थोंके आलोकमें भगवान् श्रीकृष्णके आविर्भावसे तिरोभावपर्यन्त सभी अलौकिक लीलाओंके रहस्योंको समझनेके लिये '**विद्यावतां भागवते परीक्षा**' यह सूक्ति सर्वथा तथ्यपूर्ण है।

यद्यपि भारतीय पुराणोंमें अनेकानेक अवतारोंकी कथाएँ हैं, किंतु मुख्यत: श्रीरामावतार तथा श्रीकृष्णावतार—ये दो ऐसे हैं, जिनके विवरण-विश्लेषणसे अनेक ग्रन्थ परिपूर्ण हैं, निरन्तर आज भी हो रहे हैं और आगे होते रहेंगे।

श्रीरामावतारकी कथाएँ जहाँ सर्वथा लौकिक मर्यादासे परिपूर्ण हैं, वहीं श्रीरामने अपनी भगवत्ताकी गोपनीयताका प्रयास किया है। श्रीमद्भगवद्गीतामें आत्मा-परमात्माके प्रसंगोंका गहनतम विश्लेषण हुआ है, जिसकी व्याख्या भगवान् आद्य शंकराचार्यसे लेकर अधुनातन मनीषियों—भक्तोंने की है और अन्तमें 'नेति-नेति' कहकर सभीने अपनेको मुक्त कर लिया है।

सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतमें प्रतिपदोक्त रूपमें राधा नामकी चर्चा नहीं है जबकि समग्र भागवती-कथा राधापर आधारित है। कहीं-कहीं आराधनादि पदसे राधा शब्द निकालनेका प्रयास किया जाता है।

भगवान् श्रीकृष्णके अलौकिक कृत्योंकी चरम परिणति है—महारास। उसमें रासेश्वरी शब्द है न कि राधा। ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्डके १७वें अध्यायमें राधाके १६ नाम मिलते हैं; यथा—राधा, रासेश्वरी, रासवासिनी, रसिकेश्वरी, कृष्णप्राणाधिका, कृष्णप्रिया, कृष्णस्वरूपिणी, कृष्णवामाङ्गसम्भूता, परमानन्दरूपिणी, कृष्णा, वृन्दावनी, वृन्दा, वृन्दावनविनोदिनी, चन्द्रावली, चन्द्रकान्ता और शरच्चन्द्रप्रभानना।

एक प्रमाण यह भी मिलता है—'**सर्वचेतोहरः कृष्णः तस्य चित्तं हरत्यसौ, वैदग्ध्यभावसंयुक्ताऽतो राधा हरा स्मृता**'

'राधा' शब्दकी व्याख्या—व्युत्पत्ति ब्रह्मवैवर्तपुराणमें निम्नाङ्कितरूपमें उपलब्ध है—

राधाशब्दस्य व्युत्पत्तिः सामवेदे निरूपिता।
नारायणस्तामुवाच ब्रह्माणं नाभिपङ्कजम्॥

यथा—

रेफो हि कोटिजन्माघं कर्मभोगं शुभाशुभम्।
आकारो गर्भवासं च मृत्युं च रोगमुत्सृजेत्।
धकार आयुषो हानिमाकारो भवबन्धनम्॥
श्रवणस्मरणोक्तिभ्यः प्रणश्यति न संशयः।
रेफो हि निश्चलां भक्तिं दास्यं कृष्णपदाम्बुजे॥
सर्वेप्सितं सदानन्दं सर्वसिद्धौघमीश्वरम्।
धकारः सहवासं च तत्तुल्यकालमेव च॥
ददाति सार्ष्टिसारूप्यं तत्त्वज्ञानं हरेः समम्।
आकारस्तेजसां राशिं दानशक्तिं हरौ यथा॥

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १३।१०५—१०९)

सामवेदमें 'राधा' शब्दकी व्युत्पत्ति बतायी गयी है। नारायणदेवने अपने नाभिकमलपर बैठे हुए ब्रह्माजीको वह व्युत्पत्ति बतायी—

राधाका 'रेफ' करोड़ों जन्मोंके पाप तथा शुभाशुभ कर्मभोगसे छुटकारा दिलाता है। 'आकार' गर्भवास, मृत्यु तथा रोगको दूर करता है। 'धकार' आयुकी हानिका और 'आकार' भवबन्धनका निवारण करता है। राधा नामके श्रवण, स्मरण और कीर्तनसे उक्त सारे दोषोंका नाश हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। राधा नामका 'रेफ' श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंमें निश्चला भक्ति तथा दास्य प्रदान करता है। 'आकार' सर्ववाञ्छित, सदानन्दस्वरूप, सम्पूर्ण सिद्ध-समुदायरूप एवं ईश्वरकी प्राप्ति कराता है। 'धकार' श्रीहरिके साथ उन्हींकी भाँति अनन्त कालतक सहवासका सुख, समान ऐश्वर्य, सारूप्य तथा तत्त्वज्ञान

प्रदान करता है। 'आकार' श्रीहरिकी भाँति तेजोराशि, दानशक्ति, योगशक्ति, योगमति तथा सर्वदा श्रीहरिकी स्मृतिका अवसर देता है।

उपर्युक्त प्रमाणोंसे सिद्ध है कि सामवेदसे लेकर ब्रह्मवैवर्तपुराणादिमें राधा नामकी महिमा-गरिमा श्रेयसी-प्रेयसी है।

१६वीं शताब्दीमें रूपगोस्वामीके 'उज्ज्वलनीलमणि' नामक भक्तिरसप्रधान ग्रन्थमें 'अथ राधाप्रकरणम्' (श्लोक ५-६)-में निम्न कथन है—

यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा।
सर्वगोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्तवल्लभा॥
ह्लादिनी या महाशक्तिः सर्वशक्तिवरीयसी।

उक्त कथन बृहद् गौतमीयतन्त्र, पद्मपुराण आदिके आधारपर है।

श्रीकृष्णकी अलौकिक लीलाओंमें महारास ही चरमोत्कर्षपर है, जो राधाके बिना सम्भव ही नहीं है।

पूर्णावतार परब्रह्मस्वरूप लीलापुरुषके महारासकी भावना करनेसे आनन्दित होना सन्तोंका अनुभवसिद्ध है।

~~~

अवतारतत्त्व-मीमांसा

(आचार्य डॉ० श्रीजयमन्तजी मिश्र, एम्०ए०, पी-एच्०डी०, व्याकरण-साहित्याचार्य, पूर्व कुलपति)

भक्तानुग्रहकाम्ययैव धरतेऽद्वैतेऽपि यो द्वैततां
राधामाधवरूपतां मधुरतामाधाय धत्ते पुमान्।
आत्मारामविहारतो निजजनानाराधयन्तं विभुं
कृष्णं भक्तजनप्रियं प्रभुवरं ध्याये परं चिन्मयम्॥

(महामानवचम्पू १।१।४)

श्लोकका भाव है कि क्षराक्षरातीत, सच्चिदानन्दघन, परमपुरुषोत्तम, सौन्दर्य-माधुर्य-निधान, वसुदेव-देवकीनन्दन आत्माराम भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण परमार्थतः अद्वैतरूप होते हुए भी भक्तोंपर अनुग्रह करनेकी भावनासे राधामाधव— इस द्वैतरूपमें धरातलपर अवतीर्ण होते हैं और भक्तजनोंको परितुष्ट करते हैं।

अवतार, अवतरण आदि शब्दोंका तात्पर्य है ऊपरसे नीचे उतरना। अपने गोलोकधाम[1], वैकुण्ठधाम आदि नामोंसे व्यपदिष्ट परमधामसे धर्मकी रक्षा, साधु-संतोंके परित्राण और अधर्मादि दुराचारोंके विनाशके लिये भगवान्का भूतलपर अवतार होता है। स्वयं भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णचन्द्रने इस तथ्यका प्रतिपादन गीतामें किया है।[2]

इस तथ्यको और पल्लवित करते हुए श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि पृथ्वीका बोझ हलका करने, साधु-सज्जनोंकी रक्षा करने और दुष्ट-दुर्जनोंका संहार करनेहेतु समय-समयपर धर्म-रक्षाके लिये और बढ़ते हुए अधर्मको रोकनेके लिये और भी अनेकों शरीर ग्रहण कर भगवान् धरातलपर अवतीर्ण होते हैं—

एतदर्थोऽवतारोऽयं भूभारहरणाय मे।
संरक्षणाय साधूनां कृतोऽन्येषां वधाय च॥
अन्योऽपि धर्मरक्षायै देहः संभ्रियते मया।
विरामायाप्यधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित्॥

(श्रीमद्भा० १०।५०।९-१०)

पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च तन्मात्राओंसे बना हुआ लिङ्गशरीर जब चेतनासे युक्त होता है तो जीव कहलाता है।[3] परमात्माका अंश यह जीव परमेश्वरका ही अवतार है—**'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।'**[4] सनातन परमात्माका अंश यह जीव भी सनातन है। ध्यातव्य है कि जीवात्मा और परमात्मामें अंशांशिभाव औपाधिक है। जैसे घटसे आवेष्टित होनेके कारण घटाकाश महाकाशका अंश-सा प्रतीत होता है, वैसे ही उपर्युक्त लिङ्गशरीरसे आवेष्टित होनेके कारण जीवात्मा परमात्माके अंशरूपमें भासित होता है। वस्तुतः दोनोंमें तात्त्विक अन्तर नहीं है। जैसे नभोमण्डलस्थित चन्द्र और जलमें प्रतिबिम्बित होनेवाला चन्द्र वस्तुतः एक ही है, वैसे ही क्षराक्षरातीत पुरुषोत्तम परमात्मा और लिङ्गशरीरस्थ जीवात्मा दोनों एक हैं, अभिन्न हैं।

अपने गोलोकधाममें नित्य रमण करनेवाले आत्माराम

---

१. 'गोलोकनाम्नि निजधाम्नि तले च तस्य' (ब्रह्मसंहिता ५।१५)
२. 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।' ···· 'धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥' (गीता ४।७-८)
३. एवं पञ्चविधं लिङ्गं त्रिवृत् षोडशविस्तृतम्। एष चेतनया युक्तो जीव इत्यभिधीयते॥ (श्रीमद्भा० ४।२९।७४)
४. गीता (१५।७)
~~~

गोविन्द दो प्रयोजनोंसे इस धराधामपर यदा-कदा अवतीर्ण होते हैं। हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष आदि दैत्य; रावण, कुम्भकर्ण आदि राक्षस और शिशुपाल, दन्तवक्त्र आदि गर्वोन्मत्त राजागण अपनी शक्तिका दुरुपयोग करते हुए जब देव, गन्धर्व, ऋषि, मुनि, साधु-सज्जनोंको अत्यन्त पीड़ित करने लगते हैं तो नरसिंह, राम आदि रूपोंमें आवश्यकतानुसार अपनी कलाको प्रकट करते हुए परम पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण[१] समय-समयपर पृथ्वीलोकमें अवतीर्ण होते रहते हैं और उन दुर्दान्तोंका निग्रह करते हैं। साधु-सज्जनोंकी रक्षा और दुष्ट-दुर्जनोंका संहार—इस प्रयोजनके साथ-साथ भक्तप्रिय भगवान् अपने अवतारके द्वारा अपने आत्मीय भक्तजनोंको आह्लादित भी करते हैं। इसीसे अवतारोंके दोनों प्रयोजन—दुष्टोंका संहार और भक्तजनोंका हृदयाह्लाद सिद्ध होते हैं।

परमेश्वरकी यह अवतार-लीला है। निखिल ब्रह्माण्डोंके आधार भगवान् वासुदेव ही हैं।[२] वे सत्, असत् और सदसत्से परे भी हैं। ऐसी स्थितिमें उनका अवतरण ऊपरसे नीचे आना लीलामात्र है, जो भक्तोंपर अनुग्रहकी भावनासे ही किया करते हैं। लिङ्गशरीरावेष्टित जीवोंका अवतरण 'जन्म' और विशुद्ध आत्मस्वरूप आत्माराम भगवान्का अवतरण 'अवतार' माना जाता है।

जीवात्मा कर्म-बन्धनसे आबद्ध है और परमात्मा जन्म-कर्म-बन्धनसे विनिर्मुक्त है।[३]

स्वयं भगवान्ने अपने अवतारोंके रहस्य और प्रयोजनोंको गीता, भागवतादि पुराणोंमें सूचित किया है; जिन्हें उनके ही अनुग्रहसे समझा जा सकता है।

वस्तुत: परमेश्वरके अनन्त, अपरिमेय, अप्रमेय और दिव्य गुणों तथा क्रिया-कलापोंको गिनने, समष्टिरूपमें जाननेका प्रयास जो करता है, उस प्रवृत्तिमें उसकी बालबुद्धि (मूर्खता) ही कारण है; क्योंकि भगवान् अनन्त हैं। उनके गुण भी अनन्त हैं। जो यह सोचता है कि वह उनके गुणोंको गिन लेगा, वह बालक है। यह तो सम्भव है कि कोई किसी प्रकार पृथ्वीके धूलिकणोंको गिन ले, परंतु समस्त शक्तियोंके आश्रय भगवान्के अनन्त गुणोंका कोई कभी किसी प्रकार पार नहीं पा सकता।[४]

अत: सामान्य दृष्टिसे यह कहा जाता है कि भगवान् दुर्जनोंके संहार, साधु-सज्जनोंके संरक्षण और भक्तजनोंके हृदयाह्लादके लिये अपने गोलोकधामसे इस धराधामपर अवतार लिया करते हैं। उनके अवतारोंके विशेष कारण जो शास्त्र-पुराणोंमें इङ्गित हैं, उन्हें मनीषी मतिमान् सूक्ष्मेक्षिकासे ज्ञानचक्षुद्वारा और पुण्यशाली महात्मा प्रभुकी ही कृपासे प्राप्त दिव्यदृष्टिसे देख पाते हैं।

अवतारोंको नमन

(श्रीरामलखनसिंहजी 'मयंक')

परमरूप छविमय भक्तोंके हेतु नाथ धरते अवतार।
जीवोंके सब क्लेश मिटाने आते जगमें विविध प्रकार॥
अत्याचार दुर्जनोंका जब घोर जगत्में छा जाता।
अन्यायोंसे त्रस्त हुआ सज्जन समूह अकुला जाता॥
धरती माँके साथ सभी सुर मुनिजन करते आर्त पुकार।
सुनकर द्रवित विवश होते प्रभु हरनेको तत्क्षण भूभार॥
मत्स्य, कूर्म, शूकर, नृसिंह, वामन, श्रीपरशुराम श्रीराम।
हलधर, गौतम बुद्ध, कल्कि हैं, नैमित्तिक अवतार तमाम॥
संतश्रेष्ठ जो आत्मसिद्ध भगवत्स्वरूप हैं नित अवतार।
करते हम सबको सन्मनसे, नमन, सभी हैं करुणागार॥

१. रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन् नानावतारमकरोद् भुवनेषु किन्तु।
कृष्ण: स्वयं समभवत् परम: पुमान् यो गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ (ब्रह्मसंहिता ५। ११)
२. 'मत्त: परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय।' (गीता ७। ७)
३. 'जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वत:।' (गीता ४। ९)
४. यो वा अनन्तस्य गुणाननन्ताननुक्रमिष्यन् स तु बालबुद्धि:। रजांसि भूमेर्गणयेत् कथञ्चित् कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्न:॥
(श्रीमद्भा० ११। ४। २)

अवतार—प्रयोग और प्रयोजन

(डॉ० श्रीराजीवजी प्रचण्डिया, बी०एस्-सी०, एल्-एल्०बी०, एम्०ए० (संस्कृत), पी-एच्०डी०)

सृष्टिका अस्तित्व ईश्वरपर आधृत है। अस्तु सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और लय अर्थात् सृष्टिके जो शाश्वत धर्म हैं, उनमें ईश्वरकी भूमिका सारभूत है। ईश्वर तो एक ही है, किंतु ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये ईश्वरके तीन शाश्वत रूप हैं, जिसमें ब्रह्मा सृष्टिके सर्जक, विष्णु सृष्टिके पालक तथा महेश सृष्टिके संहारकके रूपमें लोकमें समादृत हैं।

ईश्वरके इन तीनों रूपोंमें विष्णु अधिक लोकप्रिय हैं; क्योंकि वे सृष्टिके पालनकर्ता होनेके कारण समग्र संसारको सद्धर्मसे सुसज्जित एवं सुव्यवस्थित किये रहते हैं। संसारमें सद्वृत्तियोंका जब लोप होने लगता है और असत् अथवा राक्षसी प्रवृत्तियाँ प्रभावी होने लगती हैं तो भगवान् विष्णु अवतारके रूपमें इस धरतीपर उतरकर संसारको असत्से सत्की ओर ले जाते हैं। अवतारका अर्थ है—**'अवतरणमवतारः।'** अर्थात् ऊपरसे नीचे उतरना। भगवान्का समय-समयपर भिन्न-भिन्न रूपोंमें लौकिक शरीर धारणकर इस धरतीपर उतरना या जन्म धारण करना अवतार कहलाता है।

ईश्वर सर्वसमर्थ, सर्वशक्तिमान्, सार्वभौम एवं सार्वकालिक है। उसमें वह अपरिमित शक्ति व्याप्त है, जिससे वह अप्राकृत शरीर धारणकर लोकमें अवतरित होता है। अवतारके रूपमें ईश्वर या भगवान् समस्त संसारको अपने वशमें किये हुए हैं। संसारी प्राणी भगवान्की अहैतुकी कृपासे या उसकी शरणमें जानेसे चाकपर रखे मिट्टीके पिण्डकी भाँति निरन्तर गतिशील है, संसारका परिभ्रमण करता हुआ वह सुख-दुःखका अनुभव कर रहा है। जिस प्रकार कुम्भकार चाकपर रखे मिट्टीके पिण्डको घुमाता है, उसी प्रकार ईश्वर या भगवान् अवतारके रूपमें सारे जगत्को घुमा रहा है। जैसा कि भगवद्गीता (अ० १८ श्लोक ६१)-में कहा गया है कि **'भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।'** मनुष्य तो उस सर्वशक्तिमान्की मात्र कठपुतली है; क्योंकि मनुष्य अल्पज्ञ तथा अल्पशक्तिमान् है। वह भक्ति तथा उपासना आदिके माध्यमसे भगवान्का सान्निध्य तो प्राप्त कर सकता है, उसे भगवान्की पावन सन्निधि तो मिल सकती है किंतु स्वयं भगवान् कभी नहीं बन सकता। उसमें भगवान् बननेकी शक्ति-सामर्थ्य कदापि नहीं आ सकती। जबकि भगवान् अवतारके रूपमें मनुष्य बन सकते हैं। इस धरतीपर जितने भी महापुरुष हुए हैं, वे सब ईश्वरके प्रतिनिधिरूप हैं, अवतारी हैं, कोई साधारण मनुष्य नहीं। इस प्रकार ईश्वर या भगवान्का अवतार लेनेका मुख्य प्रयोजन है—मानव-धर्म-संस्कृतिकी रक्षा, दुष्टोंका दलन और भक्तोंका रञ्जन।

इस धरापर आसुरी शक्तियोंको मिटानेके लिये तथा दिव्य शक्तियोंके संचरणहेतु त्रेतायुगमें भगवान् श्रीरामने और द्वापरयुगमें भगवान् श्रीकृष्णने अवतारके रूपमें ही जन्म लेकर अपनी लीलाओंके माध्यमसे संसारी प्राणियोंका कल्याण किया। वे कोई साधारण मानव नहीं हैं, अपितु भगवान् विष्णुके अवतार हैं। इसलिये वे जन-जनके आराध्य हैं, उपास्य हैं। भगवान् विष्णु नारायण हैं। वे भागवतधर्मके मूल प्रवर्तक हैं।

वैकुण्ठधाममें निवास करनेवाले भगवान् विष्णु भूलोकपर देवकी-वसुदेवके यहाँ श्रीकृष्णके रूपमें तथा राजा दशरथ और कौसल्याके यहाँ श्रीरामके रूपमें शरीर धारण कर जीवनपर्यन्त लीलादिके निमित्त व्यापक लोकमङ्गलके लक्ष्यकी पूर्ति ही करते रहते हैं। भागवतधर्मको लोक-जीवनके अधिक निकट लानेके लिये नारायणने अवतारका आश्रय लिया, ताकि धर्मके यथार्थ स्वरूपको सरलरूपमें जन-जनतक पहुँचाया जा सके। ब्रह्मके निराकार रूपको समझनेमें सामान्य जनता प्रायः असमर्थ रहती है, अतः ब्रह्मके इस निराकार रूपको आकार—रूप देना आवश्यक प्रतीत हुआ।

धर्मशास्त्रोंमें विशेषकर पुराणोंमें अवतारकी विशेष चर्चा हुई है, किंतु इसका मूल वैदिक साहित्यमें प्राप्त होता है। ऋग्वेद (१।१५४।२)-में भगवान् विष्णुके वामनावतारद्वारा तीन पग में सम्पूर्ण सृष्टिके नापनेकी कथा व्यञ्जित है, शतपथब्राह्मणमें मत्स्यावतार (१।८।१।१), कूर्मावतार (७।५।१।५) तथा वामनावतार (१।२।५।१०) और

ऐतरेय ब्राह्मण, छान्दोग्योपनिषद् (३।१७।६) एवं तैत्तिरीय आरण्यक (१०।१।६)-में देवकीपुत्र श्रीकृष्ण या वासुदेव श्रीकृष्णकी कथाओंका उल्लेख भी अवतारके प्रसंगको दर्शाता है। पुराणोंमें भगवान्‌के चौबीस अवतारोंका उल्लेख हुआ है, किंतु उनमें दस अवतार प्रसिद्ध हैं। यथा १-मत्स्यावतार, २-कूर्मावतार, ३-वराहावतार, ४-वामनावतार, ५-नृसिंहावतार, ६-परशुरामावतार, ७-रामावतार, ८-कृष्णावतार, ९-बुद्धावतार तथा १०-कल्कि अवतार। ये समस्त अवतार लीलावतारके नामसे प्रसिद्ध हैं। श्रीमद्भागवतमें सत्त्वावतारकी भी चर्चा हुई है। सत्त्वावतारके रूपमें काल, स्वभाव, कार्य, करण, मन, पञ्चभूत, अहङ्कार, रज-तम-सत्—त्रिगुण, इन्द्रियाँ, स्थावर और जङ्गम जीवोंकी गणना की गयी है।

इस प्रकार सम्पूर्ण चराचर सृष्टि एक प्रकारसे भगवान्‌की ही व्यक्त और अव्यक्त मङ्गलमयी लीलाका एक उदात्त रूप है। इस पृथ्वीपर अंशावतार या कलावतार आदिके रूपमें प्रकट होकर भगवान् अपनी अहैतुकी कृपा करते हुए मानवीय वृत्तियोंको समाजमें संस्थापित करके जगत्‌के समस्त प्राणियोंको यह प्रेरणा प्रदान करते हैं कि जो निःस्पृह होकर भगवान्‌की शरणमें चला जाता है, वह निश्चय ही परम गतिको प्राप्त होता है।

भगवदवतारोंपर आस्था, निष्ठा तथा उनकी शरण ग्रहण करनेवाले भक्त यह अनुभूत करने लगते हैं कि भगवान् सृष्टिके कण-कणमें व्याप्त हैं। सृष्टिमें जो कुछ भी शुभ-अशुभ घटित हो रहा है, उसमें भगवान्‌की ही लीला है। भगवान् पृथ्वीपर अनेक नाम-रूपोंमें अवतरित होकर नाना प्रकारकी लीलाएँ करते रहते हैं, उनके अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग लीला-कृत्य प्राकृत नहीं हैं अपितु दिव्यता एवं अलौकिकतासे संवेष्टित हैं। भक्तकी इस प्रकारकी निश्चयात्मिका बुद्धि उसके कल्याणका मार्ग प्रशस्त कर देती है।

भगवान् स्वयं कहते हैं कि जो मुझ ब्रह्मको अपनेमें तथा सर्वभूत प्राणियोंमें स्थित देखता है, उसके लिये मैं कभी भी न अदृश्य होता हूँ और न वह मुझसे ही कभी अदृश्य होता है।

‘स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम्’

(श्रीश्यामनारायणजी शास्त्री, रामायणी)

अनन्तगुणगणाधिष्ठान, कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ सर्वेश्वर करुणावरुणालय भगवान्‌का विश्रामालय तो साकेतधाम, वैकुण्ठधाम, गोलोकधाम है; किंतु प्रभुकी लीलास्थली रंगमञ्च (नाट्यमञ्च) मृत्युलोक ही है। जब उनको विश्रामालयमें रहते-रहते कभी लीला (नाटक) करनेका विचार होता है तो वे मृत्युलोकरूपी विश्वरंगमञ्चपर ही कच्छप, मत्स्य, वामन, नृसिंह, परशुराम, बुद्ध आदि रूप धारणकर आते हैं और लीलाके उद्देश्यको पूर्ण करते हैं, फिर जब कभी मानवोंको उपदेश करनेके लिये आदर्श स्थापित करने आते हैं तो अपने समस्त परिकरमण्डल ही क्या अन्यान्य देवोंके साथ सृष्टिके कर्ता, धर्ता तथा संहर्तातकको भी साथ लेकर पूरी तैयारी कर-कराके इस विश्वरंगमञ्चकी गरिमाको बढ़ाने एवं अपने अनेक उद्देश्योंकी पूर्ति करनेके लिये फिर नटवरवपु धारण कर नट-नागर बनकर समस्त पात्रोंके साथ विश्वभरको लीला दिखाकर आदर्श स्थापित करते हैं। उस समय विश्वरंगमञ्चकी शोभा अनुपम, मनोरम, आनन्ददायिनी, सर्वलोकमोहनी हो जाती है। इस लीलामें समस्त देव ही क्यों; बिधि, हरि और शम्भु भी शामिल रहते हैं—

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनि हारे॥

(रा०च०मा० २।१२७।१)

श्रीरामावतारमें देवादि वानर तथा श्रीकृष्णावतारमें गोप-ग्वाल-गोपी, गौ, वृक्ष, लता, वीरुध, गुल्म, तृण, अंकुर आदि भी बनकर उस नटनागर प्रभुके मञ्चपर मंचन कर पूरा-पूरा सहयोग देकर फिर प्रभुके साथ ही निज धाम चले जाते हैं—

‘प्रजा सहित रघुबंसमनि किमि गवने निज धाम।’

(रा०च०मा० १।११०)

इस विश्वरंगमञ्चपर प्रभु स्वयं सूत्रधार बनते हैं, मंचन करनेवाले जीवोंको अभिनेता बनाते हैं और मायाको नटी—नाचने या नचानेवाली पात्र बनाते हैं। चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण ही इस नाट्यशालाके अनेक द्वार हैं, चौदह भुवन ही रंगभूमि है, इसमें सूर्य, चन्द्र-जैसी परम प्रकाशक

ज्योतियाँ तथा मोहभ्रमकी यवनिका (परदा) है। प्रभु स्वयं सूत्रधार—निर्देशक बनकर जिसे जैसा आदेश देते हैं, वैसा ही उसे करना पड़ता है।

किंतु क्या यह नाटकमात्र ही नाट्य-उद्देश्य होता है? नहीं-नहीं, इस नाटकका मुख्य उद्देश्य निम्न है—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

(गीता ४।८)

अर्थात् अवतरणसे साधुपरित्राण, दुष्टविनाश, वैदिक धर्मस्थापन—इन तीनों कार्योंकी तो प्रमुखता है ही, इसके साथ ही मर्त्यशिक्षण तथा मानवादर्श-स्थापन भी है—

'मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभो।'

(श्रीमद्भा० ५।१९।५)

वैसे सर्वोपाधिविनिर्मुक्त परमात्मा, जिनके भ्रूविक्षेपमात्रमें जगत्की सृष्टि, पालन, लय संनिविष्ट है, अपने समस्त उपर्युक्त कार्य अपने संकल्पमात्रसे भी कर सकते हैं तथापि इतने नाटकका मूल उद्देश्य है—

भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जग जाल॥

इसी कारण कहा गया—

'स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम्॥'

(रामरक्षास्तोत्र ३)

अपनी लीला (नाटक)-से प्रभु जगत्की रक्षाके लिये अज एवं समर्थ होते हुए भी धनुष-बाण लेकर अवतरित होते हैं। कभी धनुष-बाण, कभी शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म और कभी वंशी लेकर अवतरित होनेका मूल उद्देश्य इस प्रकार है—

'बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।'

(रा०च०मा० १।१९२)

क्योंकि उस संसारके परम व्यवस्थापककी सुव्यवस्था इन्हीं चारों (विप्र, धेनु, सुर तथा संत)-से पूर्ण रूपमें आश्रित होकर चलती है। इन्हीं चारोंके भरोसे वे निश्चिन्त रहते हैं, किंतु जब इन चारोंकी व्यवस्था बिगड़ने लगती है तो प्रभुको स्वयं इसे सुव्यवस्थित करनेके लिये अवतार लेना पड़ता है। यहाँ इसपर संक्षेपमें विचार प्रस्तुत है—

१-विप्र—ब्राह्मणकी उत्पत्ति प्रभुके मुखसे है—**'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्।'** जैसे केवल मुखको भोजन देनेसे सभी अङ्गोंकी संतुष्टि तथा सम्पुष्टि हो जाती है, वैसे ही—

स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च।
तस्यैवानुग्रहेणान्नं भुञ्जते क्षत्रियादयः॥

(श्रीमद्भा० ४।२२।४६)

महाराज पृथुने सनत्कुमारजीसे कहा कि ब्राह्मण स्वयं भोजन करता तथा क्षत्रियादिक सभीको अपने अनुग्रहसे खिलाता एवं देता है। परशुरामजीने तो मिथ्याभिमानी क्षत्रियोंकी उद्दण्डताको नष्ट करके सारा राज्य ब्राह्मणोंको ही दे दिया था। इसी प्रकार श्रीरामने यज्ञ करके सर्वस्व दान विप्रोंको दिया। विप्रोंने सब लेकर वापस क्षत्रियोंको ही राज्य-रक्षत्व-भावसे दे दिया। भगवान् वामनने बलिसे विप्र बनकर सर्वस्व लेकर फिर देवोंको दे दिया, स्वयं बलिके द्वारपाल बनकर अबतकका विप्र-सर्वस्व-दानका आदर्श स्थापित किया।

वसिष्ठ, शतानन्द, विश्वामित्र, धौम्य, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, चाणक्य आदि विप्रोंके हाथों एवं आज्ञापालक बनकर शासन क्षत्रियोंके ही द्वारा चलता रहा।

२-धेनु—एक ही कुलके दो भेद हैं—गौ और ब्राह्मण। ब्राह्मणमें यज्ञके सभी वेदमन्त्र हैं। गौमें यज्ञका सम्पूर्ण हविर्द्रव्य है। यज्ञसे ही सम्पूर्ण संसारका पालन-पोषण होता है। गौसे गोमय, गोमूत्र, गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत—पञ्चगव्य तथा पञ्चामृतकी सामग्री प्राप्त होती है।

३-सुर—देवोंके द्वारा ही हमारा शरीर सुरक्षित है, समस्त इन्द्रियद्वारोंपर देवगणोंका अधिष्ठान है—***'तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना।'*** (रा०च०मा० ७।११८।११) साथ ही वे हमारे सर्वार्थसाधक हैं।

४-संत—संतोंका यज्ञ-यागादिक विप्र, धेनु, सुरके द्वारा ही सम्पन्न होता है एवं इन्हींकी उपासना इनके जीवनका सार है। संत देवोपासक होते हैं।

इस प्रकार परमात्माके संसारकी सुव्यवस्थाके आधार विप्र, धेनु, सुर तथा संत हैं। इन चारोंपर जब संकट आ पड़ता है, तब भगवान्का अवतार किसी लीलाके माध्यमसे होता है। **'अजायमानो बहुधा वि जायते'** (यजु० ३१।१९) का मूलाधार है—

'स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम्॥'

अवतार

[कहानी]

(श्री 'चक्र')

'संसारके प्राणी अत्यन्त दुःखी हैं दयाधाम!' देवर्षि नारद गोलोकेश्वरका सत्कार स्वीकार करके आसनपर आसीन हो गये थे और कुशल-प्रश्नका अवकाश दिये बिना ही उन्होंने स्वतः प्रार्थना प्रारम्भ कर दी—'आपकी अहैतुकी कृपाके अतिरिक्त उनका और कोई आश्रय नहीं है।'

'मैं कृपा-कृपण नहीं हुआ हूँ देवर्षि!' तनिक मुस्कराये मयूरमुकुटी। 'जीवोंके परम कल्याणके लिये श्रुतिकी शाश्वत वाणी मैंने पूर्वसे उन्हें प्रदान की। सृष्टिके प्रारम्भमें ही मैं स्रष्टाको वेद-ज्ञान दे देता हूँ, जिससे जीवोंको अज्ञानके अन्धकारमें भटकना न पड़े।'

'वे अब भी भटक रहे हैं।' कृपाकी अतिशयताके कारण नारदजीके नेत्र टपकने लगे—'जप-तप, योग-यज्ञ आदिमें प्रथम तो उनकी प्रवृत्ति नहीं होती और कदाचित् हो भी गयी तो आपकी लोकविमोहिनी मायाके प्रलोभन कहाँ कम हैं। भोग, यश, स्वर्ग और कुछ न हो तो अहंकार—इन पाशोंसे परित्राण कैसे पायें वे दुर्बल?'

'अन्ततः आप चाहते क्या हैं?' सीधा प्रश्न किया गया। श्रीनारदजीका क्या ठिकाना कि कब उठ खड़े हों। उनको कहीं स्थिर बैठना आता नहीं। उनकी खड़ाऊँ हिलने लगी है। दूसरे, ये लम्बी चुटियावाले वीणाधारी विचित्र स्वभावके हैं। इधरकी उधर लगानेमें, पहेली बुझानेमें इन्हें आनन्द आता है। क्या पता कब कह दें कि आगेकी बात अपने-आप समझो। अभी सानुकूल हैं। अतएव अभी सीधे ही पूछ लेना अधिक उपयुक्त था।

'मेरे चाहनेका कोई महत्त्व नहीं।' देवर्षिने उलाहना नहीं दिया। वे प्रार्थनाके स्वरमें ही बोल रहे थे—'आप सर्वज्ञ हैं; किंतु जीव इसे समझ नहीं पाते। उनके मध्य आप पधारो और स्वयं अपने व्यक्त दृगोंसे उन्हें देखो। वे आपके परम मङ्गलायतन स्वरूपका दर्शन करें। आपके व्यक्त सगुण-साकार श्रीविग्रहके रुचिर क्रीडा-विहारोंका आधार मिले उनके चञ्चल चित्तको। तब कहीं माया भगवती भी कुछ संकुचित होंगी, कुछ कृपा करना आवेगा उन्हें।'

पीताम्बरधारीने तनिक देखा निकुञ्जेश्वरीकी ओर। तात्पर्य स्पष्ट था—'इनकी छाया-शक्ति ही माया है। आप इनसे क्यों नहीं कहते?'

'ये नित्य प्रेमस्वरूपा—इन्हें तो स्नेह ही देना आता है!' देवर्षिने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया—'आपकी क्रीडा-प्रियतामें बाधा न पड़ती; इन्होंने कहाँ कब उपेक्षा सीखी है किसीकी। इनके स्मरणसे मायाका अन्धकार तिरोहित होता है; किंतु जीवोंका अभाग्य—वे स्मरण ही कहाँ कर पाते हैं। उनके लिये स्मरणका स्पष्ट, व्यक्त, सुरम्य, आधार प्रदान करने आप स्वयं धरापर पधारें देव!'

'आपकी इच्छा पूर्ण हो!' देवर्षिने वीणा तब उठायी, जब सर्वेश्वरके श्रीमुखसे यह सुन लिया।

× × ×

'मैं बार-बार धरापर गया और मैंने जीवोंके कल्याणके साधन उन्हें प्रदान किये।' युगोंके पश्चात् देवर्षि फिर गोलोक पधारे थे और इस बार श्यामसुन्दर स्वतः बता रहे थे—'मानव कर्ममें नित्य स्वतन्त्र है और वह उन्हीं कर्मोंको प्रिय मानता है, जो उसके बन्धनको और दृढ़ करते हैं। वह अपने क्लेशको बढ़ानेमें लगा है। मेरी ओर देखनेका तो जैसे उसके पास समय ही नहीं।'

'आपने महामत्स्यरूप धारण किया और मानवके एक आदिपुरुषको स्वतः श्रीमुखसे धर्मका उपदेश किया!' देवर्षिकी वाणीमें इस बार व्यंग था—'मानवका अभाग्य कि वह उस धर्मकी ओर ध्यान नहीं देता और ध्यान नहीं देता प्रलयाब्धिविहारी महामत्स्यकी ओर।'

'देवर्षि! मैं मत्स्यावतार, वाराहावतार या वामन अथवा नृसिंहावतारकी चर्चा नहीं कर रहा हूँ।' श्रीकृष्णचन्द्र खुलकर हँसे—'ये अवतार मनुष्योंके मध्य नहीं हुए और मानव इनमें आकर्षण न पाये तो उसे दोष देनेका कारण नहीं है।'

'मनुष्यके कल्याणके लिये आप गृहत्यागी बने और नर-नारायणरूपसे आपने दीर्घकालीन तपस्या की। कपिलरूपमें आपने तत्त्वका प्रसंख्यान किया और तपका आदर्श स्वतः उपस्थित किया।' देवर्षिका स्वर परिवर्तित नहीं हुआ—'कूर्म, यज्ञ, हयशीर्ष, मोहिनी अवतारकी चर्चा आप करेंगे

नहीं; क्योंकि वे भी मनुष्योंके मध्य नहीं हुए। यही अवस्था हंस, धन्वन्तरि-जैसे अवतारोंकी है और प्रभु! ऋषभरूपसे भी वही तपका आदर्श दिया आपने। मानव तप कर नहीं पाता। थोड़ेसे ऋषियोंके वशका है तप। जहाँ वह अपनेको समर्थ नहीं पाता, वहाँसे उदासीन तो होगा ही।'

'आप अपनेको और अपने अग्रज सनकादि कुमारोंको गणनामें लेनेवाले नहीं हैं। परशुरामका अवतार साधन प्रदान करनेके लिये हुआ नहीं। आगे भी बुद्ध तथा कल्कि-अवतार प्रयोजनविशेषसे होने हैं तथा गजेन्द्रके उद्धार या ध्रुवके लिये अवतारकी बात भी मैं नहीं करता।' इस बार श्रीभगवान्‌का स्वर गम्भीर हो गया—'आप चाहें तो कह सकते हैं कि पृथुके रूपमें भी मैं सत्ययुगमें धरापर गया और यज्ञका ही विशेषरूपसे मैंने प्रतिपादन किया; किंतु मैंने त्रेतामें मानवको सम्यक् आदर्श देनेमें कहाँ त्रुटि की देवर्षि? मैंने सम्पूर्ण मानव-चरितको क्या उचितरूपमें अयोध्यामें उपस्थित नहीं किया?'

'मन्दप्रज्ञ ही मर्यादापुरुषोत्तमके मङ्गल चरितमें त्रुटि देखते हैं!' देवर्षिके स्वर श्रद्धाभरित हुए—'आप अनन्त कृपा-पयोधि हैं, इसीलिये तो यह जन इन श्रीचरणोंमें पुनः जीवोंपर कृपा-याचना करने उपस्थित हुआ है।'

'तब आप चाहते हैं····।' श्यामसुन्दरकी बात पूरी नहीं हुई। देवर्षिने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया।

'कलि-कलुष मानवको मर्यादामें रहने नहीं देता देव! आपके भुवन-पावन चरित उसे निर्मल करते हैं और आपका वह पावन 'राम' नाम निखिल पाप-तापका विनाशक है। आपने मानवके समस्त वर्गोंके लिये सम्पूर्ण वैदिक ज्ञान एवं साधन-प्रणाली अपने कृष्ण-द्वैपायनरूपसे सुगम कर दी है; किंतु····।' दो क्षण रुककर पुनः बोले देवर्षि—'यदि आप अपने इस त्रिभुवनमोहनरूपसे पधारते! यदि अपने इन दिव्य चरितोंको प्रकाशित करते धरापर, जो श्रवणमात्रसे चित्तको अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं।'

'प्रेम मानवको श्रीचरणोंकी ओर अधिक आकर्षित करता है मर्यादाकी अपेक्षा और भक्तिदेवीपर आपका सर्वाधिक अनुग्रह भी है।' देवर्षिने इस बार श्रीनिकुञ्जेश्वरीके पाद-पंकजोंकी ओर मस्तक झुकाया—'महाभावका आलोक यदि एक बार धराको धन्य कर जाता।'

'इसका अर्थ है कि अंश और कलाका अवतरण देवर्षिको संतुष्ट नहीं कर सका है। आदर्शकी मर्यादासे भी ये नित्य अवधूत कुछ अधिक चाहते हैं; किंतु महाभाव····' मयूरमुकुट उन महाभावकी नित्यमूर्ति अपनी अभिन्न सहचरीकी ओर झुका—'वह तो अन्यत्र व्यक्त नहीं होता। उसका आलोक धरापर यदि व्यक्त होता है, तो वह दूसरेमें व्यक्त हो, यह कैसे हो सकता है? आप धरापर पधारेंगी?'

'अस्वीकृति मैंने कभी सुनी नहीं।' देवर्षि बीचमें ही बोले—'अनन्त स्नेह, अनन्त कृपा और अनन्त वात्सल्य जहाँसे शिशु पाता है, वहाँ उसकी याचना पूर्ण-स्वीकृत ही रहती है।'

'एवमस्तु' सुननेकी भी अपेक्षा देवर्षिने नहीं की। वे वीणा करोंमें उठा चुके थे और उठ चुके थे आसनसे। उनकी अँगुलियाँ वीणाके तारोंसे उल्लासपूर्ण झंकृति गुंजित करने लगी थीं। भला कहीं किसीकी आकाङ्क्षा इन चारु चरणोंतक पहुँचकर भी कभी अपूर्ण रही है?

'माई री! अचरज की यह बात'

(पं० श्रीकृष्णगोपालाचार्यजी)

माई री! अचरजकी यह बात।
निर्गुण ब्रह्म सगुन ह्वै आयौ, बृजमें ताहि नचात॥ १॥
पूरन ब्रह्म अखिल भुवनेश्वर, गति जाकी अज्ञात।
ते बृज गोप-ग्वाल संग खेलत, बन-बन धेनु चरात॥ २॥
जाकूँ बेद नेति कहि गावैं, भेद न जान्यौ जात।
सो बृज गोप-बधुन्ह गृह नित ही, चोरी कर दधि खात॥ ३॥
शिव-ब्रह्मादि, देव, मुनि, नारद, जाकौ ध्यान लगात।
ताकूँ बाँधि जसोदा मैया, लै कर छरी डरात॥ ४॥
जाकी भृकुटि-बिलास सृष्टि-लय, होवै तिहुँ पुर त्रास।
'कृष्णगुपाल' ग्वाल डरपावत, हाऊ तें भय खात॥ ५॥

भारतीय सिक्कोंपर अवतार

(डॉ० मेजर श्रीमहेशकुमारजी गुप्ता)

भारतीय सिक्कोंका प्रचलन करीब ६०० ईसापूर्वसे शुरू हुआ और तभीसे भारतीय सिक्कोंपर अवतारों और पंचदेवोंका अंकन शुरू हो गया। सिन्धुघाटीकी खुदाईमें मिली मुद्राओंपर आदिदेव शिवका अंकन मिलता है। सर्वप्रथम सूर्यको पंचमार्क सिक्केपर स्थान मिला। विदेशी शासकों—यूनानी, कुषाणसे लेकर मुहम्मद गोरीतकने हिन्दू देवी-देवताओंको अपने भारतीय सिक्कोंपर स्थान दिया और भारतीय सिक्कोंपर मुख्यत: शिव, लक्ष्मी, लक्ष्मीनारायण, शिव-पार्वती, विष्णु, वराह, राम-लक्ष्मण-सीता, कार्तिकेय, व्यंकटेश्वर, बालकृष्ण एवं गणेशको अंकित किया। लक्ष्मीको कई शासकोंने अपने सिक्कोंपर अंकित किया। मुद्राको लक्ष्मीका ही रूप माना जाता है, शायद इसलिये भारतीय मुद्राओंपर लक्ष्मीको राजा और प्रजा दोनोंने स्वीकार किया। लक्ष्मीके दो रूप—१-बैठी लक्ष्मी, २-गजद्वारा अभिषेक कराती लक्ष्मी—दोनोंका अंकन मिलता है। किन अवतारोंको किन सिक्कों या किन राजाओंने अपनाया, यह निम्न तालिकामें दर्शाया गया है—

सूर्य—पंचमार्क, इन्दौर रियासत, **शिव**—कुषाण, शशांक, अहिल्याबाई इन्दौर रियासत, **शिव-पार्वती**—विजयनगर, हैदरअली, **लक्ष्मी**—अयोध्या, मथुरा, एजलीज, सातवाहन, उज्जयिनी, गुप्तकाल, परमार, चोलवंश, मुहम्मद गोरी।

लक्ष्मी-नारायण—विजयनगर, **बालकृष्ण**—विजयनगर, **वराह**—गुर्जर प्रतिहार, **कार्तिकेय**—यौधेय, गुप्तकाल, **बुद्ध**—कुषाण, **गणपति**—नायक, **राम-लक्ष्मण-सीता**—विजयनगर, मुगलशासक अकबर।

आज सिक्कोंपर पूज्य संतोंका अंकन भी देखनेको मिलता है, जिनमें प्रमुख हैं—संत तुकाराम, ज्ञानेश्वर, तिरुवल्लुवर, श्रीअरविन्द आदि।

१-पंचमार्क (६०० ई०पूर्व)—धातु—चाँदी, वजन ३.३ ग्राम, साइज १.८ से०मी०, गोल। अग्रभागमें पाँच चिह्न हैं—सूर्य, नन्दी, मछली, पहाड़ी, हिरण तथा पृष्ठभागमें कोई चिह्न नहीं है।

२-कुषाण—(वासुदेव १४०—८० ई०) धातु—सोना, वजन ८.० ग्राम, साइज २.३ से०मी०, गोल। अग्रभागमें नन्दीके सामने खड़े शिव हैं तथा पृष्ठभागमें खड़ा हुआ राजा तथा खरोष्ठीमें लेख है।

३-कुषाण—(वासुदेव १४०—८० ई०) धातु—सोना, वजन ८.० ग्राम, साइज २.१ से०मी०, गोल। अग्रभागमें नन्दीके सामने खड़े शिव हैं और पृष्ठभागमें खड़ा हुआ राजा तथा खरोष्ठीमें लेख है।

४-कुषाण—(कनिष्क ७८—१०२ ई०) धातु—सोना, वजन ८.० ग्राम, साइज २.१ से०मी०, गोल। अग्रभागमें खड़े हुए बुद्ध हैं तथा बाँयीं ओर बुद्ध लिखा है। पृष्ठभागमें खड़ा हुआ राजा और खरोष्ठीमें लेख है।

५-यौधेय—(३०० ई०) धातु—ताँबा, वजन १२.० ग्राम, साइज २.५ से०मी०, गोल। अग्रभागमें दायें हाथमें भाला लिये कार्तिकेय, बगलमें मोर और ब्राह्मीमें लेख है तथा पृष्ठभागपर खड़ी हुई देवी हैं।

६-उज्जयिनी—(२०० ई०पू०) धातु—ताँबा, वजन ५.४ ग्राम, साइज १.८×१.७ से०मी० गोल। अग्रभागमें कमलके फूलपर शिव, साथमें नन्दी, वृक्ष एवं नदी हैं। पृष्ठभागपर उज्जयिनीका चिह्न है।

७-गुप्तकाल—(चन्द्रगुप्त द्वितीय ३७६—४१४ ई०) धातु—सोना, वजन ७.० ग्राम, साइज १.८ से०मी०, गोल। अग्रभागपर कमलके फूलपर बैठी लक्ष्मी हैं तथा पृष्ठभागपर धनुर्धारी खड़ा राजा और ब्राह्मीमें चन्द्र लिखा है।

८-गौड राजा शशांक—(६००—६२५ ई०) धातु—चाँदी, वजन ७.० ग्राम, साइज १.८ से०मी०, गोल। अग्रभागपर नन्दीपर बैठे शिव तथा पृष्ठभागपर कमलपर बैठी लक्ष्मी हैं, जिनका गज अभिषेक कर रहे हैं।

९-गुर्जर प्रतिहार राजा भोज—(८६३—८८२ ई०) धातु—चाँदी, वजन ४.२ ग्राम, साइज १.७ से०मी०, गोल। अग्रभागपर वराहावतार उत्कीर्ण है और पृष्ठभागपर श्रीमद्वराह अंकित है।

१०-परमार (नरवरमन)—धातु—सोना, वजन ४.०

अग्रभाग	पृष्ठभाग	अग्रभाग	पृष्ठभाग	अग्रभाग	पृष्ठभाग

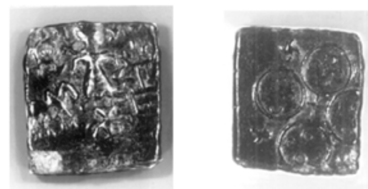

१


२


३


४


५


६


७


८


९


१०


११


१२


१३


१४


१५


१६


१७


१८

ग्राम, साइज २.० से०मी०, गोल। अग्रभागपर बैठी हुई लक्ष्मी हैं और पृष्ठभागपर राजाका नाम वर्मन लिखा है।

११-विजयनगर—(हरिहर १४०६ ई०)— धातु—सोना, वजन १.७ ग्राम, साइज १.० से०मी०, गोल। अग्रभागपर बैठे हुए लक्ष्मी-नारायण। पृष्ठभागपर श्रीप्रताप हरिहर हैं।

१२-विजयनगर—(हरिहर १४०६ ई०) धातु—सोना, वजन १.७ ग्राम, साइज १.१ से०मी०, गोल। अग्रभागपर बैठे हुए शिव-पार्वती हैं और पृष्ठभागपर श्रीप्रताप हरिहर हैं।

१३-विजयनगर—(१४५० ई०) धातु—सोना, वजन ३.४ ग्राम, साइज १.२ से०मी०, गोल। अग्रभागपर बैठे हुए सीता-राम और खड़े हुए लक्ष्मण हैं। पृष्ठभागपर देवनागरीमें लेख है।

१४-विजयनगर—(हरिहर) धातु—सोना, वजन १.६ ग्राम, साइज १.१ से०मी०, गोल। अग्रभागपर वैंकटराय (विष्णु) हैं और पृष्ठभागपर लेख है।

१५-विजयनगर—(कृष्णदेव राय १५००—१५२९ ई०) धातु—सोना, वजन १.७ ग्राम, साइज १.१ से०मी०, गोल। अग्रभागपर वैंकटराय (विष्णु) और पृष्ठभागपर लेख है।

१६-विजयनगर—(कृष्णदेव राय १५००—१५२९ ई०) धातु—सोना, वजन ३.३ ग्राम, साइज १.३ से०मी०, गोल। अग्रभागपर बैठे हुए बालकृष्ण हैं तथा पृष्ठभागपर श्रीप्रताप कृष्णराय हैं।

१७-अहिल्याबाई होलकर—(इन्दौर रियासत १७६५—१७९५ ई०) धातु—चाँदी, वजन ११.४ ग्राम, साइज २.१ से०मी०, गोल। अग्रभागपर शिवलिंग, बेलपत्र है तथा पृष्ठभागपर १२७१ हिजरी, शाह आलम बादशाह लिखा है।

१८-इन्दौर रियासत—(शिवाजीराव होलकर १८८६—१९०३ ई०) धातु—चाँदी, वजन ११.३ ग्राम, साइज २.० से०मी०, गोल। अग्रभागपर सूर्य हैं और हिन्दीमें श्रीमहाराज शिवाजीराव होलकर लिखा है। पृष्ठभागपर उर्दूमें शाह आलम, इन्दूर लिखा है।

[डॉ० श्रीमती श्यामला गुप्ताके निजी-संग्रहसे।]

भगवान् विष्णुके रामावतार एवं कृष्णावतारका वैशिष्ट्य

(श्रीशरदजी अग्रवाल, एम्०ए०)

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥

(श्रीमद्भा० १।३।२६)

अर्थात् जैसे अगाध सरोवरसे सहस्रों नहरें निकलती हैं, वैसे ही सत्त्वगुणके भण्डार भगवान् श्रीहरिके असंख्य अवतार हुआ करते हैं।

भगवान् विष्णुके अवतारोंकी गणना करनेमें कौन समर्थ हो सकता है, फिर उनकी महिमाकी कौन कहे, उसे या तो स्वयं भगवान् जानते हैं अथवा वह, जिसे वे स्वरूप बनाकर जना देते हैं। फिर भी उनके असंख्य अवतारोंमेंसे चौबीस अवतार विशेष मान्य हैं तथा उनमें भी दस अवतारोंकी प्रसिद्धि सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। सर्वमान्य दशावतार इस प्रकार हैं—१-मत्स्य, २-कूर्म, ३-वराह, ४-नृसिंह, ५-वामन, ६-परशुराम, ७-राम, ८-कृष्ण, ९-बुद्ध एवं १०-कल्कि।

भगवान् विष्णुके दशावतारोंमें भी श्रीरामावतार तथा श्रीकृष्णावतारकी महिमा अवर्णनीय है। जहाँ अन्य कई अवतारोंकी उपासना-परम्परा कालके प्रवाहमें हरिकी इच्छानुसार या तो शिथिल पड़ गयी अथवा लुप्तप्राय-सी प्रतीत होती है, वहीं श्रीराम एवं श्रीकृष्ण-अवतारोंकी भक्ति और उपासनाकी परम्परा अविच्छिन्न रूपसे आज भी विद्यमान है; विद्यमान ही नहीं बल्कि सजीव, पुष्ट एवं गतिशील भी है। प्राचीन कालसे अर्वाचीन कालतक भगवान् विष्णुके उक्त दोनों अवतारोंकी महिमाका प्रतिपादन एवं मण्डन करनेवाले अनेक ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। उनकी प्रतिमाएँ तथा मन्दिर आदि भूगर्भसे प्राप्त होकर ही हमें परम्पराकी प्राचीनताकी साक्षीमात्र नहीं देते, बल्कि आज भी प्रत्येक प्रान्तके प्रत्येक नगर, कस्बे तथा गाँव-गाँवमें युगों-युगोंसे

सहस्रों मन्दिर एवं अर्चाविग्रह विद्यमान हैं, जिनके पूजन तथा भक्तिकी परम्परा आज भी सोत्साह फल-फूल रही है।

भगवान्ने अपने राम तथा कृष्ण-अवतारोंके रूपमें इस धराधामपर दिव्य रसानुभूतिका आस्वादन करानेवाली अद्भुत लीलाएँ करके भक्तिका जो अजस्र स्रोत बहाया, वह अनन्तकालतक भक्तोंको अभय-आश्वासनसहित दिव्य प्रेमयुक्त परमानन्दकी अनुभूति कराता रहेगा।

भगवान्के अन्यान्य मुख्य अवतार किसी एक उद्देश्यविशेषकी पूर्तिहेतु ही हुए, यथा—मत्स्यावतार, कूर्मावतार, वराहावतार, नृसिंहावतार, वामनावतार इत्यादि। उक्त अवतारोंके प्राकट्यके प्रधानहेतुके अतिरिक्त अन्य कृत्योंका उल्लेख प्राय: नहीं मिलता अथवा कुछ गौण प्रसंग ही मिलते हैं। अनेक अवतार तो अल्प अवधिके लिये ही हुए तथा प्रयोजन सिद्ध करके अदृश्य हो गये। उनमें भी अधिकांश अवतारोंमें भगवान्की मात्र ९ कलाओं तथा कहीं अधिक-से-अधिक ११ कलाओंकी ही अभिव्यक्ति हुई अर्थात् अन्य अवतारोंमें कार्यविशेषहेतु भगवान् आवश्यकतानुसार सीमित कलाओंसे युक्त होकर अवतरित हुए फिर कार्यसिद्ध करके अल्पकालमें ही उन्होंने अपने रूपका संवरण कर लिया, अत: उनका शृंखलाबद्ध विस्तृत लीलाचरित्र नहीं मिलता।

इस दृष्टिसे भगवान्के 'राम' तथा 'कृष्ण' अवतार उपर्युक्त सभी कसौटियोंपर बहुत बढ़े-चढ़े थे। उन्होंने न केवल विस्तृत लीलामय दिव्य-जीवन ही जिया, अपितु अनेकानेक प्रयोजनोंको भी जीवनपर्यन्त क्रमश: सिद्ध किया अर्थात् उन्होंने एक ही नहीं बल्कि अनेक लक्ष्योंकी पूर्तिहेतु अवतार लिया था। यथा—

(१) उन्होंने ऐसी-ऐसी दिव्य लीलाएँ कीं, जिनके श्रवण तथा स्मरणमात्रसे प्रेम तथा भक्तिका हृदयमें संचार होने लगता है।

(२) उन्होंने अपनी अन्तरंग लीलामें ऐसे गूढ़ एवं सर्वकल्याणप्रद ज्ञानको अपने वचनामृतके रूपमें संसारमें प्रकट किया, जो सम्पूर्ण मानव-जातिके लिये चिरस्थाई वरदान बन गया।

(३) उन्होंने अपने दिव्य आचरणोंसे सत्य, वीरता, ओजस्विता, ज्ञान, त्याग, तितिक्षा, वैराग्य, मर्यादा तथा अनासक्तिके जिन शिखरोंको छूकर दिखाया, वह सदैव-सदैवके लिये हमारे आदर्शके शिखर बन गये तथा वे सभीको वैसा बननेको प्रेरित करते हैं।

(४) उन्होंने तत्कालीन सभी दुष्ट एवं आसुरी शक्तियोंका समूल उच्छेद कर शान्तिका साम्राज्य स्थापित किया तथा संसारको धर्म-स्थापनाहेतु अन्यायसे संघर्ष करनेकी प्रेरणा दी।

सम्पूर्ण रामकथा तथा कृष्णकथासे कौन परिचित नहीं है, इसीलिये ऊपर संकेतरूपमें वे सभी विशेषताएँ बतायी गयीं, जो भगवान् विष्णुके मात्र रामावतार तथा कृष्णावतारमें ही पूर्णरीत्या दृष्टिगोचर होती हैं, अत: 'राम' तथा 'कृष्ण'-अवतार भगवान्के सभी अवतारोंमें परम विशिष्ट हैं, साथ ही दोनों अवतारोंकी लीलाएँ तथा चरित्र हमें भक्तियोग तथा निष्कामकर्मयोगके पथपर साथ-साथ आगे बढ़नेकी प्रेरणा एवं शक्ति प्रदान करते हैं।

उपर्युक्त समस्त विवेचनका यह आशय कदापि नहीं समझना चाहिये कि अवतारोंमें भेद-बुद्धिका प्रतिपादन किया जा रहा है। वस्तुत: तो सभी अवतारोंके रूपमें स्वयं भगवान् विष्णु ही सदैव भिन्न-भिन्न कलेवरोंमें अवतीर्ण हुए, उनमें न कोई छोटा है न कोई बड़ा। सच्चे भक्तोंमें तो भेद-बुद्धिका लेशमात्र भी आवेश नहीं होता। महान् कृष्ण भक्त श्रीचैतन्य महाप्रभुको भक्तिभावकी अवस्थामें भगवान् नृसिंह तथा भगवान् वराहका आवेश समय-समयपर हुआ था, जिसे उनके अन्तरंग भक्तोंने दिव्य लक्षणोंसहित प्रत्यक्ष देखा था। यहाँ तो मात्र रामावतार तथा कृष्णावतारके विस्तृत लीलामय-जीवन तथा उनकी सर्वाधिक लोकप्रियताके कारणोंका ही विवेचन किया गया है, जो उनके वैशिष्ट्यको प्रदर्शित करते हैं।

भगवान् विष्णुके रामावतार एवं कृष्णावतार दोनों ही परम विलक्षणताओंसे युक्त एवं सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। दोनों ही अवतारोंमें बहुत-सी समानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं, जिनके आधारपर उनकी विशिष्टताका प्रतिपादन किया गया है। दोनों अवतारोंके देश-काल-परिस्थिति इत्यादि भिन्न होनेके कारण उनकी अनेक लीलाओंमें भी बाह्यत: भिन्नता दृष्टिगोचर होना स्वाभाविक है, परंतु उन दोनोंमें भी कोई छोटा बड़ा नहीं है, अज्ञान के कारण अथवा भ्रमवश ही व्यक्तिकी कनिष्ठ-वरिष्ठ जैसी धारणा बन जाती है। वस्तुत: तो भगवान् विष्णु ही अपनी संसाररूपी नाट्यशालामें दो

अलग-अलग नाटकोंमें नायक बनकर कभी राम, कभी कृष्णके रूपमें प्रकट हुए, उन्होंने स्वयं ही लीला अथवा नाट्यकी पटकथा लिखी, स्वयं ही अभिनेता बने तथा सूत्रधार भी स्वयं वे ही थे।

भगवान्‌ने यह अवतरण, यह लीला-विस्तार अथवा कहें कि नाट्य क्यों किया? इसके कारणोंकी ऋषियों, भक्तों तथा विद्वानोंने अपने-अपने ढंगसे व्याख्या की है। जिन भगवान्‌के भृकुटि-विलाससे ही सृष्टिकी रचना और संहार हो जाते हैं, उन्होंने अवतार क्यों लिये? क्या यह मात्र उनका मनोरंजन है अथवा कुछ और यह तो वे ही ठीक-ठीक जानते हैं। अस्तु

भगवान्‌के अवतारोंकी तुलना मनोरञ्जक बुद्धि-विलास ही सही, पर उसमें दोष नहीं, हाँ भेद-बुद्धि नहीं होनी चाहिये। भगवान्‌की लीलाओं तथा गुणोंका स्मरण तो किसी भी रूपमें सदैव कल्याणकारी है, यह अकाट्य सत्य है।

भगवान् रामने अपने जीवनमें मर्यादाओंका कभी उल्लंघन नहीं किया। घोर दुःखमें भी विचलित हुए बिना मर्यादाओंके लिये वे सर्वस्व त्याग करनेको प्रस्तुत हो गये। उन्होंने मर्यादा-पालनका अद्वितीय आदर्श प्रस्तुत किया। चाहे पुत्रके नातेसे, चाहे भाईके नातेसे, चाहे पतिके नातेसे, चाहे स्वामीके नातेसे, चाहे राजाके नातेसे, चाहे हम किसी भी नातेसे विचारें, उन्होंने अपनी मर्यादाका सदैव पालन किया। इसीलिये वे जन-जनके हृदयमें सदैवके लिये मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके रूपमें बस गये। भगवान् रामके चरित्रमें हमें दो मर्यादाओंके साथ-साथ पालन करनेके धर्मसंकटकी स्थितिमें क्या करना चाहिये इसका इतिहासदुर्लभ उदाहरण भी मिलता है, जहाँ उन्होंने अद्वितीय त्याग किया। समाजके हितको ही प्रधानता दी तथा व्यक्तिगत क्षति और लाँछन दोनों सह लिये। मर्यादापुरुषोत्तम होनेके कारण उनकी सभी लीलाएँ अनुकरणीय हैं, जो जितना ही अधिक अनुकरणका प्रयास करेगा, वह उतना ही महान् बनता जायगा। दूसरी ओर भगवान् कृष्णने अनासक्त भावसे अपने जीवनमें सभी प्रकारके रसोंसे युक्त ऐसी दिव्य लीलाएँ कीं, जिनके स्मरणमात्रसे ही प्रेमका सहज संचार होने लगता है चाहे वात्सल्य, सख्य आदि किसी भी भावमें रुचि हो हृदय शीघ्र पुलकित हो उठता है। उन्होंने प्रेमका अद्वितीय उच्चादर्श उपस्थित किया। मधुर प्रेमसे ओतप्रोत विलक्षण लीलाओंके कारण वे जन-जनके हृदयमें सदैवके लिये लीलापुरुषोत्तमके रूपमें बस गये। भगवान् कृष्णकी शृंगारिक लीलाएँ पवित्र हैं, उनमें सांसारिक नहीं, बल्कि दिव्य प्रेमकी अभिव्यक्ति है। दिव्य प्रेममयी वह लीला भक्तिको बढ़ानेवाली होनेके कारण परम स्मरणीय एवं चिन्तनीय है।

भगवान् राम विष्णुकी बारह कलाओंके तथा भगवान् कृष्ण सोलह कलाओंके अवतार थे। इस कारण उन्हें तुलनात्मकरूपसे छोटा-बड़ा सिद्ध करना नितान्त अज्ञानताका सूचक है। वस्तुतः भगवान्‌के किसी भी अवतारमें चेतनाके उतने ही अंश (कलाएँ) प्रकट होते हैं, जितनेकी आवश्यकता होती है। स्थितियाँ जितनी अधिक विषम होती हैं, उतनी अधिक कलाओंसहित भगवान्‌का अवतार होता है ऐसा मात्र अभिव्यक्तिमें होता है, अवतारकी सामर्थ्य समान होती है। त्रेतामें धर्मरूप वृषभके तीन पैर पवित्रता, दया तथा सत्य थे जबकि द्वापरमें उसके दया तथा सत्य नामक दो ही पैर थे। त्रेतायुगकी अपेक्षा द्वापरयुगमें समाज किस-किस रूपमें पतित हो चुका था, यह वाल्मीकीय रामायण एवं महाभारतमें स्पष्ट देखा जा सकता है, इसीलिये भगवान् कृष्णको अधिक कलाएँ अभिव्यक्त करनी पड़ीं।

आगे भगवान् राम तथा भगवान् कृष्णसम्बन्धी कुछ विषयोंको सारणीके रूपमें दिया जा रहा है—

विषय	राम	कृष्ण
१. वंश	सूर्यवंश	चन्द्रवंश
२. कुल	इक्ष्वाकु	वृष्णि
३. पिता	दशरथ	वसुदेव
४. माता	कौसल्या	देवकी
५. कुलगुरु	महर्षि वसिष्ठ	महर्षि गर्ग
६. विद्यागुरु	महर्षि वसिष्ठ	सांदीपनि
७. प्रधान शक्ति	सीता	राधा, रुक्मिणी आदि
८. पुत्र	लव, कुश	प्रद्युम्न, साम्ब आदि
९. प्रधान उपदेश-पात्र	लक्ष्मण, हनुमान्	अर्जुन, उद्धव
१०. आदि चरित्र लेखक	वाल्मीकि	व्यास
११. प्रमुख उद्देश्य	रावण-वध	कंस-वध
१२. उपाधि	मर्यादापुरुषोत्तम	लीलापुरुषोत्तम
१३. कलाएँ	बारह	सोलह

विषय	राम	कृष्ण
१४. युग	त्रेता	द्वापर
१५. उपस्थितिकाल	युगान्त	युगान्त
१६. जन्मतिथि	चैत्र शुक्ल ९	भाद्र कृष्ण ८
१७. जन्मवार	सोमवार	बुधवार
१८. जन्म-नक्षत्र	पुनर्वसु ४	रोहिणी ३
१९. जन्म-लग्न	कर्क	वृष
२०. जन्म-राशि	कर्क	वृष
२१. जन्म-समय	मध्याह्न १२ बजे	रात्रि १२ बजे
२२. जन्मस्थान	राजभवन	कारागृह
२३. जन्मभूमि	अयोध्या (सरयूतट)	मथुरा (यमुनातट)
२४. रंग	नील श्यामल	नील श्यामल
२५. वर्ण	क्षत्रिय	क्षत्रिय
२६. शासन	अयोध्या	द्वारका
२७. लीला-संवरण	अयोध्यामें सरयूतटपर	प्रभासक्षेत्रमें पीपलवृक्षके नीचे

भगवान् राम तथा भगवान् कृष्ण—दोनों अवतारोंको परस्पर देखनेपर उनमें प्रायः समानताएँ ही प्राप्त होती हैं दोनों भगवान् विष्णुके ही स्वरूप जो ठहरे, सो आश्चर्य भी नहीं होना चाहिये। दोनों ही अवतारोंमें भगवान् श्रीहरिने परम शरणागतवत्सलता सिद्ध की है। भगवान् रामका वचन है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वाल्मीकीय रामायण ६।१८।३३)

अर्थात् जो एक बार भी शरणमें आकर 'मैं तुम्हारा हूँ'—इस प्रकार कहकर मुझसे रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ, यह मेरा स्वाभाविक व्रत है।

इसी प्रकार भगवान् कृष्णका वचन है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८।६६)

अर्थात् सम्पूर्ण धर्मोंके आश्रय (अर्थात् क्या करना है, क्या नहीं करना है, इस विचार)-का त्याग करके एक मेरी शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, शोक मत कर।

भगवान् दोनों रूपोंमें सदैव अपना वचन निभाते हैं, फिर भेदबुद्धिको स्थान ही कहाँ रहता है। सच्चे भक्तके हृदयमें प्रथम तो भेदभाव आता ही नहीं और यदि आ भी जाता है तो प्रभु कृपापूर्वक तत्काल उसका भ्रम-निवारण कर देते हैं, जैसे गोस्वामी तुलसीदासजीके समक्ष किया था। एक बार गोस्वामी तुलसीदासजीने मथुरामें भगवान् कृष्णकी श्रृंगारयुक्त एक परम मनोहर मूर्तिके दर्शनके किये और वे गद्गद हो गये, परंतु भगवान् रामके एकनिष्ठ भक्त होनेके कारण वे कहने लगे—

कहा कहौं छबि आजकी भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै धनुष-बान लो हाथ॥

भक्तकी इच्छा सुनते ही भगवान्की भक्तवत्सलता देखिये, प्रभु कृष्णने तत्काल अपनी प्रतिमाको धनुष-बाण हाथोंमें पकड़े भगवान् श्रीरामकी प्रतिमामें परिवर्तित कर दिया। गोस्वामी तुलसीदासजी सरीखे भक्त दुर्लभ होते हैं जो एकनिष्ठ भी हों, साथ-ही-साथ ही अन्य भगवत्-स्वरूपोंके प्रति पूर्ण सम्मानभाव भी रखते हों, उनके इस विशिष्ट गुणके परिचयहेतु उनकी विनय-पत्रिकाका अवलोकन करना चाहिये। ऐसे भक्तोंकी इच्छा भगवान् सदैव पूरी करते हैं। सारांश यह है कि भगवान्के राम और कृष्ण—दोनों अवतार समान हैं, कोई भी छोटा-बड़ा नहीं है। हम अपने भावके अनुसार चाहे जिसकी भक्ति करें, वे भगवान् विष्णु ही हैं।

'कीर्तनीयः सदा हरिः'

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना। अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

'अपनेको तृणसे भी अत्यन्त तुच्छ समझकर, वृक्षकी तरह सहनशील होकर, स्वयं अमानी रहकर और दूसरेको मान देते हुए सदा श्रीहरिका कीर्तन करना चाहिये।' (महाप्रभु चैतन्य—शिक्षाष्टक)